देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

9 772395 711007

Impact Factor 7.523

ISSN : 2395-7115

नवम्बर 2024

Vol.-20, Issue-5(1)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

जन्म : 29 दिसम्बर 1937

स्मृति शेष : 09 अक्टूबर 2024

सम्पादक : डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट

Publisher :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 20 ISSUE-5(1) (नवंबर 2024) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८६/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

नवंबर 2024

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	10-10
2.	शीर्षक-कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री विमर्श	राज श्री डॉ० चित्रलेखा	11-15
3.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 और हिंदी भाषा की भूमिका	श्री ब्लासियुस एक्का	16-20
4.	पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों द्वारा राधा–कृष्ण के प्रेम का अप्रतिम वर्णन	डॉ० निरूपम शर्मा	21-25
5.	उपनाम -परम्परा	श्रीमती चन्द्र प्रभा	26-29
6.	जनजातीय विकास की नीतियाँ और कार्यक्रम	डॉ0 पंकज शर्मा मोहित कुमार सिंह शीतल यादव	30-41
7.	Challenges and Opportunities of Growth of Entrepreneurship in India	Ms. Aastha Vats Prof. Madhu Ahlawat	42-48
8.	আয়ুর্বেদশাস্ত্রে বাঙ্গালীর অবদান	Dr. Narayan Sarkar	49-54
9.	Raj Yoga: Its Psychological Impact in Disaster Management	Vijayadharan Pillai K Dr Rajendran D.R.	55-59
10.	आदिवासी समाज पर आधुनिक शिक्षा पद्धति का प्रभाव	शीतल यादव मोहित कुमार सिंह	60-67
11.	Intellectual Property Rights and Rural Development: Empowering Geographical Indications in India.	Priya Shukla	68-72
12.	इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में युवा पीढी	दीप्ति जे पनिकर	73-76
13.	हिंदी भाषा का योगदान, सम्भावनाएं तथा चुनौतियां	डॉ दुर्गेश कुमार शर्मा	77-82
14.	भाषा, समाज, संस्कृति का संबंध और शिक्षा पर प्रभाव	डा0 पूजा शर्मा	83-88
15.	बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर का जीवन दर्शन :- एक अध्ययन	Lokesh Sagar Dr Sunita Joshi	89-92

16.	"वैदिकविमानविद्या का महत्त्व"	नरेश कुमार	93-96
17.	राजसमन्द का शिल्प सौन्दर्य व स्थापत्य कला विमर्श	शशि सिंघल डॉ. भेषराज शर्मा	97-101
18.	System of Education in the Āśvalāyana Gṛhyasūtra period or Vedic period	Baturam Sarkar	102-105
19.	बिहार में कृषि अनुदान का कृषकों की स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन: भोजपुर जिला के विशेष संदर्भ में	Dr. Sarvjeet Kumar Singh	106-112
20.	प्रवास में वृद्धावस्था : समकालीन हिंदी कहानी के संदर्भ में	सोणी पी. सी	113-116
21.	विष्णु नागर की कविता : भय का समाजशास्त्र	अनुपमा सामतं	117-120
22.	ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦਾ ਨਾਵਲ 'ਆਹਣ': ਸਮਾਜਚਾਰੇ ਦੀਆਂ ਹਕੀਕਤਾਂ ਦਾ ਦਸਤਾਵੇਜ਼	ਐਸੋਸੀਏਟ ਪ੍ਰੋਫ਼ੈਸਰ ਅਤੇ ਮੁਖੀ	121-126
23.	पर्यावरण संरक्षण में जनहित याचिका की भूमिका	डॉ0 शैलेश पाण्डेय	127-132
24.	मूर्ति कला का विकास	विक्रम सिंह यादव	133-136
25.	नाथपन्थीय साहित्य में सामाजिक समरसता	सुनील कुमार पाण्डेय	137-143
26.	वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	Himanshu Gangwar	144-148
27.	प्राचीन भारत में विज्ञान एवं तकनीक	श्री राजन कुमार	149-155
28.	बौद्ध धर्म में विहारों का महत्त्व : एक अध्ययन	Mohd Salman Dr. Mansoor Ahmed Siddique	156-158
29.	कालिदास की नाटक त्रयी	डॉ० किरण कुमारी	159-163
30.	जलवायु विज्ञान और मृदा विज्ञान सम्बन्धी तरीका और प्रक्रियाएँ	डॉ0 अरविन्द कुमार	164-166

31.	**Existential Absurdity and Alienation in the Novels of Arun Joshi**	**Rajandip Kaur, Manu Gangwar, DilkeshGangwar, Dr. Purnima Bhardwaj**	**167-170**
32.	**मौन**	**डॉ. सरला जांगिड**	**171-176**
33.	डाबड़ा कांड (13 मार्च 1947) और मारवाड़ का किसान आंदोलन एक ऐतिहासिक अध्ययन	**ASHOK KUMAR**	**177-180**
34.	**Women in India in the century of Renaissance 1800 to 1900**	**Mrs. Sonu Kapila**	**181-185**
35.	**The Relevance of Sanskrit to Modern Chemistry: An analysis**	**Naresh Kumar**	**186-187**
36.	**ਮਾਨਵੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਨਿਘਾਰ ਦੀ ਗਾਥਾ: ਹਿੱਲਦੇ ਦੰਦ**	**ਸਰਵਜੀਤ ਸਿੰਘ** **ਡਾ.ਜਸਮੀਤ ਸਿੰਘ**	**188-192**
37.	**राष्ट्रीय आंदोलन में गोरखपुर जनपद की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन**	**Rinki Gupta**	**193-196**
38.	स्त्री : व्यथा से मुक्ति की ओर (मीराकांत के नाटक 'गली दुल्हनवाली' के विशेष सन्दर्भ में)	परमिन्द्रजीत कौर	**197-201**
39.	**प्रेमचन्द की राष्ट्रीयता और आर्य समाज**	**निधि कुँवर**	**202-204**
40.	**अटल टिंकरिंग लैब (ATL's) की वस्तुस्थिति एवं उपयोगिता का अध्ययन**	**ममता प्रजापत** **डॉ. हिम्मत सिंह चुण्डावत**	**205-214**
41.	**जूठन : दलित जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति**	**प्रमोद कुमार**	**215-219**

संपादकीय

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. :11-15
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शीर्षक-कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री विमर्श

राज श्री, हिंदी शोधार्थी,
डॉ० चित्रलेखा, पर्यवेक्षक,
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना।

स्त्री लेखिकाओं का उपन्यास मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित होता है। स्त्री लेखिकाओं ने स्त्री को आधुनिक संदर्भ में रहकर देखा तो पाया कि आज स्त्रियों की मनोवृत्ति बदल चुकी है, उनकी मानसिकता में परिवर्तन आया है। इन्होंने स्त्री अस्मिता की तलाश बड़ी गहराई से किया है और स्त्री अस्मिता को एक नई पहचान देने के लिए उनकी संवेदना और अनुभव के दायरे को बढ़ाया है। उपन्यास लेखन में लेखिका कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, शिवानी, मैत्रेई पुष्पा, ममता कालिया, मृदुला गर्ग आदि है। इन सभी स्त्री लेखिकाओं ने अपने उपन्यास में स्त्री जीवन की समस्याओं का विवेचन करके स्त्री विमर्श को नवीन आयाम प्रदान किया है।

उपन्यास विधा- स्त्री लेखिकाओं का महत्वपूर्ण स्थान उपन्यास विधा को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण स्थान है। स्त्री लेखिकाओं ने अपनी कृतियों में सामाजिक दायित्व का निर्वाह किया है। अपने उपन्यासों में स्त्रियों की दुनिया की आंतरिक एवं बाह्य तकलीफों और छटपटाहट का उल्लेख किया है। अपने अनुभव और तात्कालिक स्थिति और परिस्थितियों को आधार बनाकर स्त्री की सामाजिक नियति और मानसिकता को बड़ी संजीवता और गहराई से चित्रित किया है। अगर देखा जाए तो स्त्री लेखिका पुरुष लेखक की तरह स्त्री को महिमामंडित नहीं करती और न ही नकली और काल्पनिक रूप से पीड़ित दर्शाती है। महिला हिंदी उपन्यासों की मौलिक विशेषता है स्त्री विमर्श! क्योंकि जो भोगता है वही सही मायने में वास्तविक विश्लेषण करने में सक्षम होता है।

लेखिका उपन्यासकार कृष्णा सोबती

स्त्री लेखिका के उपन्यासकार में कहा जाए तो कृष्णा सोबती का विशेष स्थान है। स्त्रियों के अंतरंग को पहचानने की कला उनमें विशेष रूप से विद्यमान थी। उनकी उपन्यासों में एक समग्र जीवन दृष्टि का प्रतिफल हुआ है, अपने उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के बीच उत्पन्न होने वाले संघर्षों को स्वाभाविक और यथार्थ रूप से अभिव्यक्त करने का मौलिक प्रयास किया है।

लेखक राकेश कुमार के अनुसार- "कृष्णा सोबती का लेखन स्त्री की यथास्थिति के खिलाफ अपनी मानवीय स्त्रीत्ववादी भूमिका को निभाता ही है। वह स्त्री को यथास्थितिवाद से बाहर निकालने वाला, उसकी मुक्ति की तलाश करने वाला, उसमें साहस और निर्भीकता पैदा करने वाला, उनकी मुक्ति की कामना करने वाला स्त्री वादी लेखन है।-1 डॉ दीपा मैलारे के अनुसार कृष्णा सोबती ने अपनी कहानियों में स्त्री जीवन की परिवर्तित मनः स्थितियों एवं उसकी दमित इच्छाओं को खुले रूप में साहस के साथ अभिव्यक्त किया है।-2

उपन्यासों में स्त्री विमर्श-

स्त्री की समस्याओं तथा परिस्थितियों को देखते हुए लेखिका कृष्णा सोबती ने 6 बहुचर्चित उपन्यासों की रचना की है। इन्होंने अपने उपन्यास लेखन में पूरी प्रमाणिकता, संवेदनशीलता एवं साहस के साथ स्त्री के एकांत संघर्ष यात्रा और अस्मिता का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। स्त्री विमर्श की दृष्टि से देखा जाए तो इनका बहुमूल्य तथा चर्चित उपन्यास दिलो दानिश, समय- सरगम, जिंदगीनाम, सूरजमुखी अंधेरे में, डर से बिछड़े, हैं।

समय सरगम उपन्यास में स्त्री विमर्श

कृष्णा सोबती अपने उपन्यास "समय सरगम" में लिखती है कि इस उपन्यास के पात्र आरण्या सशक्त स्त्री है। जो आजीवन अकेली ही रही। सामाजिक, वैयक्तिक और आर्थिक स्तर पर सफल जीवन जिया। उनके अनुसार -"अकेले रहते रहते खुद को जान लेगी क्या यह स्थिति भी कम अच्छी नहीं। अकेले होने पर अपने से दूर नहीं होते। अपने में खोजती है उन संभावनाओं को जो मूल्यवान है, आप अपने नजदीक होते जाते हैं।"- 3 जीवन के प्रति प्रत्याशा रखने वाली आधुनिक स्त्री की विचारधारा आरण्या के माध्यम से लेखिका प्रकट करती है। आरण्या पढ़ी लिखी औरत है, इसलिए उसमें आत्मविश्वास की कमी नहीं है। स्वयं निर्णय लेने में समर्थ है, स्वावलंबी होकर रहना पसंद करती है। जब वह एक अच्छे फ्लैट को एडवांस देना चाहती है तो एजेंट के साथ खड़े बुजुर्ग आरण्या के जिम्मेदारी के बारे में पूछता है तब उनका कहना है कि "मैं रहूंगी और मैं अपने लिए जिम्मेदार हूं।-4 तब इसका यह शब्द आत्मविश्वास को प्रकट करता है । आरण्या सिर्फ अपने बारे में ही नहीं सोचती बल्कि दूसरों को उनके अधिकारों की याद भी दिलाती है। बहू बेटों से दमित दमयंती को वह इस प्रकार उपदेश देती है कहती है- "संयम से काम कीजिए। बच्चों के पिता के बाद आपकी सुरक्षा का भार स्वयं आप पर है। ऐतराज़ का अधिकार भी आपको है। आरण्या अपने सारे निर्णय खुद लेती है, और अविवाहित रहने के अपने निश्चय के समान ईशान के साथ रहने का निर्णय भी वह स्वयं लेती है।-5

जिंदगीनामा उपन्यास में स्त्री विमर्श

कृष्णा सोबती का 'जिंदगीनाम' उपन्यास अनेक नारी पात्रों को चित्रित करता है। साहूकार शाह जी की पत्नी शाहनी, महरी चाचा, माँ, बीवी राबिया आदि उपन्यास के मोती हैं। उपन्यास के कथानक

का आधार पंजाब का एक गांव है। गांव में एक छोटी सी घटना भी आग लगने वाली होती है। महरी चाची एक विधवा नारी है। वैधव्य होने पर समाज से दूर रहना वह पसंद नहीं करती। वे सभी बातों पर अपना मत प्रकट करती है। पुत्र विहीन शाहनी को लेकर बाबा फरीद की दरगाह में पुत्र की मन्नत मांगने के लिए वह चली जाती है। मां देवी का पति इलाहिया उसे छोड़कर एक कंजरी के इश्क में पड़ जाता तो उसे सांत्वना देने के लिए भी चाची महरी ही अधिक ध्यान देती है। जब उसका पति लौट आता है तो मन बीवी को सजा - सजाकर उसके साथ भेजने के लिए चाची तैयार हो जाती है। स्वयं चाची महरी का जीवनी ही स्त्री चेतना का सर्वोत्तम उदाहरण है।

विधवा महरी चाची ने गणपत शाह से प्रेम किया। चाची महरी और गणपत सा की प्रेम कहानी का किस्सा घर-घर गाया जाता है। वर्षो पुरानी बात है प्यार मोहब्बत के मामले में प्रेमी प्रेमिका दोनों को गुजरात की कचहरी लाया गया। अदालत में मुकदमा चला तो महरी चाची ने साफ-साफ बताया कि मैं तन मन से शाही की हो चुकी हूं। यह बात सुनकर माँ बीवी दंग रह गई कि इतनी भारी सभा में चाची महरी ने ऐसा कहा। तब चाची का कहना है और क्या! अरे खुल गई पोटली इश्क की तो पर्दे कैसे? इजलास पेशी हो गई।-6 गाँव में रहने पर भी अपने मन की सच्ची स्थिति को सबके सामने व्यक्त करने का साहस चाची महरी ने किया, जो स्त्री चेतना का उत्तम नमूना है।

'डार से बिछड़ी' उपन्यास में स्त्री विमर्श

कृष्णा सोबती का उपन्यास "डार से बिछड़े" में नायिका पाशो एक भोली भाली स्त्री है।

जिसकी माँ मुसलमान के शेख जी से फंस गई। माँ का अभिशाप झेलती उस युवती को आए दिन मामा, मामी और नानी के डाँट फटकार से लेकर मार तक सहनी पड़ती थी। एक दिन ऐसी प्रताड़ना से उबकर वह सेठ जी के घर पहुँच जाती है, और निर्धारित दिन से उसकी जिंदगी बदल जाती है। शेख पाशो की शादी दीवान जी से कर देते हैं। प्रेम, दुलार और प्यार पासो को खूब मिलता है, लेकिन दुर्भाग्य वर्ष दीवान जी का निधन हो जाता है। खुशियाँ मातम में बदल जाती है, अब पासो की पराधीनता का फायदा उठा कर बरकत ने अपनी माँ के साथ उसके घर पहुँचकर जबरदस्ती अधिकार स्थापित कर लिया। लाला के घर में भी पासो को एक शोषित स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है। पाशो लाला और उसके बेटों की सेवा सुश्रुषा में व्यस्त वास्तव में पराधीन की मूर्ति बनी रह गई है।

पाशो को अपनी छोटी उम्र में ही तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस उपन्यास में पासो जीवन भर अनेक कठिन परिस्थितियों से गुजरती है। बचपन में माँ के घर में और विधवा होने पर पति के घर में।

श्री मोहनलाल रत्नाकर के शब्दों में 'पासो के समस्त जीवन संघर्ष के द्वारा लेखिका यह दिखाना चाहती है कि स्त्री जीवन की स्थिति दयनीय है। वह स्वावलंबी एवं स्वतंत्र नहीं है। उसे पग पग

पर आश्रय की आवश्यकता है।" - 8 इस उपन्यास में पाशो के चित्र द्वारा कृष्णा सोबती ने अपनी इस जीवंत रचनाओं में स्त्री, माँ की करुणा, कोमल भावना, आशा, आकांक्षाओं और उसके नष्ट हो जाने पर हृदय में उठते हाहाकार का मर्मस्पर्शीय चित्रण किया है।- 9

'मित्रों मरजानी' उपन्यास में स्त्री विमर्श-

कृष्णा सोबती का उपन्यास "मित्रों मरजानी" निर्भयी और वाचाल किंतु साथ ही साथ कोमल तथा बेझिझक स्त्री का चित्रण करता है। मित्रों कोमल, वाचाल किंतु फिर भी स्नेहमयी स्त्री के रूप में प्रस्तुत की गई है। मित्रों अपनी वाचालता से सबको निरुत्तर कर देती है। मित्रों में वह सब है जो किसी भी स्त्री में हो सकता है। सदैव न्याय की पक्षधर है। फर्क सिर्फ इतना है कुछ स्त्रियाँ छिपा देती है परंतु मित्रों को छुपाना नहीं आता।

डॉक्टर पुरुषोत्तम दुबे के अनुसार "मित्रों मरजानी" व्यक्तित्व उपन्यास है। लेखिका इस उपन्यास में यह दर्शाती है कि काम पुरुष हो या स्त्री दोनों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण समस्या है। - 10

निष्कर्ष

लेखिका कृष्णा सोबती ने स्त्री अस्मिता को नई पहचान देने के साथ-साथ हिंदी उपन्यास की संवेदना और अनुभव के दायरे को भी बढ़ाया है। इन स्त्री लेखिकाओं के उपन्यासों को निर्विवाद रूप से महिला लेखन की सर्वोच्च उपलब्धि माना गया है। यह लेखिकाएं किसी भी स्त्री के प्रति सहानुभूति या दया नहीं चाहती। वह स्त्रियों के पूर्ण अधिकारों की मांग करती है। धीरे-धीरे स्त्री स्मिता, स्त्री अधिकार और स्त्री स्वतंत्रता की मांग बढ़ी और स्त्री विमर्श को आज के संदर्भ में नवीन आधार प्रदान किया। उपन्यास साहित्य में महिला लेखिकाओं ने स्त्रियों की स्थिति का नवीन स्त्रीवादी परिपेक्ष में विश्लेषण किया और इस दृष्टिकोण से अपने लेखन में सफल अभिव्यक्ति भी की। जिसमें इन महिला लेखिकाओं को आपार सफलता प्राप्त हुई।

संदर्भ सूची

1. राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श, आधार प्रकाशन, हरियाणा संस्करण- 2001, पृष्ठ संख्या - 208 ए 209
2. डॉक्टर श्रीमती अनीता, कालिंदी एक अध्ययन, सरस्वती विहार संस्करण- 1991, पृष्ठ -7
3. कृष्णा सोबती, समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2000, पृष्ठ संख्या- 82
4. कृष्णा सोबती, समय सरगम राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2000, पृष्ठ संख्या- 122
5. कृष्णा सोबती, समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2000, पृष्ठ संख्या- 77

6. कृष्णा सोबती, जिंदगी नाम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1979, पृष्ठ संख्या- 49
7 डॉ मोहनलाल रत्नाकर, हिंदी उपन्यास, द्वंद एवं संघर्ष, पृष्ठ संख्या- 123
8. डॉक्टर साधना अग्रवाल, वर्तमान हिंदी महिला कथा लेखन और दांपत्य जीवन वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1955, पृष्ठ संख्या -47 10. डॉक्टर पुरुषोत्तम दुबे, व्यक्ति चेतना और स्वतंत्रता, हिंदी उपन्यास, अनुपम प्रकाशन मुंबई 1973 पृष्ठ संख्या- 379
नाम- राज श्री (हिंदी शोधार्थी) पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना पर्यवेक्षक- डॉक्टर चित्रलेखा
रोल नंबर 2192080217, रजिस्ट्रेशन नंबर 202110600048, मोबाइल नंबर- 7324944613

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. :16-20
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 और हिंदी भाषा की भूमिका

श्री ब्लासियुस एक्का, सहायक प्राध्यापक हिंदी,
शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय बलरामपुर, रामानुजगंज, छत्तीसगढ़।

शोध सारांश - राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 भारत में शिक्षा प्रणाली में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करती है। यह नीति शिक्षा के सभी स्तरों पर सुधारों, गुणवत्ता में वृद्धि, और समग्र विकास को प्राथमिकता देती है। इस नीति में भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से हिंदी, की महत्वपूर्ण भूमिका है। हिंदी न केवल एक व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति और पहचान का भी अभिन्न हिस्सा है। इस शोधपत्र में, हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति और हिंदी भाषा की भूमिका पर विस्तार से चर्चा करेंगे। इस शोध पत्र के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 का विस्तृत अवलोकन करेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा परंपरा के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करती है। जैसे- बहुभाषिकता का महत्व, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, शिक्षण विधियों में सुधार, अध्यापकों की क्षमता बढ़ाना, और पाठ्यक्रम का अद्यतन करना शामिल है।प्रौद्योगिकी का समावेश, हिंदी भाषा का महत्व, संप्रेषण का माध्यम, सांस्कृतिक पहचान, शिक्षा में प्रभाव, NEP 2020 में हिंदी भाषा की भूमिका आदि बिंदुओं को समझ सकेंगे। मातृभाषा के रूप में हिंदी, पाठ्यक्रम में हिंदी का समावेश, हिंदी साहित्य, भाषा, और व्याकरण सम्बन्धी शैक्षिक सामग्री के विकास, NEP 2020 में शिक्षकों के प्रशिक्षण, हिंदी भाषा की चुनौतियाँ, अंग्रेजी का दबदबा, शिक्षा का असमान वितरण, तकनीकी संसाधनों की कमी, हिंदी भाषा को सशक्त बनाने के उपाय एवं सम्बंधित शोध और विकास से अवगत हो पायेंगे।

प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से हम जान पाएंगे कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 हिंदी भाषा को सशक्त बनाने के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती है। हिंदी न केवल एक भाषा है, बल्कि यह हमारी संस्कृति और पहचान का अभिन्न हिस्सा है। नीति के अंतर्गत दिए गए अवसरों का सही उपयोग करके, हम हिंदी को एक मजबूत माध्यम बना सकते हैं, जो न केवल शिक्षा बल्कि समाज के अन्य क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हिंदी भाषा को सभी स्तरों पर प्रोत्साहित किया जाए, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ अपनी मातृभाषा

में ज्ञान प्राप्त कर सकें और अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रख सकें। इस दिशा में ठोस कदम उठाने से न केवल हिंदी की स्थिति मजबूत होगी, बल्कि यह समग्र शिक्षा प्रणाली को भी विकसित करने में सहायक होगी।

मुख्य शब्द - राष्ट्रीय शिक्षा नीति, मातृभाषा, साहित्य, संस्कृति, गुणवत्ता, प्रोत्साहन।

प्रस्तावना - भारत की शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 को पेश किया गया है। यह नीति न केवल शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करती है, बल्कि इसमें भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी की महत्वपूर्ण भूमिका भी निहित है। हिंदी न केवल भारत की राजभाषा है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति और पहचान का भी प्रतीक है। इस लेख में, हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति और हिंदी भाषा की भूमिका पर गहराई से विचार करेंगे।स नीति में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने पर ज़ोर दिया गया है।

पाँचवीं कक्षा तक की पढ़ाई में मातृभाषा या स्थानीय भाषा को पढ़ाने का प्रावधान है। कक्षा 8 और आगे की पढ़ाई में भी मातृभाषा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

सरकारी और निजी दोनों स्कूलों में त्रिभाषा सूत्र लागू होता है. इसके मुताबिक, हर छात्र को तीन भाषाएं सीखनी होती हैं. इनमें से दो मूल भारतीय भाषाएं होनी चाहिए और तीसरी अंग्रेज़ी। केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय, और राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयों में कक्षा 8 तक की पढ़ाई मातृभाषा में कराई जाती है।

भारतीय भाषाओं में सॉफ़्टवेयर तैयार करने का काम किया जा रहा है। मेडिकल की राष्ट्रीय प्रवेश परीक्षा को 12 भारतीय भाषाओं में आयोजित किया जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 का अवलोकन-

NEP 2020 का उद्देश्य गुणवत्तापूर्ण और समावेशी शिक्षा प्रदान करना है। इसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि सभी छात्रों को उनकी मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा प्राप्त हो सके, जिससे उनका विकास हो सके। NEP 2020 में बहुभाषिकता को बढ़ावा दिया गया है। नीति के अनुसार, छात्रों को अपनी मातृभाषा में पढ़ाई करने का अवसर मिलेगा। यह भारतीय भाषाओं के प्रति जागरूकता और सम्मान को बढ़ाने में सहायक होगा।

हिंदी भाषा भारतीय समाज में संवाद का एक प्रमुख माध्यम है। यह न केवल संवाद का साधन है, बल्कि यह विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने का एक सशक्त उपकरण भी है। हिंदी भाषा भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा है। हिंदी साहित्य, कविता, और नाटक के माध्यम से यह संस्कृति को संरक्षित करती है और समृद्ध बनाती है।हिंदी भाषा का शिक्षा में एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह छात्रों को अपनी मातृभाषा में पढ़ाई करने का अवसर देती है, जिससे उनकी सोच और समझ में वृद्धि होती है।जो छात्र अपनी मातृभाषा में सीखते हैं, वे अवधारणाओं को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं और जानकारी को याद रख पाते हैं। वे भाषा से ज़्यादा परिचित होते हैं और विदेशी भाषा की तुलना में इसे बेहतर ढंग से समझ पाते हैं।

NEP 2020 में मातृभाषा में शिक्षा का प्रावधान है। हिंदी, जो कि कई राज्यों में मातृभाषा है, छात्रों के लिए एक सशक्त माध्यम बनकर उभरती है। NEP 2020 में हिंदी साहित्य, भाषा, और व्याकरण को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। इससे छात्रों को भाषा के प्रति जागरूकता और रुचि बढ़ेगी। हिंदी में शैक्षिक सामग्री का विकास NEP 2020 का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यह नीति हिंदी में उच्च गुणवत्ता वाली पाठ्य पुस्तकें और अध्ययन सामग्री के विकास को प्रोत्साहित करती है। NEP 2020 में हिंदी शिक्षकों के प्रशिक्षण पर भी ध्यान दिया गया है। शिक्षकों को नए शिक्षण विधियों और तकनीकों से लैस करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाएगी। अंग्रेजी भाषा का बढ़ता प्रभाव हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में बाधा डाल रहा है। इसे संतुलित करने के लिए सक्रिय कदम उठाने होंगे। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा का वितरण असमान है। ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में हिंदी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता है। हिंदी में तकनीकी संसाधनों की कमी भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। डिजिटल युग में, हिंदी में उच्च गुणवत्ता वाली सामग्री का विकास आवश्यक है।

हिंदी भाषा के महत्व के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है। हिंदी में उच्च गुणवत्ता वाली शैक्षणिक सामग्री का विकास किया जाना चाहिए। हिंदी भाषा पर शोध और विकास को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों को इस दिशा में काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

NEP 2020 में कई विशेषताएँ शामिल की गई हैं जो शिक्षा के क्षेत्र में सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

शिक्षा की लचीलापन: NEP 2020 में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर लचीलापन प्रदान किया गया है। इससे छात्रों को उनकी रुचियों के अनुसार पाठ्यक्रम चुनने की आज़ादी मिलेगी।

नवोन्मेष और प्रौद्योगिकी: नीति में नवोन्मेष और प्रौद्योगिकी के प्रयोग को बढ़ावा दिया गया है। इससे छात्रों को तकनीकी कौशल प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

उच्च शिक्षा में सुधार: उच्च शिक्षा संस्थानों में पाठ्यक्रम को अद्यतन करने और शोध को बढ़ावा देने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

हिंदी भाषा की वैश्विक पहचान को बढ़ावा देने के लिए कई उपाय किए जा सकते हैं।

विभिन्न देशों में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है। इससे न केवल हिंदी भाषा की पहचान बढ़ेगी, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसके महत्व को भी समझा जाएगा।

हिंदी साहित्य का अनुवाद अन्य भाषाओं में करने से वैश्विक पाठकों तक पहुँचने का अवसर मिलेगा।

हिंदी शिक्षा में सुधार के लिए कुछ सुझाव दिए जा सकते हैं-

हिंदी शिक्षकों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। इससे शिक्षकों को नवीनतम शिक्षण विधियों और तकनीकों से अवगत कराया जा सकेगा।

शैक्षिक सामग्री को स्थानीय संदर्भ में अनुकूलित करना चाहिए, ताकि छात्र अपनी मातृभाषा में बेहतर समझ सकें। हिंदी भाषा के तकनीकी विकास में महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। हिंदी में शैक्षिक सामग्री को डिजिटल प्लेटफार्म्स पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इससे छात्र आसानी से अपनी मातृभाषा में सामग्री तक पहुँच सकेंगे। हिंदी में ऑनलाइन पाठ्यक्रम और वेबिनार का आयोजन किया जा सकता है, जिससे छात्रों को अधिक विकल्प मिल सकें।

हिंदी भाषा का भविष्य उज्ज्वल है, बशर्ते इसे उचित समर्थन और विकास मिले। NEP 2020 के माध्यम से, हिंदी को शिक्षा प्रणाली में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इससे आने वाली पीढ़ियों के लिए हिंदी भाषा को समझना और उपयोग करना आसान होगा।

हिंदी भाषा समाज के विभिन्न पहलुओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह न केवल संवाद का माध्यम है, बल्कि यह विभिन्न संस्कृतियों के बीच पुल का काम भी करती है।

NEP 2020 हिंदी भाषा के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती है। हमें इस नीति के तहत हिंदी को सशक्त बनाने के लिए सक्रिय कदम उठाने होंगे। हिंदी भाषा को शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रोत्साहित करने, उसके साहित्य का संरक्षण करने, और वैश्विक पहचान बढ़ाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए। इस दिशा में ठोस प्रयासों से न केवल हिंदी भाषा को एक मजबूत मंच मिलेगा, बल्कि यह समाज और संस्कृति के विकास में भी योगदान करेगी। हिंदी को सशक्त बनाने के लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाएँ, शैक्षणिक संस्थान और समाज के सभी वर्गों को मिलकर कार्य करना होगा।

शैक्षणिक संस्थानों को हिंदी को बढ़ावा देने के लिए विशेष कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। इसके अलावा, संस्थानों में हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए कार्यशालाओं का आयोजन भी आवश्यक है।

परिवारों को भी अपने बच्चों को हिंदी बोलने और पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इससे बच्चों में अपनी मातृभाषा के प्रति लगाव बढ़ेगा।

हिन्दी भाषा के विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति का योगदान महत्वपूर्ण है। हम इसे विभिन्न तरीकों से प्रोत्साहित कर सकते हैं, जैसे-

1. शिक्षा: बच्चों को हिन्दी सिखाना और उनकी भाषा कौशल को बढ़ावा देना।
2. लेखन: हिन्दी में लेखन, कविता, कहानी या लेख लिखकर भाषा को समृद्ध करना।
3. संवाद: रोज़मर्रा की बातचीत में हिन्दी का उपयोग करना।
4. संस्कृति: हिन्दी साहित्य, संगीत और फिल्मों को बढ़ावा देकर संस्कृति को जीवित रखना।
5. प्रविधि: हिन्दी में ऐप्स, वेबसाइट्स और सामग्री का निर्माण करना।

इन प्रयासों से हिन्दी का विकास होगा और इसे एक मजबूत पहचान मिलेगी।

निष्कर्ष - NEP 2020 हिंदी भाषा को सशक्त बनाने का एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती है। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हिंदी भाषा को सभी स्तरों पर प्रोत्साहित किया जाए, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ अपनी मातृभाषा में ज्ञान प्राप्त कर सकें और अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रख सकें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 हिंदी भाषा को सशक्त बनाने के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती है। हिंदी न केवल एक भाषा है, बल्कि यह हमारी संस्कृति और पहचान का अभिन्न हिस्सा है। नीति के अंतर्गत दिए गए अवसरों का सही उपयोग करके, हम हिंदी को एक मजबूत माध्यम बना सकते हैं, जो न केवल शिक्षा बल्कि समाज के अन्य क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हिंदी भाषा को सभी स्तरों पर प्रोत्साहित किया जाए, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ अपनी मातृभाषा में ज्ञान प्राप्त कर सकें और अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रख सकें। इस दिशा में ठोस कदम उठाने से न केवल हिंदी की स्थिति मजबूत होगी, बल्कि यह समग्र शिक्षा प्रणाली को भी विकसित करने में सहायक होगी।

संदर्भ ग्रंथ-

1. "राष्ट्रीय शिक्षा नीति: एक विश्लेषण" - डॉ. सुरेश चंद्र
2. "हिन्दी भाषा की शिक्षा: वर्तमान और भविष्य" - डॉ. रामकृष्ण द्विवेदी
3. "हिन्दी भाषा और शिक्षा नीति" - डॉ. राधेश्याम शर्मा
4. "भाषा, शिक्षा और समाज" - डॉ. सविता मेहता
5. "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय भाषाएँ" - डॉ. अजय तिवारी

ईमेल blasiyusekka1984@gmail.com मोबाइल नंबर 7974408994

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 21-25
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों द्वारा राधा–कृष्ण के प्रेम का अप्रतिम वर्णन

डॉ० निरूपम शर्मा सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग बरेली कॉलेज, बरेली

मानवीय अनुभूतियों में 'प्रेम' सर्वाधिक सशक्त और जगत को सकारात्मक संवर्द्धन देने याला भाव है। जागतिक प्रेम मानव को भौतिक तुष्टि देता है, तो जगदाधार के प्रति प्रेम उसे आत्मिक आनंद और पूर्ण संतृप्ति प्रदान करता है। जगत नियन्ता के प्रति प्रेम का भाव मोह, आसक्ति, आदर, श्रद्धा से भी आगे बढ़कर भक्ति में परिणत हो जाता है और भक्त (सायक) प्रभु (साधक) के लिए सर्वस्व त्याग कर पूर्ण समर्पण द्वारा तदाकार हो जाना चाहता है। वास्तव में प्रभु कृपा ही भक्ति की जननी है। भगवतकृपा अर्थात् 'पुष्टि' एवं उसकी प्राप्ति का मार्ग 'पुष्टिमार्ग' है।

बल्लभाचार्य जी (वि.स.1535–1587) ने ब्रजमण्डल में कृष्ण भक्ति के जिस स्वरूप को शुद्धाद्वैत दर्शन के माध्यम से प्रतिष्ठित किया, उसका आधार उन्होंने 'पुष्टिमार्ग' को बनाया। ''साधन की दृष्टि से आचार्य बल्लभ के मत को 'पुष्टिमार्ग' कहते हैं। पोषण का अर्थ 'भगवान का अनुग्रह' है। इस मत में भगवान् के अनुग्रह को सब कुछ माना जाता है जीव को भगवान् के अनुग्रह के बिना (पुष्टि के बिना) मुक्ति नहीं मिल सकती। भगवान के पोषण (अनुग्रह) को अधिक महत्व देने के कारण ही यह मत 'पुष्टि मार्ग' कहलाता है।''[1]

''भगवान अनुग्रह पूर्वक जीव को अपने समान ही आनन्दमय बना देते हैं। इस आनन्दमयी स्थिति की प्राप्ति ही मुक्ति है। 'मुक्ति' की प्राप्ति के लिए भक्ति ही एक मात्र साघन है। भक्ति दो प्रकार की है–पुष्टि भक्ति और मर्यादा भक्ति। मर्यादा भक्ति में फल की आसक्ति बनी रहती है किन्तु पुष्टि भक्ति में किसी प्रकार के फल की आकाक्षा नहीं होती। मर्यादा भक्ति भगवान के चरणारविन्द की भक्ति हैं किन्तु पुष्टि भक्ति भगवान के मुखारविन्द की भक्ति है। मर्यादा दैन्य भाव की भक्ति है, पुष्टि कान्ताभाव की भक्ति है। पुष्टि चार प्रकार की मानी गई है। 1. प्रवाह पुष्टि, 2. मर्यादा पुष्टि, 3. पुष्ट–पुष्टि, शुद्ध पुष्टि।

प्रवाह पुष्टि के अनुसार भक्त संसार में रहते हुए भगवान की भक्ति करता है। मर्यादा पुष्टि के अनुसार वह संसार के समस्त सुखों में विरत होकर कीर्तनादि द्वारा भगवान् की भक्ति करता है। पुष्ट–पुष्टि की स्थिति में उसे भगवान् का अनुग्रह प्राप्त हो जाता है, किन्तु वह भक्ति–साधना में लीन रहता है। पुष्ट–पुष्टि के अनुसार भक्त 'भगवान' की लीलाओं से अपना मानसिक तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वह पूर्णतः भगवान पर आश्रित हो जाता है। पुष्टि–भक्ति की यह सर्वोच्च स्थिति है।''[2]

''पुष्टिमार्गीय भक्ति रागानुगा भक्ति है। इस भक्ति में किसी प्रकार के साथन या कर्मकाण्ड की अपेक्षा नहीं होती। पुष्टिमार्गीय भक्त के प्रारब्ध और सचित कर्मों का शमन ईश्वर–कृपा से स्वयं हो जाता है। पुष्टि भक्ति का लाभ यह है कि इसके द्वारा सद्यःमुक्ति प्राप्त होती है। पुष्टिमार्गीय भक्ति के तीन फल हैं– रस रूप पुरुषोत्तम के स्वरूपानन्द की शक्ति प्राप्त कर उसकी लीला में प्रविष्ट होना, दूसरा, पूर्ण पुरुषोत्तम के श्री अंग का अंग बनना और तीसरा प्राकृत देहेन्द्रियादि से मुक्त होकर अप्राकृत शरीर में भगवान के बैकुण्ठ आदि लोकों में आनन्द भोग की स्थिति प्राप्त करना। इस प्रकार मोक्ष की दृष्टि से भी पुष्टिमार्ग को अधिक सुकर बताया गया है। पुष्टिमार्गीय कृष्ण भक्त हिन्दी–कवियों ने इसी आधार को ग्रहण कर कृष्ण के रूप–सौंदर्य को श्रृंगारमण्डित किया और भगवान के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए काव्य रचना की। कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन भी इसी पुष्टि भक्ति को ध्यान में रखकर किया गया है।''[3]

'रामधारी सिंह दिनकर' जी के अनुसार कृष्ण निःसन्देह ऐतिहासिक पुरुष हैं और अवतार के रूप में पूजित भी सुदीर्घावधि से होते रहे हैं।

''कृष्ण नाम बहुत प्राचीन है। पाणिनि (7वीं सदी ई.पू.) ने एक जगह कृष्ण और अर्जुन का उल्लेख धार्मिक नेता के रूप में किया है। मेगस्थनीज (ई.पू.3री सदी) कहता है कि मथुरा और कृष्णपुर में कृष्ण की पूजा होती है। महानारायण उपनिषद (ई.पू.200) का प्रमाण है कि कृष्ण उस समय विष्णु के अवतार माने जाने लगे थे। पतंजलि (ई.पू. 150 के लगभग) के भाष्य में भी वासुदेव का उल्लेख आर्य जाति के देवता के रूप में मिलता है।''[4]

''पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन धर्म–साधना' में लिखा है कि ''श्री कृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं। एक में वे यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर है राजा हैं, कंसारि हैं। दूसरे में वे गोपाल हैं, गोपी–जन–वल्लभ हैं, 'राधाधर–सुधा पान–शालि वनमालि हैं'। प्रथम रूप का पता बहुत पुराने ग्रन्थों से चल जाता है पर, दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है। धीरे–धीरे वह दूसरा रूप ही प्रधान हो गया और पहला रूप गौण।''[5]

''पुष्टिमार्ग में परात्पर परब्रह्म रस रूप भगवान श्रीकृष्ण की 'सेवा' ही मुख्य धर्म है। सर्वदा सर्वभाव से ब्रजाधिप श्रीकृष्ण ही सेवा करने योग्य हैं। भगवद् सेवा ही जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य हैं।''[6] भगवान की शक्ति स्वरुपा माया के रूप में 'राधा' की प्रतिष्ठा वल्लभ सम्प्रदाय में 'विठ्ठलनाथ जी' के समय में हुई। वल्लभाचार्य जी ने राधा की चर्चा नहीं की थी। ''वैष्णवों के तीन प्रसिद्ध पुराण हरिवंश, विष्णु पुराण और भागवत हैं। लेकिन, इनमें से किसी में भी राधा नाम का उल्लेख नहीं है। भागवत में कथा आयी हैं कि कृष्ण ने सभी गोपियों को छोड़कर एक गोपी से अलग मुलाकात की।

राधा का नाम कैसे चला, यह गहरे विवाद का विषय है। नारद–पांच रात्र–संहिता में लिखा है कि एक ही भगवान पुरुष और स्त्री रूप में प्रकट होते हैं। सम्भव है, इस दार्शनिक कल्पना से ही बाद के कवियों ने, जैसे शिव के साथ पार्वती और विष्णु के साथ लक्ष्मी हैं, वैसे ही, कृष्ण के साथ एक जोड़ी मिलाने के लिए राधा की कल्पना कर ली हो। लेकिन, यह राधा नाम आया कहाँ से पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'मध्यकालीन धर्म–साधना' में यह भी लिखा है कि प्रेम–विलास और भक्ति रत्नाकर के अनुसार ''नित्यानन्द प्रभु की छोटी पत्नी जाह्नवी देवी जब वृन्दावन गयीं, तो उन्हें यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि श्रीकृष्ण के साथ राधा नाम की मूर्ति की कहीं पूजा नहीं होती थी। घर लौटकर उन्होंने नयनभास्कर नामक कलाकार से राधा की मूर्तियां बनवायीं और उन्हें वृन्दावन भिजवाया। जीव गोस्वामी की आज्ञा से ये मूर्तियाँ श्रीकृष्ण के पार्श्व में रखी गयीं और तब से श्रीकृष्ण के साथ राधिका की भी पूजा होने लगी।''

दूसरी ओर जो भी सम्प्रदाय भागवत के बाद वाले पुराणों को मानते हैं, वे राधा को भी स्वीकार करते हैं। इसलिए, यह बहुत सम्भव दीखता है कि आर्यों के वैष्णव धर्म में कृष्ण की बाल–लीला और राधा से उनके प्रेम की कल्पना किसी आर्येतर जाति से आयी हो। इस सम्बन्ध में एक मत यह है कि बाल लीला की कल्पना आभीर जाति के किसी बाल–देवता से मिली है, और राधा भी, सम्भवतः, दक्षिण के किसी आर्येतरसमाज की कोई प्रेम की देवी रहीं होंगी। कालक्रम में ये दोनों कथाएँ वासुदेव धर्म से आ मिलीं और धीरे–धीरे, बदल कर कृष्ण का वह रूप हो गया, जिसे हम आज देखते हैं। इस अनुमान को एक समर्थन तो इस बात से भी मिलना चाहिए कि राधावाद के प्रचारक निम्बार्क महाराज दक्षिण के ही थे और उत्तर भारत में फैलने के पहले कृष्ण भक्ति के सिलसिले में राधा–भक्ति का भी प्रचार दक्षिण में ही हुआ, जिसके प्रचारक आलवार भक्त थे। दक्षिण की भगतिन ओन्दाल, जो मीरा से बहुत पहले हुईं, अपने आपको राधा मानती थीं। इसके विपरीत, डॉ, फरकोहार यह कहते हैं कि ''कोई आधार नहीं मिलने से अनुमान यही होता है कि राधा की कल्पना भागवत की खास गोपी को लेकर वृंदावन में उठी और वहीं से वह सर्वत्र फैली है।''[7]

पुष्टिमार्गीय भक्ति पद्धति में ''राधा'' भगवान श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के रूप में सर्वत्र वंदित एवं पूजित हैं। ''भगवान श्रीकृष्ण और श्री राधा स्वामिनी में तत्वतः–स्वरूपतः कोई भेद नहीं है। महाभावरूपा श्री राधा, रस रूप श्री श्याम सुन्दर से ही समुद्भूत, उन्हीं की छाया अथवा प्रतिमा हैं जो स्वरूपानंद वितरण लीला में संपादनार्थ, उनसे पृथक बनी हैं। श्रीकृष्ण की परम आह्लादिका शक्ति ही 'राधा' हैं परन्तु लीला के क्षेत्र में, अनादि काल से, नित्य भेद रूप में ललित लीलाएं चलती हैं।

'ब्रह्मवैवर्त्य पुराण' में कहा है–

'राधे' सम्भूय गोलोके, सा 'दधाव' हरेः पुरः।
तेन 'राधा' समाख्याता, पुराविदिद्विजोत्तमा।।

'राधा' नाम इसलिए हुआ कि रास मण्डल में प्रकट हुईं, तथा प्रकट होते ही पुष्प चयन कर, श्रीकृष्ण के चरणों में अर्ध्य समर्पित करने के लिए, दौड़ पड़ीं– 'धावित' हुईं। 'रा' कार दान वाचक है, एवं 'धा' निर्वाण का बोधक है। ये निर्वाण का दान करती हैं, इसलिए 'राधा– नाम से कीर्तित हुई हैं।

अनन्त जन्मार्जित साधना के फलस्वरूप, चित्त में यह वासना उत्पन्न होती है कि श्री ठाकुर जी को मुझसे सुख मिले। यह इच्छा–यह प्रेम ही प्राणी का परम पुरुषार्थ है। इस प्रेम गाढ़ा होता हुआ, क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग के रूप में परिणत होता है। इस अनुराग की चरम परिणति को 'भाव' कहते हैं। भाव का सबसे ऊर्ध्व स्तर 'महाभाव' है। इस महाभाव की उच्चतम घनीभूत मूर्ति 'श्री राधा' हैं।''[8]

श्री वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टिमार्गीय भक्ति सम्प्रदाय में कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्द दास तथा कृष्ण दास ये चार शिष्य वल्लभाचार्य जी के थे और गोविन्द स्वामी, नन्द दास, छीत स्वामी तथा चतुर्भुज दास–ये चार शिष्य गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के थे, जिन पर गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के विशेष आशीर्वाद की छाप लगी थी, इसी कारण ये आठों भक्त कवि 'अष्ट छाप' या 'अष्ट सखा' के नाम से प्रसिद्ध हुए। ''ये आठों भक्त श्री नाथ जी की नित्य लीला में अन्तरंग सखाओं के रूप में सदैव उनके साथ रहते थे, इसी मान्यता के आधार पर इन्हें 'अष्टासखा' कहते हैं गोवर्धन में श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा के बाद ये आठों सखा वहां सेवा के लिए प्रस्तुत हो गये। अष्टछाप के ये आठों भक्त कवि पुष्टिमार्गीय सेवा–विधि में भी पूर्ण सहयोग देते थे। वल्लभ–सम्प्रदाय में सेवा विधि का बहुत ही सांगोपांग वर्णन है और अष्टयाम की सेवा–मंगलाचरण, श्रृंगार, ग्वाल, राजयोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या–आरती और शयन–को इस सम्प्रदाय में बड़े समारोह से स्वीकार किया गया है। अष्टछाप की स्थापना 1565 ई. में हुई थी।''[9] इन अष्ट सखाओं के अतिरिक्त भी अनेक पुष्टि मार्गीय कवि हुए हैं जिनके पद आठों पहर की सेवा के साथ ही विभिन्न उत्सवों के अवसर पर गाए जाते हैं। श्रीमद् बल्लभ, रामदास, हित हरिवंश, मदन मोहन, व्यास स्वामिनी, रसिक प्रभु, विप्र प्रवीण दास, स्यामदास, भगवान दास, ताज बीबी तथा तानसेन आदि इन भक्त कवियों में प्रमुख हैं।

श्रीमती रवि प्रभा बर्मन द्वारा सम्पादित 'पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा' दो खण्डों में प्रकाशित ग्रन्थ है, जिसमें इन सभी भक्त सेवकों द्वारा प्रतिदिन की जाने वाली सेवाओं में गाये जाने वाले पदों के साथ ही उत्सवों पर गाने हेतु रचित पद भी संकलित हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र श्रीमती बर्मन के इसी संकलन पर आधारित है। 'पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा' के प्रथम खण्ड में प्रार्थना, जगाइबे से लेकर शयन–दर्शन, पोढ़वे तक की ठाकुर जी की दैनिक सेवा के कीर्तन पदों के साथ ही मान, खण्डिता, रसिया आदि के पद भी हैं, जिनमें श्री राधा–कृष्ण के अनन्य प्रेम का सुन्दर चित्रण है। अग्रलिखित 'मान के पद' में रूठी हुई राधा संदेश वाहिका द्वारा नायक श्रीकृष्ण को खरी–खरी सुना रही हैं–

''अरी जिन तू पठई, जाही पें फिर जाउ, उन मो सों अकथ कथा नादी।।
तोहि पठावत, वे क्यों नहि आवत, उनके पायन कछु मेंहदी बाँधी।।
मो ढिंग आवत, वचन सुनावत, बात कहत आधी–आधी।
'तानसेन' के प्रभु बहुनायक प्रीति फंदन कर हौ फांदी।।[10]

'मान' ही प्रेम को और प्रगाढ़ करने वाला भाव है। पुष्टिमार्ग में राधा कृष्ण का दाम्पत्य प्रेम पदों में वर्णित एवं पूजित है

'मुख सों मुख मिलाय वे देखत हैं आरसी।।
विकसत नील कमल ढिंग, उदित भयौ कैंधो शशी।।
निरख वदन मुसकाय परस्पर, करत विहार गिरि जात अंक हँसी।
'गोविन्द', प्रभु प्यारी जु परस्पर दंपत्ति परे प्रेम फँसी।।[11]

''उत्सवों के पद' द्वितीय खण्ड में नव संवत्सर–उत्सव–चैत्र मास में गाए जाने वाले पदों से लेकर 'होरी' तथा 'डोल' के पदों तक संकलित हैं। सभी सेवक कवियों ने राधा–कृष्ण के दिव्य प्रेम का सुन्दर चित्रण किया है। 'अक्षय तृतीया' के पद में राधा के अक्षय सौभाग्य तथा सुयश का वर्णन देखिए–

''अक्षय भाग सुहाग राधे कौ, अक्षय प्रीतम को दिन रतियाँ।।
चंदन पूज प्रीतम सुख दीजे, रीझ–रीझ यह कहूँ बतियाँ।।
अक्षय सुजस कहाँ लों भाखों, पार न पावत सेस मुख जतियाँ।।
छूट्यो मान सहज 'परमानंद', शुभदिन नीको अक्षय तृतीयाँ।।''[12]

''रथ यात्रा के पद' में श्रीकृष्ण के साथ बलराम और सुभद्रा की रथयात्रा के स्थान पर लाड़िली–किशोर की रथ यात्रा का अंकन है। ''पुष्टि मार्गीय सेवा, विशुद्ध भावात्मक, भाव प्रधान है। अतः शास्त्रोक्त विधि–विधानों का बंधन यहाँ नहीं है।''[13]

''रथ पर राजत सुंदर जोरी।।
श्री घनश्याम लाड़िलों सुंदर, श्री राधा जू गोरी।।
व्योम विमान भीर भई, सुरमुनि जय जय शब्द उच्चारी।।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर की बानिक पर बलिहारी।।''[14]

भक्ति काव्य में पावस का विशेष महत्व है। आकाश से मानों प्रेम रस की ही वर्षा होती है। 'हिंडोरा के पद' में भक्त कवियों ने अंतः प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति का सरस सजीव वर्णन किया है–

''अली की झूलत श्यामा श्याम।।
द्वय खंभ मर्कत मणि मनोहर, काम कुंद चढ़ाय।।
हरित चूरी जड़ित नग, बोहो लाल हीरा लाय।।
एक अचरज देख सखी री, राहु शशि इक ठौर।।
उड़त अंचल लपट बेनी, रपट, झपटे मोर।।
कनक जटित जराय बेंदी कवि को उपमा गाय।।
'सूर' शशि, यह राहु ब्रज में प्रकट तीन्यों आय।।''[15]

श्रीकृष्ण की मोहक मुरली की तान से विवश राधा गृह काज–लाज–सब कुछ त्याग कर नैकट्य की चाह लिए दौड़ पड़ती हैं। ''मुरली के पद' में अलौकिक वेणु वादक कृष्ण और राधा के सुखद संयोग के चित्र हैं''–

''राधिका रमन की, मुरलिका श्रवण सुनि, भवन गृह काज तज, कीयौ भामिनी।।
नाद रस बिवश भई, आन गति छूट गई, बिपिन आतुर चलीं, रूप अभिरामिनी।।
करैं वासर केलि, कंठ पर भुज मेलि, चतुर संग 'चत्रभुजदास' की स्वामिनी।।[16]

''पुष्टि मार्ग या सेवा मार्ग की शिक्षा है कि सांसारिक राग–भोग और श्रृंगार भावना का त्याग नहीं करना है। बस भगवान की ओर मोड़ देना है।''[17]

'रास के पद' में राधा–कृष्ण का अलौकिक अभिसार उत्कीर्णित है–

'रीझो परस्पर नरनारि।।
कंठ भुज–भुज धरें दोऊ, सकत नहीं निरबारि।।
गौर श्याम कपोलशोभा, अधर अमृत धार।।
परस्पर दोऊ पिय प्यारी, रीझ लेत उगार।।
प्राण एक द्वय देह कीनी, भक्ति प्रीति प्रकाश।।
'सूर' स्वामी स्वामिनी मिल, करत संग विलास।।''[18]

'ब्याह के पद' के दाम्पत्य–सूत्र–बन्धन में बँधते राधा–कृष्ण के नयनाभिराम शब्द चित्र अंकित हैं–

'कुंज भवन में मंगलचार।।
नव दुलहिन वृषभान नंदिनी, दुल्है श्री व्रजराज कुमार।।
नये नये पुष्प कुंज के तोरन, नव पल्लव की बंदनवार।।
दीनी भूर 'दास परमानंद' प्रेम भक्ति रत्नन के हार।।''[19]

'होरी के पद' में पुष्टिगार्मीय भक्त कवियों ने राधा–कृष्ण के परात्पर प्रेम का दिव्य चित्रण किया है–

'वन में श्री बल्लभ बाला, मिलि खेलैं फाग।
संग खरे रसरंग भरे, नवरंगी त्रिभंगी लाल।।
कंचन बेलि करे मानो केलि, परै बिच स्याम तमाला।
धाय धरे हँसि अंक भरे, छूटी केस टूटी उरमाला।।
राधा कृष्ण विलास सरोज, 'गदाधर' मंद मराला।।''[20]

युगल किशोर श्री राधाकृष्ण का यह अनिर्वचनीय, पराभौतिक, अलौकिक, अतीन्द्रिय प्रेम इहलोक में मिथक तथा प्रेम की पराकाष्ठा का सर्वोत्तम उदाहरण बन चुका है। यह अनुपमेय प्रेम निरन्तर भक्तों, रसिकों, सुधीजनों, कवियों, श्रोताओं तथा पाठकों को दिव्य प्रेमामृत में सराबोर करके उनकी भावनाओं को

परिष्कृत–उच्चीकृत करता रहा है तो इसका श्रेय पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों को दिया जाता है। श्री राधा–कृष्ण के प्रेम वर्णन द्वारा श्रृंगार को रसराज बनाने हेतु हिन्दी साहित्य सदैव इनका ऋणी रहेगा।

सन्दर्भ

1. पुष्टिमार्ग और सूरदासः रामचंद्र तिवारी, पु. सूरदास सं. हरबंस लाल शर्मा, पृ.–270–271.
2. वही, पृ.–272
3. सगुण भक्ति काव्य : विजयेन्द्र स्नातक, हिन्दी साहित्य का इतिहासः सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.200
4. संस्कृति के चार अध्यायः रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ.–66
5. वही, पृ.–67
6. पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा (द्वितीय खण्ड, उत्सवों के पद): संकलनकर्ता–श्रीमती रवि प्रभा वम्रन, (पृ.–4)
7. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ. 67 से 69 तक।
8. पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा, द्वितीय खण्ड–उत्सवों के पद (पृष्ठ–4)
9. सगुण भक्ति काव्य : डॉ. विजयेनद्र सनातक, हिन्दी साहित्य का इतिहासः सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.–200–201
10. पुष्टि मार्गीय कीर्तन सेवा, प्रथम खण्डः सं. रवि प्रभा बर्मन, पृ.– 129
11. वही, पृ.–101
12. पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा, द्वितीय खण्डः सं. रवि प्रभा बर्मन, पृ.–33
13. वही, पृ.–4
14. वही, पृ.–50
15. वही, पृ.–66
16. वही, पृ.–194
17. वही, पृ.–5
18. वही, पृ.–206
19. वही, पृ.–275
20. वही, पृ.–333

मो.नं.9927353152

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 26-29
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उपनाम -परम्परा

श्रीमती चन्द्र प्रभा,
308 ,ब्रैंटवुड टावर, चार्मवुड विलेज, फ़रीदाबाद- 121009 हरियाणा

कस्य मन मधुपो न रमते उपनाम्नस्सुकुमार सौहित्ये। साहित्यस्रष्टारोऽपि, ये स्वानुभूतीः शब्देषु
गुम्फित्वाभिव्यंजन्ति, उपनाम आश्रयन्ते।प्राचीनकालाद् प्रभृति आधुनिक कालपर्यन्तं साहित्यक्षेत्रे उपनाम्नः सुदीर्घ परम्परा दृश्यते। कविः साहित्यको वा पश्चाद्भवति प्रथमतस्तु अभिरामोपनाम स्वदीर्घकायं नामस्नु पुच्छरूपेण गृह्णाति। तेषां मते कवित्वनिकष एवोपनामप्रयोगोऽस्ति । आधुनिकस्त कालस्य नवोदीयमानकविषु तु उपनाम प्रति परम् आग्रहोऽस्त्येव, प्रचीन संस्कृत -साहित्यस्य नवनवोन्मेषशालिप्रतिभासमन्विता महाकवयोऽप्यस्यापवादा न सन्ति । केवलमिदमन्तरमस्ति यत् अधुना कवय उपनाम स्वयमेव गृहणन्ति परन्तु संस्कृतसाहित्ये केषांचिद् कवीनामुपनामानि रसज्ञैः तेषां काव्यस्य विशिष्टेन अंशेन प्रसन्नीभूय प्रदत्तानि।

साहित्यसुधासूतिर्महाकविर्भवभूतिः स्वोपनाम्नैतावान् प्रसिद्धोऽभवत् यत् तस्य वास्तविकनाम श्रीकंठोऽपरिचितं प्रतीयते । जन श्रुत्यानुसारं महाकविना अयमुपाधिः स्वेन अनेन अतिप्रसिद्धेन श्लोकेन प्राप्ताः ।

“ गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ ।
तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव ॥”

देव्याः पार्वत्या वन्दनायां रचिते अस्मिन पद्ये भवभूतिरिति शब्दस्य प्रशस्तगुम्फनया संतुष्टा जना:
कवये ‘भवभूति’ रित्युपाधि वितेरुः ।अन्ये तु ‘साऽम्बा पुनातु भवभूतिपवित्र मूर्तिः’ इति श्लोकश्रवणप्रसन्नो राजा भवभूतिरित्येन ख्यापयामास ।

अद्वितीयो भारतीविलासो रघुवंशकारः कालिदासो 'दीपशिखाकालिदास' इति नाम्ना स्मर्यते । संस्कृतसाहित्यस्य अन्येभ्यः कालिदासेभ्यो रघुवंशादीनां रचयितारं पृथक्करणाय 'दीपशिखाकालिदास' इति नाम विशेषतया उपयुक्तमस्ति। दीपशिखाया उपमया चमत्कृताः सहृदयपंडिताः कविमनया उपाधिना भूषयांचक्रिरे । रघुवंशस्य षष्ठसर्गस्य इदं पद्यं उपरिनिर्दिष्टायाः उपमाया मोहकनिदर्शनम् ।

" संचारिणौ दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥"

(रघुवंश ६/६७)

इन्दुमत्याः स्वयम्वरवर्णनप्रसंगे कालिदासः समवर्णयत् यत् यदा इन्दुमती करकमले वरमालां गृहीत्वा कंचित् नरेशं निकषा गच्छति तदा स इत्थं प्रकाशते यथा निशीथे संचारिण्याः दीपशिखाया उज्ज्वलप्रकाशे राजमार्गस्थितः प्रासादः उद्भासते। यदा च सा तमुज्झित्वा पुरतो गच्छति तदा स विवर्णो भवति ।

संस्कृत महाकाव्यक्षेत्रे एकाया नवीनायाः शैल्याः प्रणेताऽस्ति महाकविर्भारवि।प्रायस्तस्य प्रकृतिवर्णनेषु अलंकारस्य अप्रस्तुतविधानस्य च प्राधान्यमस्ति । एकस्मै अप्रस्तुतविधानाय रसज्ञैः स ' आतपत्रभारवि ' रिति नाम्ना अलंकृतः । अस्मिन् पद्ये आतपत्रस्य उपमा भारवेरद्वितीया कल्पनाऽस्ति।

" उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद् भूतः ,
सरसिजसंभवः परागः ।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः ,
समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ॥"

(किरातार्जुनीयम् ५/३९)

कैलासाद्रेः शोभाया वर्णनप्रसंगे यक्षः अर्जुनं ब्रवीति–" पश्य, एतद् फुल्लकुसुमस्थलकमलिनीनां वनम् ।वायुवेगेन आहत आसां सुवर्णपरागो वियति चतुर्दिक् मंडलाकारेण एव प्रसरति यथेदं कांचनातपत्रमस्ति।

महाकविर्माघोऽपि स्वोपनाम्ना " घण्टामाघेन" अत्यन्तं प्रसिद्धोऽसि । निदर्शनार्थालंकारस्य सुन्दरप्रयोगेन तेन अयमुपाधिराप्तः ।कृष्णस्य रथः रैवतकाद्रि निकषा समागच्छति। कृष्णसारथिदारुको रैवतकश्रीवर्णनसमये कथयति–"यदा प्रातःकाले अंशुजालान् वितन्वन्

अर्चिष्मान् पर्वतस्य एकतः उदयति तदा हिमदीधितीर्रश्मिजालान् समावृत्य गिरेः परस्तादस्तं याति। तदा अयमद्रिस्तस्य कुंजरवरस्य शोभां वहति यस्य उभयतो रज्जुबद्धं घंटाद्वयं विलम्बितम् ।

" उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिम-
रूचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
वहति गिरिस्यं विलम्बिघण्टाद्वय-
परिवारित - वारणेन्द्रलीलाम् ॥
(शिशुपालवध ४/२०)

प्रमुखेषु संस्कृतकवीषु दण्डी अप्यस्त्येकः ।

स्वकीये दशकुमारचरिते मंगलाचरणस्य प्रसिद्धपद्ये "ब्रह्माण्डच्छत्रदण्ड" इति सोऽष्टया दण्डशब्दस्यावृत्तिमकरोत् ।अयं प्रयोगः रसज्ञानेतावदरुचत् यत् ते महाकविं "दण्डी" इति उपनाम्ना अलंचक्रुः । तस्येदमुपनाम अत्यधिकं प्रसिद्धमभवत् । उपनाम्न आवरणे कवेर्वास्तविकनामैव अन्तर्हितम् ।अधुना तु जनास्तं "दण्डी" इति उपनाम्ना एव जानन्ति ।

इत्थमेव अन्येषां कवीनामपि प्रयोगानुसारेण उपनामानि सन्ति। यथा उदयकालिकरक्तवर्णचन्द्रबिम्बं कश्चित्कविः कुसुमायुधस्य "रत्नखेटक"- रत्नानां मंजूषा अकथयत् , तस्मात् तस्योपनामैव रत्नखेटकोऽभवत् ।

एवंच निद्रादरिद्रशब्दस्य कुशलविन्यासीकरणेन कस्यचित् कवेः नाम 'निद्रादरिद्रो' ऽभवत ।स चेतत्थम्–

" जाने कोपपराङ्.मुखी प्रियतमा स्वप्नेऽद्य दृष्टा मया
मा मा संस्पर्श पाणिनेति रूदतो गन्तुं प्रवृत्ता पुरः ।
नो यावत्परिरभ्य चाटुशतकैराश्वासयामि प्रियां
भ्रातस्तावदहं शठेन विधिना निद्रादरिद्रीकृतः ॥

महर्षि वेदव्यासस्य मूलनाम कृष्णद्वैपायन आसीत्।वेदानां व्यासीकरणेन- विस्तारीकरणेन- स
वेदव्यासाख्यां जगाम ।

सायणस्य भ्राता विजयनगरराज्यस्य संस्थापको माधवाचार्योऽपि स्वोपनाम्ना विद्यारण्येन प्रसिद्धः । इत्थं ' अकालजलदः' , 'भिक्षाटनः' , 'अभिनवकालिदास' आदीनि कवीनामुपनामानि एव सन्ति।

नलचम्पूकारः त्रिविक्रमभट्ट श्लेषमयगद्येन संस्कृतवाङ्.मये पर्याप्तः प्रसिद्धः । स 'यमुनात्रिविक्रम' इति नाम्ना अपि कथ्यते। यस्य आधारभूतः श्लोकोऽयम्–

"उदयगिरिगतायां प्राक् प्रभापाण्डुताया-
मनुसरति निशीथे शृंगमस्ताचलस्य ।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवम् यामुनं च ॥"

(नलचम्पू ६/१)

एकतः प्राच्युदयाचलवर्तिनोऽर्कस्य पाण्डुवर्णप्रभया अनुरंजयति , परतः क्षपाया अन्धकारः शनैः शनैः एकत्रीभूय अस्ताचलशृंगं उपैति ।भुवः अन्तराले द्वयोः पुंजयोः व्यतिषंगेन एव विलक्षणतेजसः सृष्टिर्भवति, यथा यमुनाजाह्नव्योः
कृष्णगौरप्रवाहः संगच्छते ।

एवं वयं पश्यामः यत् उपनाम्नः विभ्राटेन प्रभावेन नाम निगीर्यते । हिन्दीसाहित्ये उपन्यास- सम्राटः प्रेमचन्दस्य नाम अस्य रोचकमुदाहरणम् । पितृप्रदत्तधनपतरायनाम तस्य प्रेमचन्द इति उपनामसमक्षे आमूलं तिरोहति ।

—-。—

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि-

१.महाकवि कालिदास का रघुवंश
२.महाकवि भारवि का किरातार्जुनीयम्
३.महाकवि माघ का शिशुपालवध
४.महाकवि दण्डी का दशकुमारचरित
५.महाकवि त्रिविक्रम भट्ट का नलचम्पू

M.9958008509
Email- chandraprabha. k17@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 30-41
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जनजातीय विकास की नीतियाँ और कार्यक्रम

डॉ0 पंकज शर्मा, विभागाध्यक्ष, इतिहास,
किशोरी रमण (पी0जी0) कॉलेज, मथुरा,
मोहित कुमार सिंह (शोधार्थी), **शीतल यादव** (शोधार्थी),
डॉ0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,आगरा।

सारांश

यह शोध पत्र भारत में जनजातीय विकास की नीतियों और कार्यक्रमों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 8.6% हिस्सा जनजातीय समुदायों का है, जो देश के विभिन्न भागों में निवास करते हैं। इस पत्र में जनजातीय समुदायों की वर्तमान स्थिति, उनके विकास की आवश्यकता, संवैधानिक प्रावधानों, पंचवर्षीय योजनाओं में जनजातीय विकास के प्रावधानों, और विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों का विवरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त, जनजातीय विकास के क्षेत्र में आने वाली चुनौतियों और उनके संभावित समाधानों पर भी चर्चा की गई है। अंत में, जनजातीय विकास के भविष्य के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए हैं, जो जनजातीय समुदायों के समग्र विकास को सुनिश्चित करने में मदद कर सकते हैं।

1.प्रस्तावना

भारत एक विविधतापूर्ण देश है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और परंपराओं का समावेश है। इस विविधता में जनजातीय समुदाय एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। भारत में लगभग 8.6% जनसंख्या जनजातीय समुदायों की है, जो देश के विभिन्न भागों में निवास करते हैं। इन समुदायों के विकास और कल्याण के लिए भारत सरकार ने विभिन्न नीतियाँ और कार्यक्रम लागू किए हैं। इस शोध पत्र में हम जनजातीय विकास की नीतियों और कार्यक्रमों का विस्तृत विश्लेषण करेंगे।

2. साहित्य समीक्षा

2.1 भारत में जनजातीय विकास: चुनौतियाँ और अवसर

भारत सरकार, जनजातीय कार्य मंत्रालय (2021) की वार्षिक रिपोर्ट 2020-21 में जनजातीय समुदायों के विकास के लिए की गई पहलों और कार्यक्रमों की विस्तृत जानकारी दी गई है। यह रिपोर्ट शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, और सामाजिक कल्याण जैसे क्षेत्रों में किए गए प्रयासों पर प्रकाश डालती है। रिपोर्ट में सरकारी नीतियों के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है और भविष्य की रणनीतियों की भी चर्चा की गई है।[1]

नीति आयोग (2018) की जनजातीय विकास रिपोर्ट में भारत के जनजातीय समुदायों के समक्ष आने वाली चुनौतियों और अवसरों पर चर्चा की गई है। रिपोर्ट में शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका और सामाजिक समावेशन के मुद्दों को प्रमुखता से उठाया गया है। इसमें सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों और कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का भी मूल्यांकन किया गया है।[2]

शर्मा (2019) ने अपनी समीक्षा में भारत में जनजातीय विकास की स्थिति का विश्लेषण किया है। यह अध्ययन इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली में प्रकाशित हुआ है और इसमें विभिन्न नीतिगत पहलों और उनके परिणामों का व्यापक विश्लेषण किया गया है। शर्मा ने विकास के रास्ते में आने वाली बाधाओं और संभावित समाधानों पर भी चर्चा की है ।[3]

2.2 जनजातीय शिक्षा और स्वास्थ्य

मीना (2020) का अध्ययन जनजातीय शिक्षा की नीतियों और उनके कार्यान्वयन पर केंद्रित है। इस शोध में यह दर्शाया गया है कि जनजातीय समुदायों में शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए कौन-कौन सी नीतियाँ लागू की गई हैं और उनके क्या परिणाम रहे हैं। मीना का अध्ययन यूनिवर्सिटी न्यूज़ में प्रकाशित हुआ है और इसमें शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के लिए सुझाव भी दिए गए हैं ।[4]

गुप्ता और सिंह (2018) ने अपने अध्ययन में भारत में जनजातीय स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति और भविष्य की दिशाओं का विश्लेषण किया है। इस शोध में यह बताया गया है कि जनजातीय समुदायों में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और गुणवत्ता में सुधार के लिए क्या-क्या प्रयास किए जा रहे हैं। यह अध्ययन इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च में प्रकाशित हुआ है और इसमें स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में किए गए सुधारों की विस्तृत चर्चा की गई है ।[5]

2.3 वन अधिकार और सामाजिक सशक्तीकरण

रॉय (2021) का अध्ययन वन अधिकार अधिनियम के एक दशक बाद के प्रभावों पर केंद्रित है। यह शोध डाउन टू अर्थ में प्रकाशित हुआ है और इसमें यह दर्शाया गया है कि वन अधिकार अधिनियम ने जनजातीय समुदायों के जीवन पर क्या-क्या प्रभाव डाले हैं। रॉय ने अधिनियम के कार्यान्वयन में आने वाली चुनौतियों और उनके समाधान पर भी चर्चा की है ।[6]

कुमार (2017) ने अपने अध्ययन में जनजातीय विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका का विश्लेषण किया है। यह शोध कुरुक्षेत्र में प्रकाशित हुआ है और इसमें यह बताया गया है कि पंचायती राज संस्थाएँ जनजातीय समुदायों के विकास में किस प्रकार सहायक साबित हो रही हैं। कुमार ने ग्रामीण विकास और जनजातीय सशक्तीकरण के बीच के संबंधों पर भी प्रकाश डाला है ।[7]

2.4 कौशल विकास और महिला सशक्तीकरण

सिंह (2020) ने अपने अध्ययन में जनजातीय युवाओं के कौशल विकास के अवसरों और चुनौतियों का विश्लेषण किया है। यह शोध योजना में प्रकाशित हुआ है और इसमें यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार से जनजातीय युवा विभिन्न कौशल विकास कार्यक्रमों का लाभ उठा रहे हैं और उनके समक्ष आने वाली चुनौतियाँ क्या हैं।[8]

राव (2019) का अध्ययन भारत में जनजातीय महिला सशक्तीकरण की नीतियों और परिणामों पर केंद्रित है। यह शोध जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट में प्रकाशित हुआ है और इसमें यह दर्शाया गया है कि

जनजातीय महिलाएँ सामाजिक और आर्थिक रूप से किस प्रकार सशक्त हो रही हैं। राव ने सशक्तीकरण के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत चर्चा की है और नीतिगत सुधारों के सुझाव भी दिए हैं ।[9]

2.5 विपणन और सहकारी विकास

भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ (TRIFED) (2022) की वार्षिक रिपोर्ट 2021-22 में जनजातीय उत्पादों के विपणन और सहकारी विकास की जानकारी दी गई है। यह रिपोर्ट दर्शाती है कि किस प्रकार से TRIFED ने जनजातीय समुदायों के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। रिपोर्ट में विपणन रणनीतियों, उत्पाद विकास, और सहकारी संगठनों की भूमिका पर भी चर्चा की गई है ।[10]

3. अनुसूचित जनजाति और सामाजिक समावेश

दीक्षित कुमार डी. ध्रुव द्वारा रचित पुस्तक "समाजशास्त्र, अनुसूचित जनजाति" में अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक समावेश पर विस्तृत अध्ययन किया गया है। लेखक ने जनजातीय समुदायों की सामाजिक स्थिति, उनकी आर्थिक स्थिति, और उनके अधिकारों के लिए संघर्ष पर चर्चा की है। इस पुस्तक में सामाजिक समावेश के विभिन्न पहलुओं पर गहराई से विचार किया गया है और जनजातीय समुदायों के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए नीतिगत सुझाव भी दिए गए हैं।[11]

3.1 आदिवासी भारत का व्यापक अध्ययन

श्री श्यामाचरण दुबे की पुस्तक "आदिवासी भारत" में भारत के आदिवासी समुदायों का व्यापक अध्ययन किया गया है। यह पुस्तक आदिवासी समाज के विभिन्न पहलुओं जैसे कि उनकी सांस्कृतिक धरोहर, सामाजिक संरचना, और आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालती है। लेखक ने आदिवासी समाज की चुनौतियों और उनके समाधान के संभावित उपायों पर भी चर्चा की है।[12]

3.2 संवैधानिक प्रावधान और जनजातीय योजनाएं

खाखा वर्जीनियरियस की पुस्तक "योजना, संवैधानिक प्रावधान, कानून और जनजातीय" में जनजातीय समुदायों के लिए संवैधानिक प्रावधानों और योजनाओं पर चर्चा की गई है। यह पुस्तक जनजातीय विकास के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों, योजनाओं और उनके कार्यान्वयन की स्थिति का विश्लेषण करती है। इसमें विभिन्न सरकारी योजनाओं और उनके प्रभावों का भी मूल्यांकन किया गया है।[13]

3.3 मध्य प्रदेश में जनजातीय समाज का अध्ययन

डॉ. श्रीनाथ शर्मा द्वारा रचित पुस्तक "जनजातीय समाज, मध्यप्रदेश" में मध्य प्रदेश के जनजातीय समाज का गहन अध्ययन किया गया है। इस पुस्तक में मध्य प्रदेश के जनजातीय समुदायों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति का विश्लेषण किया गया है। लेखक ने जनजातीय समाज के विकास के लिए नीतिगत सुझाव भी दिए हैं।[14]

4. भारत में जनजातीय समुदाय: एक संक्षिप्त परिचय

भारत में जनजातीय समुदाय मुख्यतः वनों और पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं। ये समुदाय अपनी विशिष्ट संस्कृति, परंपराओं और जीवन शैली के लिए जाने जाते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में 705 अनुसूचित जनजातियाँ हैं।

तालिका 1: भारत में जनजातीय जनसंख्या का वितरण (2011 की जनगणना के अनुसार)

क्रम संख्या	**राज्य/केंद्र शासित प्रदेश**	**जनजातीय जनसंख्या (%)**
1	मिजोरम	94.4%
2	नागालैंड	86.5%
3	मेघालय	86.1%
4	अरुणाचल प्रदेश	68.8%
5	दादरा और नगर हवेली	52.0%
6	मणिपुर	40.9%
7	छत्तीसगढ़	30.6%
8	झारखंड	26.2%
9	ओडिशा	22.8%
10	मध्य प्रदेश	21.1%

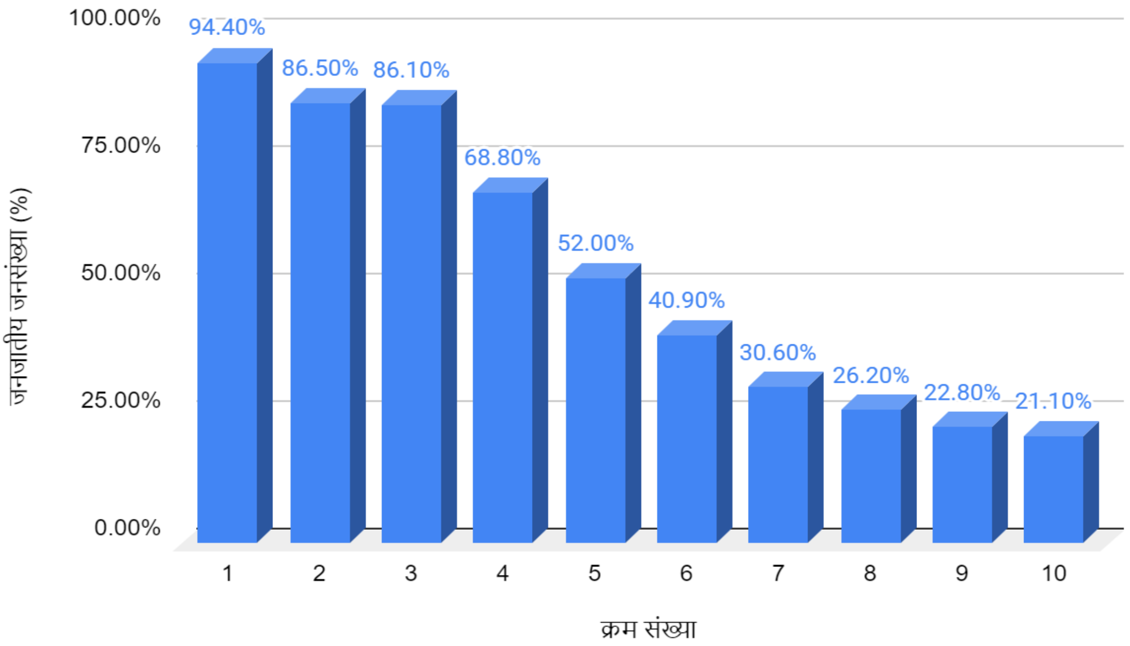

4.1 जनजातीय विकास की आवश्यकता

जनजातीय समुदायों के विकास की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण है:

1. **सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन**: अधिकांश जनजातीय समुदाय गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी से ग्रस्त हैं।
2. **स्वास्थ्य समस्याएँ**: कुपोषण, संक्रामक रोग और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी जनजातीय क्षेत्रों में आम समस्याएँ हैं।
3. **शैक्षिक पिछड़ापन**: शिक्षा तक पहुँच की कमी और उच्च ड्रॉपआउट दर जनजातीय समुदायों में शिक्षा के स्तर को प्रभावित करती है।
4. **सांस्कृतिक संरक्षण**: जनजातीय संस्कृति और परंपराओं का संरक्षण आवश्यक है।
5. **वन अधिकारों का मुद्दा**: वनों पर निर्भरता और वन अधिकारों का मुद्दा जनजातीय समुदायों के लिए महत्वपूर्ण है।

4.2. जनजातीय विकास की नीतियाँ

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान में जनजातीय समुदायों के हितों की रक्षा और उनके विकास के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं:

अनुच्छेद 15(4): यह राज्य को अनुसूचित जनजातियों के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देता है।

1. **अनुच्छेद 16(4)**: यह सरकारी नौकरियों में जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान करता है।
2. **अनुच्छेद 46**: यह राज्य को अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने का निर्देश देता है।
3. **पांचवीं अनुसूची**: यह अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और नियंत्रण के लिए विशेष प्रावधान करती है।
4. **छठी अनुसूची**: यह पूर्वोत्तर राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए विशेष प्रावधान करती है।

पंचवर्षीय योजनाओं में जनजातीय विकास

पंचवर्षीय योजनाओं में जनजातीय विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है:

1. **पहली पंचवर्षीय योजना (1951-56)**: जनजातीय कल्याण के लिए विशेष कार्यक्रमों की शुरुआत।
2. **दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61)**: जनजातीय विकास ब्लॉक की स्थापना।
3. **तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66)**: जनजातीय विकास के लिए बहु-उद्देशीय परियोजनाओं की शुरुआत।
4. **चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74)**: जनजातीय उप-योजना दृष्टिकोण की शुरुआत।
5. **पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79)**: जनजातीय उप-योजना का पूर्ण कार्यान्वयन।

तालिका 2: पंचवर्षीय योजनाओं में जनजातीय विकास के लिए आवंटित धनराशि

योजना अवधि	कुल योजना परिव्यय (करोड़ रुपये में)	जनजातीय उप-योजना के लिए आवंटन (करोड़ रुपये में)	प्रतिशत
छठी योजना (1980-85)	97,500	4,181	4.29%
सातवीं योजना (1985-90)	1,80,000	7,400	4.11%
आठवीं योजना (1992-97)	4,34,100	22,409	5.16%
नौवीं योजना (1997-2002)	8,59,200	32,087	3.73%
दसवीं योजना (2002-07)	15,25,639	72,850	4.78%

ग्यारहवीं योजना (2007-12)	36,44,718	2,44,000	6.69%

जनजातीय उप-योजना

जनजातीय उप-योजना (टीएसपी) एक महत्वपूर्ण रणनीति है जो 1974 में शुरू की गई थी। इसके मुख्य उद्देश्य हैं:

1. जनजातीय क्षेत्रों में विकास की गति को तेज करना।
2. जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना।
3. गरीबी उन्मूलन और शोषण को रोकना।
4. बुनियादी सुविधाओं का विकास।
5. जनजातीय संस्कृति और परंपराओं का संरक्षण।

वन अधिकार अधिनियम

2006 में पारित वन अधिकार अधिनियम जनजातीय समुदायों के लिए एक महत्वपूर्ण कानूनी उपकरण है। इसके प्रमुख प्रावधान हैं:

1. वनवासी जनजातियों को वन भूमि पर अधिकार।
2. गैर-काष्ठ वन उत्पादों के संग्रह और उपयोग का अधिकार।
3. सामुदायिक वन संसाधनों पर अधिकार।
4. पारंपरिक ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा।
5. **5. जनजातीय विकास के प्रमुख कार्यक्रम**

5.1 शिक्षा संबंधी कार्यक्रम

1. **एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय**: यह योजना जनजातीय छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए शुरू की गई थी।
2. **पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति**: यह योजना जनजातीय छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है।
3. **राष्ट्रीय फैलोशिप और छात्रवृत्ति**: यह कारयक्रम जनजातीय छात्रों को उच्च शिक्षा और शोध के लिए प्रोत्साहित करता है।
4. **व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र**: ये केंद्र जनजातीय युवाओं को रोजगारपरक कौशल प्रदान करते हैं।

तालिका 3: जनजातीय शैक्षिक योजनाओं का प्रभाव

योजना का नाम	लाभार्थियों की संख्या (2020-21)	बजट आवंटन (करोड़ रुपये में)
एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय	1,20,000	1,418
पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति	30,00,000	2,987
राष्ट्रीय फैलोशिप और छात्रवृत्ति	5,000	182
व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र	50,000	120

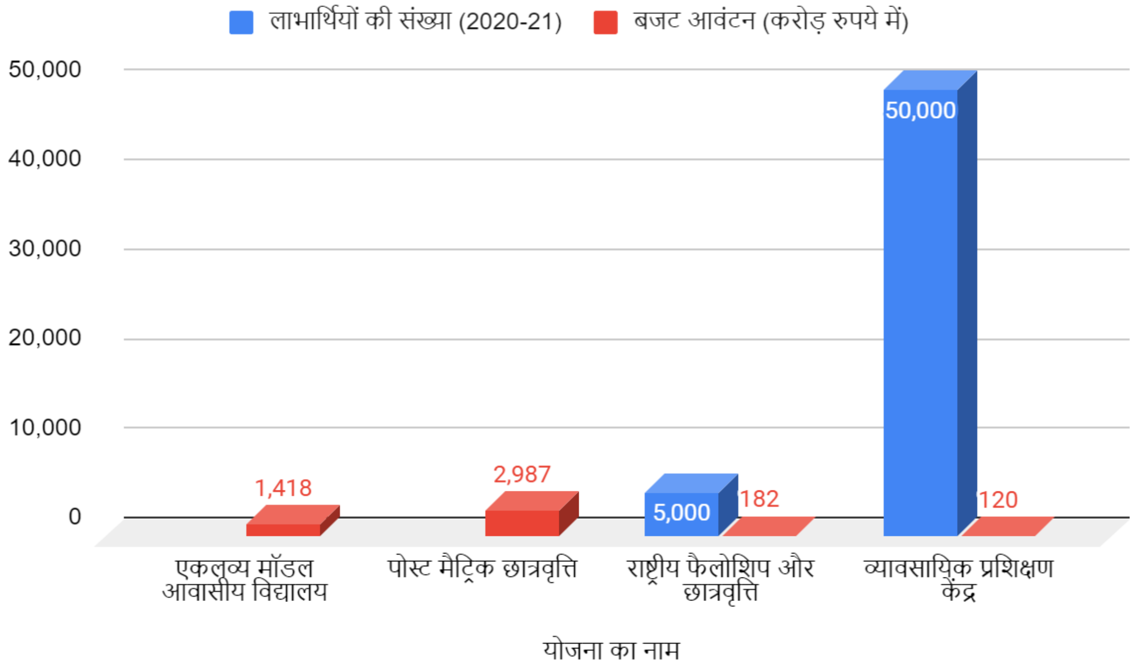

5.2 स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम

1. **राष्ट्रीय जनजातीय स्वास्थ्य मिशन**: यह मिशन जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता और पहुँच में सुधार करने पर केंद्रित है।
2. **मोबाइल मेडिकल यूनिट**: ये यूनिट दूरदराज के जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करती हैं।
3. **सिकल सेल एनीमिया नियंत्रण कार्यक्रम**: यह कार्यक्रम जनजातीय समुदायों में सिकल सेल एनीमिया की रोकथाम और प्रबंधन पर केंद्रित है।

4. **जनजातीय क्षेत्रों में आयुष सेवाओं का विकास**: यह योजना पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों को बढ़ावा देती है।

5.3 आर्थिक विकास के कार्यक्रम

1. **वन धन योजना**: यह योजना जनजातीय समुदायों को वन उत्पादों के संग्रह और विपणन में सहायता प्रदान करती है।
2. **राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त और विकास निगम (NSTFDC)**: यह निगम जनजातीय उद्यमियों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है।
3. **जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ (TRIFED)**: यह संघ जनजातीय उत्पादों के विपणन में सहायता करता है।
4. **कौशल विकास और उद्यमिता कार्यक्रम**: ये कार्यक्रम जनजातीय युवाओं को रोजगार के लिए तैयार करते हैं।

तालिका 4: आर्थिक विकास कार्यक्रमों का प्रभाव

कार्यक्रम का नाम	लाभार्थियों की संख्या (2020-21)	आर्थिक प्रभाव (करोड़ रुपये में)
वन धन योजना	45,00,000	3,000
NSTFDC ऋण	1,50,000	500
TRIFED विपणन सहायता	10,00,000	1,200
कौशल विकास कार्यक्रम	2,00,000	300

5.4 सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम

1. **विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों का विकास**: यह कार्यक्रम अति संवेदनशील जनजातीय समूहों पर केंद्रित है।
2. **जनजातीय अधिकार कानून का कार्यान्वयन**: इसके तहत वन अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है।
3. **महिला सशक्तीकरण योजनाएँ**: ये योजनाएँ जनजातीय महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक उत्थान पर केंद्रित हैं।
4. **बाल विकास कार्यक्रम**: ये कार्यक्रम जनजातीय बच्चों के समग्र विकास को सुनिश्चित करते हैं।

6. चुनौतियाँ और समस्याएँ

जनजातीय विकास की नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ हैं:

1. **भौगोलिक दुर्गमता**: दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समुदायों तक पहुँचना कठिन है।
2. **सांस्कृतिक संवेदनशीलता**: विकास कार्यक्रमों को जनजातीय संस्कृति के अनुरूप बनाना चुनौतीपूर्ण है।
3. **शिक्षा की गुणवत्ता**: जनजातीय क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती है।
4. **स्वास्थ्य सेवाओं की कमी**: दूरदराज के क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी एक गंभीर समस्या है।
5. **आर्थिक पिछड़ापन**: जनजातीय समुदायों का आर्थिक विकास अभी भी एक बड़ी चुनौती है।
6. **वन अधिकारों का मुद्दा**: वन अधिकार कानून के कार्यान्वयन में कई बाधाएँ हैं।
7. **भाषाई बाधाएँ**: विभिन्न जनजातीय भाषाओं के कारण संचार में कठिनाई आती है।
8. **नक्सलवाद का प्रभाव**: कुछ जनजातीय क्षेत्रों में नक्सलवाद विकास कार्यक्रमों को प्रभावित करता है।

7. सुझाव और समाधान

जनजातीय विकास की नीतियों और कार्यक्रमों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

1. **समुदाय आधारित दृष्टिकोण**: विकास कार्यक्रमों में जनजातीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
2. **स्थानीय भाषा का उपयोग**: शिक्षा और संचार में स्थानीय जनजातीय भाषाओं का उपयोग किया जाए।
3. **पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण**: जनजातीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान और कौशल को संरक्षित और प्रोत्साहित किया जाए।
4. **आजीविका के वैकल्पिक स्रोत**: वन-आधारित आजीविका के साथ-साथ वैकल्पिक रोजगार के अवसर प्रदान किए जाएँ।
5. **डिजिटल साक्षरता**: जनजातीय युवाओं को डिजिटल कौशल प्रदान किया जाए।
6. **स्वास्थ्य बीमा**: जनजातीय समुदायों के लिए व्यापक स्वास्थ्य बीमा योजनाएँ लागू की जाएँ।
7. **सूक्ष्म वित्त**: जनजातीय उद्यमियों के लिए सूक्ष्म वित्त सुविधाओं को बढ़ावा दिया जाए।
8. **पर्यावरण संरक्षण**: जनजातीय क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण को प्राथमिकता दी जाए।

तालिका 5: प्रस्तावित सुधारों का संभावित प्रभाव

सुधार का क्षेत्र	वर्तमान स्थिति	प्रस्तावित लक्ष्य (5 वर्ष)
साक्षरता दर	59%	75%
स्वास्थ्य बीमा कवरेज	30%	80%
डिजिटल साक्षरता	15%	50%
वन अधिकार पट्टे	40%	90%
स्वरोजगार	25%	50%

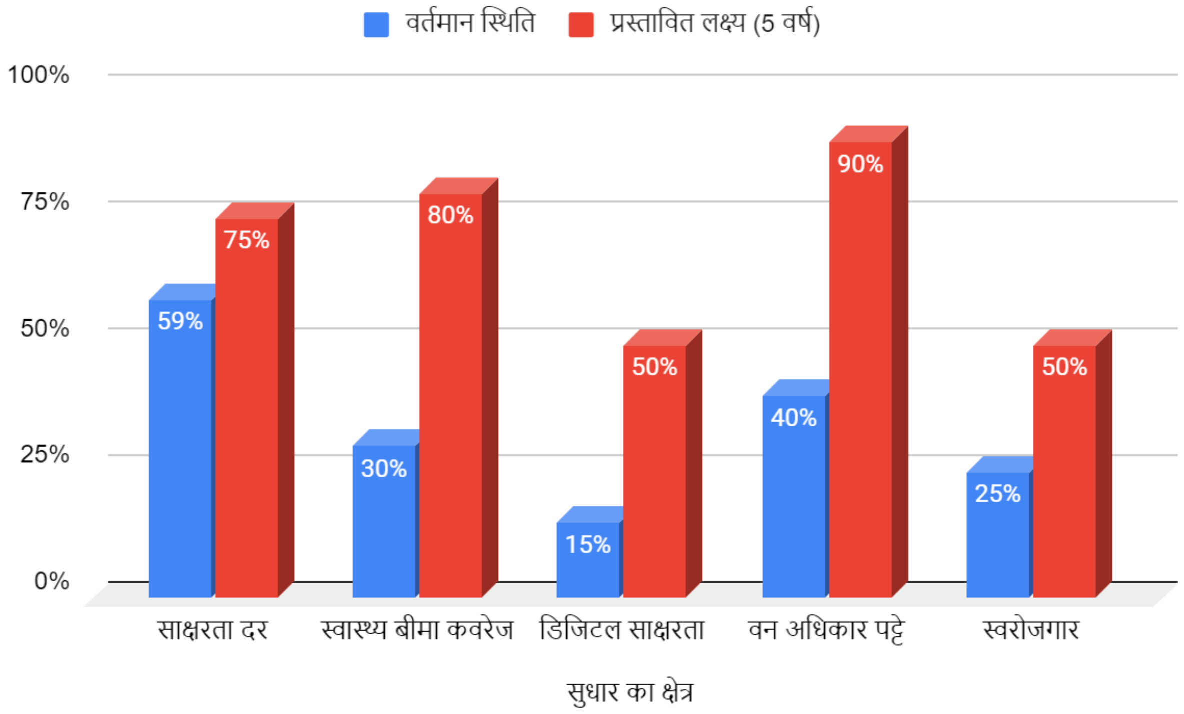

8. निष्कर्ष

जनजातीय विकास भारत के समग्र विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। पिछले कुछ दशकों में सरकार द्वारा कई महत्वपूर्ण नीतियाँ और कार्यक्रम लागू किए गए हैं, जिनका उद्देश्य जनजातीय समुदायों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान को सुनिश्चित करना है। हालाँकि, अभी भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

जनजातीय विकास की सफलता के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जो न केवल आर्थिक विकास पर ध्यान दे, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय पहलुओं को भी ध्यान में रखे। सरकार, गैर-सरकारी संगठनों और जनजातीय समुदायों के बीच सहयोग और समन्वय से ही वास्तविक विकास संभव है।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि जनजातीय विकास एक निरंतर प्रक्रिया है, जिसमें नवीन विचारों, प्रौद्योगिकी और स्थानीय ज्ञान के समन्वय की आवश्यकता है। भविष्य में, जनजातीय समुदायों को मुख्यधारा के विकास में एकीकृत करने के साथ-साथ उनकी विशिष्ट पहचान और संस्कृति को संरक्षित करने पर भी ध्यान देना होगा। इस संतुलन को बनाए रखना ही जनजातीय विकास की सफलता की कुंजी होगी।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार, जनजातीय कार्य मंत्रालय. वार्षिक रिपोर्ट 2020-21. नई दिल्ली: भारत सरकार; 2021.
2. नीति आयोग. जनजातीय विकास रिपोर्ट: चुनौतियाँ और अवसर. नई दिल्ली: नीति आयोग; 2018.
3. शर्मा ए. भारत में जनजातीय विकास: एक समीक्षा. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली. 2019;54(15):45-52.
4. मीना वीएस. जनजातीय शिक्षा: नीतियाँ और कार्यान्वयन. यूनिवर्सिटी न्यूज़. 2020;58(29):3-9.
5. गुप्ता एम, सिंह आर. भारत में जनजातीय स्वास्थ्य: वर्तमान स्थिति और भविष्य की दिशाएँ. इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च. 2018;148(6):704-11.
6. रॉय पी. वन अधिकार अधिनियम: एक दशक बाद. डाउन टू अर्थ. 2021 मार्च 15.
7. कुमार एस. जनजातीय विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका. कुरुक्षेत्र. 2017;65(12):15-19.
8. सिंह बीके. जनजातीय युवाओं का कौशल विकास: अवसर और चुनौतियाँ. योजना. 2020;64(8):41-45.
9. राव वीके. भारत में जनजातीय महिला सशक्तीकरण: नीतियाँ और परिणाम. जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट. 2019;38(2):184-201.
10. भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ (TRIFED). वार्षिक रिपोर्ट 2021-22. नई दिल्ली: TRIFED; 2022.
11. दीक्षित कुमार डी. समाजशास्त्र, अनुसूचित जनजाति. इंदौर: शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी; 2014. पृ. 2-3.
12. दुबे श. आदिवासी भारत. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; पृ. 10-11.
13. खाखा वर्जीनियरियस. योजना, संवैधानिक प्रावधान, कानून और जनजातीय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2014. पृ. 72.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 42-48
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Challenges and Opportunities of Growth of Entrepreneurship in India

Ms. Aastha Vats, Research Scholar,
Prof. Madhu Ahlawat, Professor, Baba Mastnath University, Rohtak

Abstract:

Since it generates revenue for the country and creates jobs, the growth of entrepreneurship is closely related to the GDP of the country. In industrialised nations, it makes up over 60% of the employment share. In an effort to tackle the unemployment and poverty issues, the government is constantly encouraging the growth of entrepreneurship. Opportunities for the growth of entrepreneurship are abundant in India. Business is still in its infancy in many areas. Due to this, India's entrepreneurship is currently seeing new opportunities for growth. The nation has development problems rather than massive entrepreneurship potential. Indian entrepreneurs face two major challenges: inadequate infrastructure and a deficiency of business skills. The goal of this article is to highlight the key obstacles and explosive growth prospects facing Indian entrepreneurship.

Keywords: Entrepreneurship, infrastructure, employment, economic development.

Introduction:

The growth of entrepreneurship is demonstrated by the economic advancements of sophisticated industrialised nations. Prominent global economies demonstrate a positive correlation between entrepreneurship and economic growth. Furthermore, developing nations want to keep up initiatives like Made in India and start-up to foster entrepreneurship in their nations. While executing these programmes, entrepreneurs in India confront a number of difficulties, such as easy access to money from funding organisations. Nevertheless, India is a positive step in the growth of entrepreneurship. Getting funding at the beginning phase is extremely difficult, and while working capital is necessary for an enterprise to operate, funding daily expenses is more difficult to come by. As a result, financial issues impact businesses both in their early stages of development and when they are competing against established rivals operating in international markets. One of the biggest obstacles to the development of entrepreneurship in the nation is the lack of appropriate trained workers with the necessary technical knowledge. Insufficient knowledge about entrepreneurship is causing entrepreneurs to struggle with developing the enterprise's goal. In India, it is the main reason why 70% of newly established small businesses fail. Due to large players in the industry using hunter marketing methods, small business owners are currently having difficulty. They manufacture goods ranging in size from small to large for every market niche and always strive to subjugate small business owners in order to increase their market share and reach. And small business owners require money to combat them, but they are not as powerful as major market players, so after a few successes, they will close their doors or launch new ones. As such, it must to be taken into account by the nation's entrepreneurship development planner while formulating plans for entrepreneurial development.

Finding opportunities on your own is a difficult process. More research and analysis are required for those who wish to launch a new business. They are launching their business utilising cost-based profit or scope-based profit tactics as a result. Given that the most of necessity-based enterprises are found in India, this is a very difficult assignment for them. The opportunity-based entrepreneur looks for opportunities to spend their capital, time, and energy in growing industries. Additionally, they are constantly terrified to lose the money they invest, so they only want to put it into "cash cow" industries that can yield high returns.

Additionally, globalisation offers chances for the growth of entrepreneurship. It lessens the amount of government control over the internal economy while maximising private sector activity and minimising public sector activity. The influence of globalisation is seen in the current level of small industry and service sector growth, or in the movement of an economy away from agriculture-specific output and towards small-scale industry and service sector development. Globalisation makes it possible to look at entrepreneurship in a broader context and to transfer ideas, technologies, and innovations. However, there are certain difficulties that small business owners face as a result of globalisation. Because of globalisation, it is now simpler to introduce technology into other countries and to invest there. For a small business owner, it is a difficult chore, though. Due to a lack of marketing skills and financial resources, they operate in a relatively limited market and work in a very narrow region, whereas larger market players may take advantage of globalisation to expand throughout the industry.

There are 51 million small businesses in India, employing 117 million people and making about 40% of the country's export earnings. Since September 18, 2015, the Indian government has made it easier to register as an entrepreneur by using the Udyog Adhar Memorandum. The entrepreneur can also register online and use self-certification as a foundation for registration, eliminating the need for supporting documentation. Over five lakh enterprises registered between September 2015 and March 31, 2016. Entrepreneurs may now examine the opportunity sector thanks to the introduction of a digital portal that allows for registration and access to relevant information.

Literature Review:

Globally, entrepreneurship is a key factor in the development and expansion of economies. The purpose of this review of the literature is to investigate and evaluate the body of knowledge about the connection between economic growth and entrepreneurship, with an emphasis on the several ways that entrepreneurship impacts and advances economic development.

Fatoki (2018) listed several success elements, including the achievement of the entrepreneur's goals, personal fulfilment in both business and personal life, what he wishes to do in both life and company, and what he enjoys doing. These variables are taken into account when measuring success.

Christopoulos and Vogl (2014) claim that social entrepreneurs are driven by social needs, as opposed to commercial entrepreneurs who approach problems only from an economic perspective. Olsen [38] shares this view, contending that social entrepreneurs employ the same instruments often employed in the regular industry, but adapt them to address social issues.

C.K.Prahlad (2008) assert that entrepreneurship requires creativity. When it comes to innovation, entrepreneurs should use the "sand box" strategy. The reason is that in nations like India, where 700 million people live at the foot of the pyramid, sand flows freely and shifts borders, allowing for inquiry and even light-hearted experimentation under incredibly defined particular limits (the walls, straight & hard). It is becoming clear that innovations that satisfy these requirements are needed for consumers with different economic levels. The country exhorts entrepreneurs to look into local chances since, in order to flourish, they must

continuously innovate and tap into everyone's ideas in the firm. An essential component of an entrepreneurial trait is innovation.

Austin et.al. (2006), in an attempt to identify distinctions, they compared social and commercial entrepreneurship using four characteristics. Market failure, which characterises an inefficient allocation of commodities and services in a free market, is the first variable employed. In this way, a challenge for the business entrepreneur turns into a chance for the social entrepreneur. The entrepreneur's ideals and ambitions, or mission, constitute the second variable. While the entrepreneur aims to create lucrative operations that initially provide private profitability for the shareholders, the fundamental goal of social entrepreneurship is, in theory, the production of social value for public benefit.

Objectives:

- To examine the developing market and its significance in relation to entrepreneurship.
- To determine the main obstacles to India's development of entrepreneurship.

Opportunities of Entrepreneurship in India:

- **Agripreneurship:** In India, entrepreneurship is a means of subsistence for rural residents and a means of eradicating poverty. India's agriculture industry has a great chance to develop agricultural products and sell them on the international market. In India, technology-based entrepreneurship is currently flourishing. India's land is very fertile, making it suitable for producing a wide variety of goods. India's regions are rich in the ability to generate a wide variety of agricultural products. The virtuous corporate wage worker is now gravitating towards entrepreneurship and making a healthy profit.
- **Tourism Entrepreneurship:** In the 2015 Travel & Tourism Competitiveness Report, India came in at number 52 out of 141 nations worldwide. Twenty percent of the global service sector is made up of entrepreneurs in the tourist industry. According to estimates from the global travel and tourism industry, the council tourism sector generates 8.31 lakh crore and accounts for 8.31% of India's GDP overall. With 37.315 million jobs created, it accounts for 8.7% of all employment. By 2025, growth at a rate of 7.5% is anticipated. In the 2015 travel and tourism competitiveness study, India Gate came in at number 52 out of 141 nations.
- **Reclamation Enterprise:** Indian business owners have excellent opportunities in the field of waste and disposal management. In India, the only trash that will increase by 500 percent between 2007 and 2020 is computer garbage. It is concerning because it has expanded after ten years. Should the recycling industry in India be thoroughly investigated, it has the potential to become a significant source of job opportunities. It might take the shape of a separate industry with distinct sectors, such as recycling building debris, electronic trash, aluminium canes, and household items.
- **Energy-Related Solution:** Every business is propelled by energy. The globe has a big need for energy-saving and less energy-consuming gadgets, thus the market for power-saving products is expanding quickly. National Solar Mission is also managed by the government. The former government asked Indian entrepreneurs to study Silicon Valleys in the solar energy space and create India's own solar valley.
- **Automobile:** After China, India is the automotive product market with the quickest growth. It is currently among the biggest centres for small care production. The fabrication of components presents a fantastic potential for entrepreneurs. As a result, India's automobile industry offers plenty of opportunities for entrepreneurs.
- **Textiles:** India's textile industry is well-known. Diverse geographic areas' customs are providing entrepreneurs with new business opportunities. Due to India's large population and the fact that foreigners favour Indian domestic clothing patterns, the

textile industry has excellent opportunities for businesses. Several of India's developed regions contribute significantly to the nation's export industry.

- **Social Enterprise:** Due to the large sector of social welfare work in India, social entrepreneurship is currently flourishing the majority of business owners in India who are engaged in women's empowerment, health, education, and awareness campaigns.
- **Software:** In a relatively short period of time, the Indian software sector has become globally operational. Today, Bangalore and the National Capital Region (NCR) export software to the global market. Indian software engineers make up the biggest pool, thus there are plenty of opportunities for them in the software development space. The reason for its boom is the rise in information-enabled services in India.
- **Technical Products:** One of the largest manufacturers of engineering items nowadays is India. The engineering gods are currently being exported in large quantities to other nations. A growing demand for goods means that entrepreneurs need to seize the chance to engineer them.
- **Commercialization:** The vast market and expanding range of various products and services in India provide several franchise opportunities. India's entrepreneurial team is attracting entrepreneurs due to the growing need for various industrial brands in rural areas. The fields of education, clothing, information technology services, etc. are strong candidates for franchising.
- **Instruction & Experience:** The vast majority of India's population is underage, which is encouraging education entrepreneurship in the country with innovative approaches to teaching the country's youth. There are several options for the rural sector to offer education. India's entrepreneurs have a lot of opportunities in the affordable, IT-based education system.
- **Processing of food:** Maximum population is maximum amount of food needed. The abundance of a wide variety of foods in every part of India presents a huge opportunity for the food industry. India's growing need for ready-to-eat food in both its urban and rural areas has created a need for strong networks among food processing enterprises.
- **Business Requirements & Advisors:** The most benevolent corporations in India are now hoping to establish offices and branches there, and they are employing people who can satisfy their needs. As a result, it is also one of the most promising fields in India for using entrepreneurial skills.
- **Natural Product:** The majority of herbal products' raw materials are readily available, ensuring the product is produced at the lowest possible cost. This region's tribe is likewise skilled in producing this kind of goods. Thus, there are excellent chances to set up herbal production facilities. The domestic Indian herbal market may be largely divided into two groups. The first is the market for raw materials needed to run a manufacturing facility, and the second is the market for completed items, such as vitamins and medications.
- **Other Opportunities:** Given the abundance of chances in the aforementioned field, Indian entrepreneurs may also consider exploring other areas to further explore their entrepreneurial potential. Indian entrepreneurs can find great opportunities in a variety of different business sectors, including the healthcare industry, biotechnology, horticulture, mineral mining, beverage and alcohol industries, organic forming, media, packaging, floral design, toys, and Ayurvedic products and handicrafts.

Challenges of Entrepreneurship Development:

- **Culture:** In assessing a person's degree of drive, self-assurance, capacity for taking risks, and other entrepreneurial skills across its diverse populations, Indian culture is

the most successful. Due to cultural restrictions, engaging in entrepreneurial activity is now having a significant impact on the growth of entrepreneurship. One noteworthy illustration of this is the underdevelopment of women's entrepreneurship. While it is true that there is a culture in India that does not value business failure, this could be understood as an opportunity for learning.

- **Entrepreneurial Concept:** One of the biggest obstacles facing entrepreneurs is coming up with a fresh idea or vision based on an established company model. The majority of small company owners feel at ease with how business is being conducted these days. Because they are incapable of doing so, they are not projecting or predicting the future. They operate based on time demands and lack knowledge, which makes them irrelevant in the marketplace. They are unable to come up with fresh company ideas because they are unable to imagine how they may solve the difficulties of others.
- **Recruiting:** It is exceedingly difficult for a new business to pay employees compared to an established, well-run business, hence it is difficult to locate qualified workers during the initial stage. However, it might be difficult to predict consumer demand for goods and services in a fluctuating market, so entrepreneurs can lose out if a new company hires qualified workers at the highest salary. Furthermore, India's largest labour need is in the skilled labour market. India has such a great need for skilled labour that the National Skill Development Corporation (NSDC) has set a goal to train 150 million people by 2022.
- **Low degree of motivation:** Due to a lack of entrepreneurial confidence and education, small business owners are incredibly unmotivated. Although they are skilled in managing businesses, they lack the confidence to grow their businesses and take risks. The majority are unaware of the monetary worth of their time commitment.
- **Insufficient technical expertise:** The rise of entrepreneurship is being impeded by the lack of use of technology. It's impossible to expand market coverage and market share without it. The small business owner does not attend technical school. Although they are capable of producing the goods on their own, they are unsure about the technology that will be used in their business. Their native method of managing businesses is still inefficient and highly expensive.
- **Insufficient Infrastructure:** The infrastructure that is available to support entrepreneurship is extremely lacking. The infrastructure presents constant hurdles for entrepreneurs. In any case, it has somewhat improved but still needs improvement. Rural areas have slow transit options that are only partially connected to the railway, making it difficult to distribute goods quickly.
- **Modifications to Policy:** The government functions as a facilitator of the entrepreneurial ecosystem in every nation. The formation of an effective and implementable ecosystem for entrepreneurship is a pipe dream in the absence of an enabling environment. India's ranking of 142 out of 189 nations in the World Bank Ease of Doing Business Report raises serious concerns. Additionally, India's business rank is 158 to start. Entrepreneurs find it difficult to comprehend how government changes are constantly affecting policies. There are no appropriate media outlets to inform people directly about policy changes, and the current methods of raising awareness about policy changes are still inadequate. The legislative changes are making it more difficult for Indian businesses to meet the new requirements, as they need a separate approach.
- **Financial Difficulties:** Since finance is the lifeblood of business, young entrepreneurs are dealing with a critical issue. It is an ongoing issue for Indian startups. While some

angel investors are working, it is not enough. In India, there aren't many major cheque writer investors. To some extent, the government and non-government funding sources established for the growth of entrepreneurship are functioning effectively. The majority of rural business owners are unaware of how to access government funding sources. If someone is aware, they must deal with the complicated laws and regulations around money borrowing. In the event that they launch a business by securing startup funding, they will have a working capital shortage. Getting operating capital for small business owners is a challenge. Currently, the business owners are dealing with the following financial issue.

1. Startup funding issue
2. Problem with working capital
3. Having trouble getting a loan

- **Promotion of the Good:** Small business owners create the products, yet often lack marketing expertise. As a result, small business owners have relatively little marketing ability, which drives income growth and investments. The majority of rural business owners lack fundamental marketing knowledge and don't employ contemporary marketing strategies. Their product is being sold in nearby markets. They have no connection to internet marketing at all. They are not promoting, advertising, or barding their goods in any way. Small business owners' ability to sell their goods is entirely dependent on middlemen, who make more money than the entrepreneurs do. Small and rural business owners often face difficulties with transportation and warehousing. They resort to using more expensive traditional marketing techniques to disseminate their product if there isn't a designated channel. The marketing strategies of positioning and segmenting are unknown to them. In the competitive market, product price strategies are essential for survival; yet, their product's existence in the market will be challenging if they don't use this. It is therefore an excellent chance for Indian entrepreneurs to create a marketing service provider and offer strategy creation and implementation services.
- **Other Challenges:** Including the above challenges of entrepreneurship development, other challenges are also exist in the country. The Indian rural entrepreneurs are until unable to update with required skills and team management quality, Fear of failure and traditional organizational structure, Instability stress, Overestimating success, Traditional organization structure, Maintaining ecological balance, Obsolescence of indigenous technology, Finding right business location, Finding good employee, Capacity utilization, Lack of support, Negative mind-set, it is not possible to compete globally.

Conclusion:

In the competitive market, entrepreneurs must overcome a variety of obstacles in order to thrive or even to exist. They lack the infrastructure necessary to implement their company plan or grow their current firm. They are having trouble raising the money necessary to start or continue their production process. The knowledge and abilities of entrepreneurs should be updated by fresh, creative production techniques. They always struggle with management and marketing. In order to expand their firm, they must become knowledgeable about contemporary marketing and management tools and procedures. They can apply their own principles to sell their products and manage for a conventional organisational structure. The Adhar-linked financing plan may now be useful to entrepreneurs seeking funding, since before it was difficult for them to obtain the financial support they needed to start or grow their business due to financial institution procedures.

Given that the internet is today the primary global source for marketing and promotion, entrepreneurs must teach their staff on internet marketing and internet promotional

techniques. As a result, the ideal environment must be created for entrepreneurs to succeed. The government ought to guarantee that business owners have access to modern entrepreneurship training. In order for them to share services and consultations, the government should encourage networking and exchange systems. The growth and promotion of entrepreneurship will be of greater interest to the federal government as well as state governments.

References:

1. Dr. N. Santhi and S. Rajesh Kumar, 2011 "Entrepreneurship Challenges and Opportunities in India" Bonfring International Journal of Industrial Engineering and Management Science, Vol. 1, Special Issue, December 2011-14.
2. . Dr. Sangeeta Mohanty Et all " Tribal entrepreneurship: A study on Tribal Cooperative marketing Development
3. Federation of India" retrieved from http://accman.in/gpj2015/Article2.pdf
4. Dr. Vineet Chauhan et. All Retrieved from www.publishyourarticle.com http://business.rediff.com/slide-show/2010/may/04/slide-show-1-good-opportunities-forentrepreneurs.
5. https://en.wikipedia.org/wiki/Agriculture
6. https://en.wikipedia.org/wiki/Forest_produce_(India)
7. M.N.Shahidi, at all "The challenges of entrepreneurship in dynamic society" Central Asia Business, ISSN 1991-0002 Volume I, No. 1, 2008 pg. 34-45.
8. Prof. Karuness saxena & Dr. Kartik Dev " Problem & Prospect of marketing of Rural Product: an empirical Study of tribal region Of Rajasthan India" Oxford Business & Economics Conference program ISBN: 987-0-9742114-1-9.
9. Prof. Vinayagammoorthy "Problem & Prospects of rural retail marketing in India" ISSN: 2347-4793, Asia Pacific Journal of Research vol: 1 August 2014.
10. 13. R. S. Kanchana, J. V. Divya, and A. Ansalana Beegom, 2013 "Challenges faced by new Entrepreneurs".
11. 14. Saxena Sandeep, 2012 ' Problems faced by Rural Entrepreneurs and Remedies to solve it" Retrieved from https://pdfs.semanticscholar.org
12. Liu, X., Burridge, P., & Sinclair, P. J. (2002).Relationships between economic growth, foreign direct investment and trade: evidence from China. Applied Economics, 34(11),1433- 1440
13. MSME (2008). Khadi and Village Industry Commission. Available: msme.gov.in/Chapter%207-Eng_200708.pdf
14. Swami Vivekananda ―Entrepreneurship on Focus Smallbone, D. & Welter, F. (2001) The role of government in SME development in transitioneconomies. International Small Business Journal, 19(4), 63-77.
15. Christopoulos, D.C.; Vogl, S. The Motivation of Social Entrepreneurs: The Roles, Agendas and Relations of Altruistic Economic Actors. *J. Soc. Entrep.* **2014**, *6*, 1–30. [**Google Scholar**] [**CrossRef**]
16. Austin, J.; Stevenson, H.; Wei–Skillern, J. Social and Commercial Entrepreneurship: Same, Different, or Both? *Entrep. Theory Pract.* **2006**, *30*, 1–22. [**Google Scholar**] [**CrossRef**] [**Green Version**]

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 49-54
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

আয়ুর্বেদশাস্ত্রে বাঙ্গালীর অবদান

Dr. Narayan Sarkar, State Aided College Teacher , Category – I,
Dept. of Sanskrit, Gangarampur College, West Bengal.

যে শাস্ত্র পাঠ করলে আয়ু সম্পর্কে বিভিন্ন তথ্য জানা যায় সেই শাস্ত্রকে বলা হয় আয়ুর্বেদ। কোন ব্যাক্তি স্বল্পায়ু হবে না দীর্ঘায়ু হবে , সে স্বাস্থ্যবান হবে না রোগযুক্ত আয়ু নিয়ে জীবনযাত্রা নির্বাহ করবে - এ সকল বিষয় অবগত হওয়া যায় আয়ুর্বেদ থেকে। জীবনের লক্ষ্য যাই হোক না কেন , সেই লক্ষ্যে উপনীত হওয়ার মূলে আছে সুস্বাস্থ্য ও নীরোগ শরীর। স্বাস্থ্যহীনতা ও রুগ্নতা জীবনসংগ্রামে ব্যর্থতার মূল কারণ। চরকসংহিতায় বলা হয়েছে -

"ধর্মার্থাকামমোক্ষাণামারোগ্যং মুলমুত্তমম্ ।
রোগাস্তস্যাপহর্তারং শ্রেয়সো জীবিতস্য চ ।।"[1]

আয়ুর্বেদের প্রয়োজন - "শরীরং ব্যাধিমন্দিরম্" - মানুষের শরীরমাত্রেই ব্যাধির আকর। মানুষমাত্রেই স্বাস্থ্য রক্ষার নিয়ম কমবেশী লঙ্ঘন করে থাকে। তাছাড়া মানুষকে কাল , ঋতু ও প্রকৃতির খেয়াল সহ্য করে নানা বিপর্যয়ের মধ্যে দিয়ে জীবন অতিবাহিত করতে হয়। এর ফলে শরীরনির্মানকারী ধাতুসমূহ বিকৃত হয়। শরীরের উপর কোন অত্যাচার না করা সত্ত্বেও তাই মানুষ নানাপ্রকার ব্যাধিতে পীড়িত হয়। স্বাস্থ্যরক্ষার সমস্ত নিয়ম পালন করলেও ব্যাধির হাত থেকে নিস্কৃতি নেই। আয়ুর্বেদশাস্ত্রেই নিহিত আছে ধাতুসমূহকে সাম্যাবস্থায় আনার নানান উপদেশ। বিভিন্ন রোগের কারণ এবং সেগুলির প্রতিকারের বিজ্ঞানসম্মত উপায়ও নির্দিষ্ট হয়েছে আয়ুর্বেদশাস্ত্রে। কাজেই শরীরগঠনকারী ধাতুসমূহকে সাম্যাবস্থায় এনে বিভিন্ন ব্যাধির প্রকোপ থেকে নিস্কৃতি লাভ করার জন্যই আয়ুর্বেদশাস্ত্র অপরিহার্য্য। তাই চরকসংহিতায় বলা হয়েছে -

"...... কার্যং ধাতুসাম্যমিহোচ্যতে ।
ধাতুসাম্যক্রিয়া চোক্তা তন্ত্রস্যাস্য প্রয়োজনম্ ।।"[2]

আয়ুর্বেদশাস্ত্রের উত্পত্তি - এরূপ প্রসিদ্ধি আছে যে , লোকপিতামহ ব্রহ্মা প্রজা সৃষ্টি করার পূর্বে ব্রহ্মসংহিতা নামে একলক্ষ শ্লোকে নিবদ্ধ এবং এক সহস্র অধ্যায়ে বিভক্ত আয়ুর্বেদশাস্ত্র রচনা করেছিলেন। পরে তিনি তাঁর সৃষ্ট জীবকূলকে অল্পায়ু ও স্বল্পধী দেখে সেই বৃহদাকার ব্রহ্মসংহিতাকে ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র অষ্টাঙ্গে বিভক্ত করে অষ্টাঙ্গ আয়ুর্বেদ সৃষ্টি করেন। ব্রহ্মার

---

[1] চরকসংহিতা , সূত্রস্থান - ১।১৫ ।

[2] চরকসংহিতা , সূত্রস্থান - ১।৫৫ ।

কাছ থেকে এই অষ্টাঙ্গ আয়ুর্বেদ শিক্ষালাভ করেন বিষ্ণু , মহেশ্বর , সূর্য এবং দক্ষ প্রজাপতি। দক্ষপ্রজাপতির কাছ থেকে অশ্বিনীকুমারদ্বয় , অশ্বিনীকুমারদ্বয়ের কাছ থেকে দেবরাজ ইন্দ্র এই বিশেষ শাস্ত্র অধিগত হন। স্বয়ম্ভূ ব্রহ্মার দ্বারা বিভক্ত অষ্টাঙ্গ আয়ুর্বেদের আটটি অঙ্গ বা তন্ত্র হল - ১. শল্য ২. শালাক্য ৩. কায়চিকিত্সা ৪. ভূতবিদ্যা ৫. কৌমারভৃত্য ৬. অগদ ৭. রসায়ন এবং ৮. বাজীকরণ।

শল্যতন্ত্রে আছে কাষ্ঠ , পাষাণ , লৌহ , অস্থি , ধূলি প্রভৃতি শরীরে প্রবেশ করলে তা নির্গত করার বিভিন্ন উপায়ের বিস্তৃত বিবরণ। কর্ণ , চক্ষু , মুখ , নাসিকা জনিত রোগসমূহের নিরাময়ের ব্যবস্থা উপদিষ্ট হয়েছে শালাক্যতন্ত্রে। কায়চিকিত্সাতন্ত্রে বিবিধ অঙ্গাশ্রিত ব্যাধির , বিশেষতঃ জ্বর , অতিসার , রক্তপিত্ত , উন্মাদ , কুষ্ঠ প্রভৃতি রোগের চিকিত্সা বর্ণিত হয়েছে। গ্রহকবলিত মানুষের চিকিত্সার বিস্তৃত বিবরণ অর্থাত্ গ্রহশান্তি , হোম , যাগযজ্ঞ , বলিদান প্রভৃতি উপদিষ্ট হয়েছে ভূতবিদ্যায়। কৌমারভৃত্য নামক তন্ত্রটি শিশুচিকিত্সার আলোচনায় সমৃদ্ধ। অগদতন্ত্রে আছে সর্প , কীট , বৃশ্চিক প্রভৃতির বিষ সম্পর্কে জ্ঞান এবং সর্পাদির দর্শনজনিত ব্যাধি প্রশমনের উপায়। বিভিন্ন রোগবিনাশক ভেষজের বিবরণ এবং আয়ু , মেধা প্রভৃতি বর্ধনের উপায় লিপিবদ্ধ আছে রসায়নতন্ত্রে। বাজীকরণতন্ত্রের মূল প্রতিপাদ্য বিষয় হল বিভিন্ন শুক্রের আপ্যায়ন , উপচয় এবং রিরংসা জননের উপায়। দুস্তর সমুদ্রের ন্যায় সুবিশাল এই আয়ুর্বেদশাস্ত্র কোন একজন মানুষের পক্ষে আয়ত্ত করা সম্ভব নয়। তাই এক একটি তন্ত্রকে অবলম্বন করে চিকিত্সাশাস্ত্রে বিভিন্ন সম্প্রদায়ের উদ্ভব হয়েছে। আয়ুর্বেদের এই সম্প্রদায়গুলি হল - ১. আত্রেয় সম্প্রদায় ২. ধন্বন্তরি সম্প্রদায় ৩. শালাক্য সম্প্রদায় ৪. ভূতবিদ্যা তান্ত্রিক সম্প্রদায় ৫. কৌমারভৃত্য সম্প্রহায় ৬. অগদ তান্ত্রিক সম্প্রদায় ৭. রসায়ন তান্ত্রিক সম্প্রদায় এবং ৮. বাজীকরণ তান্ত্রিক সম্প্রদায়।

ভারতে আয়ুর্বেদশাস্ত্রের ক্রমবিকাশ - ভারতে আয়ুর্বেদের বীজ উপ্ত হয়েছে বৈদিক সাহিত্যে। ঋগ্বেদসংহিতার রুদ্রসূক্তে বলা হয়েছে -

ত্বদত্তেভি রুদ্র শন্তমেভিঃ শতং হিমা অশীয় ভেষজেভিঃ।

ব্যস্মদ্ দ্বেষো বিতরং ব্যংহো ব্যমীবাশ্চাতয়স্বা বিসূচীঃ।। (২।৩৩।২)

অর্থাত্ হে রুদ্র ! আমরা যেন তোমার প্রদত্ত সুখকর ওষধি দ্বারা শতবর্ষ জীবিত থাকতে পারি। তুমি আমাদের শত্রুদের বিনাশ কর , আমাদের পাপ নির্মূল কর এবং শরীরের যাবতীয় ব্যাধি নিরাময় কর। ক্রান্তদর্শী বৈদিক ঋষিরা বিভিন্ন ব্যাধির মূলে কোন না কোন দেবতার প্রকোপ বা অশুভ দৃষ্টি কল্পনা করে সংশ্লিষ্ট দেবতার সন্তুষ্টির জন্য এভাবে স্তুতি করেছেন। অথর্ববেদের ভৈষজ্য মন্ত্র , আয়ুষ্য মন্ত্র , পৌষ্টিক মন্ত্র প্রভৃতির মধ্যে নিহিত আছে অয়ুর্বেদের উত্স। অথর্ববেদের ঋষিরা রোগব্যাধির নেপথ্যে বিশেষ অসুরের কল্পনা করে মন্ত্রশক্তির সাহায্যে তাকে দূর করতে চেয়েছেন। তাই জ্বরাসুরের বিনাশের জন্য ঋষিকণ্ঠে উদ্ঘোষিত হয়েছে -

অয়ং যো বিশ্বান্ হরিতান্ কৃণোষ্যুচ্ছোচয়নগ্নিগিরি বা ভিদুস্বন্।

অধাহি তরামন্নর সো হি ভূয়া অনাধ্যঙ্ভূধরাং বা পরেহি।।

(অথর্ববেদ সং - ৫।২২।২)

এভাবে অশ্বরীরোগ , শূলবেদনা , উদরী , চক্ষুরোগ , বাত , কুষ্ঠ প্রভৃতি রোগ নিরাময়ের মন্ত্র পাওয়া যায় অথর্ববেদে । দীর্ঘ নীরোগ জীবন এবং সুন্দর স্বাস্থ্য লাভের জন্য আয়ুষ্য মন্ত্রের প্রয়োগ পরিলক্ষিত হয় । এইরূপ একটি আয়ুষ্যমন্ত্রে দ্যুলোক এবং পৃথিবীলোকের মত প্রাণকে অভয় দান করে বলা হয়েছে -

যথা দ্যৌশ্চ পৃথিবী চ ন বিভীতো ন রিষ্যতঃ ।

এষা মে প্রাণ মা বিভেঃ ।।(অথর্ববেদ সং - ২।১৫।১)

বৈদিক সাহিত্য থেকে জানা যায় যে , শারীরবিদ্যা , স্বাস্থ্যবিজ্ঞান ও ভ্রূণতত্ত্ব বৈদিক ঋষিদের কাছে অজ্ঞাত ছিল না । শল্য চিকিত্সা (Surgery) সম্পর্কে প্রাচীন ঋষিদের জ্ঞান ছিল আধুনিক চিকিত্সাবিজ্ঞানের কাছেও ঈর্ষণীয় । ঋগ্বেদে বর্ণিত হয়েছে যে , দেবচিকিত্সক অশ্বিনীকুমারদ্বয় যুদ্ধে ছিন্ন বিশ্‌পলার পদদ্বয়ে লৌহনির্মিত জঙ্ঘা পরিয়ে দিয়েছিলেন -

সদ্যা জঙ্ঘামায়সীং বিশ্‌পলায়ে ধনে হিতে সর্তবে প্রত্যধত্তম্ । (ঋগ্বেদ - ১।১১৬।১৫)

বৈদিকযুগে বন্ধ্যাত্বকরণ এবং মস্তিষ্কের শল্যচিকিত্সা বিদ্যার বিশেষ চর্চা হত । তাই V. Varadachari মন্তব্য করেছেন - Surgery was practised including major operations like amputation , laporotomy and trephining of the skull (HSL. P-205) প্রাচীন সাহিত্যে এমন কিছু ঋষির নাম পাওয়া যায় যাঁরা চিকিত্সাবিজ্ঞান সম্পর্কে মূল্যবান উপদেশ দান করতেন । তাদের মধ্যে অন্যতম হলেন মহর্ষি আত্রেয়। আত্রেয়কেই ভেষজবিদ্যা এবং বৈদ্যকশাস্ত্রের প্রতিষ্ঠাতা ও প্রবর্তকরূপে গণ্য করা হয় ।

চরকসংহিতা ও সুশ্রুতসংহিতা যে আয়ুর্বেদ বা চিকিত্সাশাস্ত্রের বিকাশ , বৌদ্ধযুগে নাগার্জুন এবং জীবকের প্রচেষ্টায় যার গৌরব বৃদ্ধি , ভারতভূমিতে যায় পরিশীলন সেই আয়ুর্বেদ যে এককালে বিশ্বের দরবারে শ্রেষ্ঠত্বের আসন লাভ করেছিল তার মূলে বাঙালী আয়ুর্বেদাচার্যদের অবদানও কম নয় ।

আয়ুর্বেদশাস্ত্রে বাঙ্গালীর অবদান - অতি প্রাচীনকাল থেকে বাংলাদেশে যে আয়ুর্বেদচর্চা প্রচলিত ছিল তার যথেষ্ট প্রমাণ পাওয়া যায় । ভারতীয় আয়ুর্বেদশাস্ত্র কেবলমাত্র মানুষের রোগ নির্ধারণ ও তার চিকিত্সাসংক্রান্ত আলোচনায় সীমাবদ্ধ ছিল না , পশুচিকিত্সার ক্ষেত্রেও তা পরিব্যাপ্ত হয়েছিল । ঋষি পালকাপ্যের হস্ত্যায়ুর্বেদ , শল্যহোত্রের অশ্বায়ুর্বেদ - এই গ্রন্থদ্বয় যথাক্রমে হস্তী ও অশ্বের চিকিত্সা বিষয়ক আলোচনায় সমৃদ্ধ । নারায়ণ রচিত মাতঙ্গলীলা গ্রন্থে বিভিন্ন প্রকার হস্তীর লক্ষণ , তাদের বিভিন্ন রোগের বিবরণ এবং সেই রোগসমূহের প্রতিকারের উপায় আলোচিত হয়েছে । অনেকে ঋষি পালকাপ্য এবং নারায়ণকে বাঙালী বলে মনে করেন । আয়ুর্বেদশাস্ত্রে যে সকল বাঙালী পণ্ডিতের অবদান আছে , যাঁরা আয়ুর্বেদ বিষয়ক মৌলিক গ্রন্থ বা টীকা রচনা করেছেন তাঁদের সংক্ষিপ্ত বিবরণ এখানে প্রদত্ত হল ।

ক) মাধব কর - আয়ুর্বেদশাস্ত্রের ইতিহাসে তিন জন মাধবের নাম পাওয়া যায় - রুগ্বিনিশ্চয় গ্রন্থের রচয়িতা মাধব , দ্রব্যগুণবেত্তা মাধব এবং সুশ্রুতসংহিতার টীকাকার মাধব । রুগ্বিনিশ্চয় - প্রণেতা মাধবের কর পদবী অনেক সমালোচককে লেখকের বাঙালীত্ব প্রমাণে প্রলুব্ধ করেছে । তাছাড়া রুগ্বিনিশ্চয় গ্রন্থের ব্যাপক অধ্যয়ন ও অধ্যাপনার প্রচলন এককালে বঙ্গভূমিতে প্রচলিত ছিল । ফলে অনেকে তাঁকে বাঙালী বলে অনুমান করেন । রুগ্বিনিশ্চয় রচিত হয় খ্রীষ্টীয় সপ্তম

শতাব্দীর শেষার্ধে । গ্রন্থটি নিদান নামে অধিকতর প্রসিদ্ধ । প্রতিটি রোগের পাঁচটি নিদান এখানে কথিত আছে - নিদান , পূর্বরূপ , রূপ , উপশয় এবং সম্প্রাপ্তি । বস্তুতঃ এই পাঁচটি নিদান হল রোগের পাঁচটি স্তর । এগুলিতে যথাক্রমে রোগোত্পত্তির কারণ , রোগের পূর্বলক্ষণ , রোগের নির্দিষ্ট স্বরূপ , উপশম এবং আনুপূর্বিক বিবরণ আলোচিত হয়েছে । সাধারণতঃ বায়ু , পিত্ত ও কফ কুপিত হওয়ার ফলেই মানুষের শরীরে বিভিন্ন রোগ সৃষ্টি হয় । রোগের এই পাঁচপ্রকার নিদান সম্পর্কে মাধব বলেছেন -

নিদানং পূর্বরূপানি রূপান্যুপশয়স্তথা ।
সম্প্রাপ্তিশ্চেতি বিজ্ঞানং রোগানাং পঞ্চধাস্মৃতম্ ।।

রুগ্বিনিশ্চয় গ্রন্থে রোগের কারণ বা লক্ষণ নিরূপিত হয়নি , রোগের অরিষ্ট লক্ষণসমূহও অর্থাত্ মৃত্যুর অব্যবহিত পূর্বের লক্ষণগুলিও ব্যাখ্যাত হয়েছে ।

মাধবের নামাঙ্কিত অপর একটি গ্রন্থের নাম চিকিত্সা । বিভিন্ন রোগের চিকিত্সা পদ্ধতি এখানে বিশদভাবে আলোচিত হয়েছে । এছাড়াও খাদ্যাখাদ্য ও পরিপাক বিষয়ক কূটমুদ্গর , পর্যায়রত্নমালা , আয়ুর্বেদরসশাস্ত্র , আয়ুর্বেদপ্রকাশ গ্রন্থগুলিও মাধবের নামের সঙ্গে যুক্ত । তবে এই মাধব ও মাধবকর একই ব্যাক্তি কিনা এ বিষয়ে সন্দেহ আছে । সুশ্রুতশ্লোকবার্তিক নামক সুশ্রুতসংহিতার উপর রচিত টীকাও মাধবের রচিত ।

খ) চক্রপাণি দত্ত - আয়ুর্বেদরসশাস্ত্রের একটি উল্লেখযোগ্য গ্রন্থ হল চিকিত্সাসারসংগ্রহ । এই গ্রন্থের রচয়িতা চক্রপাণি দত্ত গ্রন্থারম্ভে যে আত্মপরিচয় দিয়েছেন তার থেকে জানা যায় যে , তাঁর পিতার নাম নারায়ণ এবং অগ্রজের নাম ভানু । নারায়ণ ছিলেন গৌড়েশ্বর নয়পালের কর্মচারী এবং রন্ধনশালার তত্ত্বাবধায়ক । খ্রীষ্টীয় একাদশ শতাব্দীতে নয়পাল গৌড়ের শাসনকর্তা ছিলেন এ বিষয়ে সন্দেহের কোন অবকাশ নেই।

চিকিত্সাসারসংগ্রহ গ্রন্থের মূল প্রতিপাদ্য বিষয় হল রোগনির্ধারণ এবং ধাতবদ্রব্যের গুণাগুণ বিচার । এটি আয়ুর্বেদশাস্ত্রের মৌলিক গ্রন্থ । এছাড়াও চরকসংহিতা ও সুশ্রুতসংহিতার উপর তিনি যথাক্রমে আয়ুর্বেদদীপিকা এবং ভানুমতী নামে মূল্যবান টীকা রচনা করেন । শব্দচন্দ্রিকা এবং দ্রব্যগুণসংগ্রহ নামক মৌলিক গ্রন্থদ্বয়ও চক্রপাণির লেখনীপ্রসূত । শব্দচন্দ্রিকা হল আয়ুর্বেদশাস্ত্রের অভিদান ।দ্রব্যগুণসংগ্রহে আলোচিত হয়েছে বিভিন্ন গাছগাছড়া , পারদ প্রভৃতি ধাতুর গুণাগুণ ও রোগ-প্রতিরোধ ক্ষমতা । রোগপ্রতিরোধক নানান গাছপালার ভেষজ গুণ এবং বিভিন্ন আকরদ্রব্যের তালিকা এই গ্রন্থের মূল্যবান সংযোজন । গূঢবাক্যবোধক এবং সর্বসারসংগ্রহ গ্রন্থদ্বয়ও চক্রপাণি দত্তের নামাঙ্কিত । আত্রেয় সম্প্রদায়ের যে সকল আয়ুর্বেদাচার্য প্রাচীন ভারতের চিকিত্সাবিজ্ঞানকে উন্নতির চরম শিখরে উন্নীত করেছেন তাঁদের মধ্যে চক্রপাণি দত্তের অবদান বিশেষ উল্লেখযোগ্য ।

গ) সুরেশ্বর - বঙ্গেশ্বর রামপালের সভাচিকিত্সক ভদ্রেশ্বরের পুত্র সুরেশ্বর পাল যুগের শেষভাগে আবির্ভূত হয়েছিলেন । তিনি সুরপাল নামেও পরিচিত ছিলেন । এরূপ প্রবাদ প্রচলিত আছে যে সুরেশ্বর বা সুরপাল ছিলেন ভদ্রেশ্বর নামক এক রাজার খুবই অন্তরঙ্গ। পালযুগের অন্তিম ভাগকে এই আয়ুর্বেদাচার্যের প্রতিভা বিকাশের কাল বলে অনুমান করা হয় ।

অভিজাত বংশের খ্যাতকীর্তি বৈদ্যরূপে সুরেশ্বর পরিচিত ছিলেন । চিকিত্সাপদ্ধতির উন্নয়নকল্পে তিনি কতিপয় গ্রন্থ প্রণয়ন করেন । তাঁর রচিত গ্রন্থসমূহের মধ্যে বিশেষ উল্লেখযোগ্য হল - শব্দপ্রদীপ , বৃক্ষায়ুর্বেদ এবং শব্দপ্রদীপ গ্রন্থে ঔষধে ব্যবহৃত বিভিন্ন বৃক্ষের তালিকা ও ঐবৃক্ষসমূহের ভেষজ গুণ ব্যাখ্যাত হয়েছে । তিনি দেখিয়েছেন যে প্রায় প্রতিটি বৃক্ষই কোন না কোন ভাবে ঔষধ তৈরীর ক্ষেত্রে ব্যবহৃত হয় । বৃক্ষায়ুর্বেদ গ্রন্থটিকে প্রথম গ্রন্থের পরিপূরক বলা চলে । আয়ুর্বেদশাস্ত্রে বৃক্ষের প্রয়োজনীয়তার কথা এখানে বিবৃত হয়েছে । ঔষধ প্রস্তুতের ক্ষেত্রে লোহারও যে উপযোগিতা অনস্বীকার্য তা লৌহসর্বস্ব গ্রন্থে বিস্তৃতভাবে প্রতিপাদিত হয়েছে ।

ঘ) শিবদাস - বৈদ্যপ্রবর শিবদাসের আত্মপরিচয় থেকে জানা যায় যে , তাঁর পিতা ছিলেন পাবনা জেলার অধিবাসী । পাবনা জেলা বর্তমান বাংলাদেশের অন্তর্গত । তাঁর পিতার নাম অনন্তসেন । তিনি গৌড়েশ্বরের চিকিত্সক ছিলেন । প্রখ্যাত বৈদ্যবংশের সন্তান বলে উত্তরাধিকারসূত্রে তিনি ভেষজশাস্ত্রে পারদর্শিতা অর্জন করেছিলেন । শিবদাস রচিত কোন মৌলিক গ্রন্থ পাওয়া না গেলেও দুটি টীকা তাঁর নামের সঙ্গে সম্পর্কযুক্ত। একটি হল তত্ত্বচন্দ্রিকা এবং অপরটি চরকতত্ত্বদীপিকা । প্রথমটি চক্রসংগ্রহ এবং দ্বিতীয়টি চরকসংহিতার টীকারূপে প্রসিদ্ধ ।

ঙ) গঙ্গাধর - প্রথিতযশা কবিরাজ গঙ্গাধর ১৭৯৮ খ্রীষ্টাব্দে মুর্শিদাবাদ জেলায় জন্মগ্রহণ করেন । তিনি বৈদ্যবংশের সন্তান বলে পরবর্তীকালে আয়ুর্বেদশাস্ত্রে পারদর্শিতা অর্জন করে মুর্শিদাবাদের শ্রেষ্ঠ বৈদ্যরূপে খ্যাতি অর্জন করেন । বৃত্তিতে কবিরাজ হলেও উপনিষদ্ , সাংখ্য , ন্যায়বৈশেষিক দর্শন , ব্যাকরণ , স্মৃতিশাস্ত্র প্রভৃতিতেও তাঁর প্রগাঢ় পাণ্ডিত্য সকলের বিস্ময় উদ্রেক করে । কাব্য , অলংকার , ব্যাকরণ , পুরাণাদি বিষয়েও তাঁর মৌলিক রচনাসমূহে প্রতিফলিত হয়েছে তাঁর অসাধারণ বৈদুষ্য।

চিকিত্সাবিজ্ঞানে তাঁর অবদান হল চরকসংহিতার উপর বিখ্যাত টীকা জল্পকল্পতরু । আয়ুর্বেদ শাস্ত্রের এই টীকায় মাঝে মাঝে দার্শনিকতত্ত্বের অবতারণার ঝলে টীকাটি সাধারণ পাঠকের পক্ষে কিছুটা দুর্বোধ্য হয়ে উঠেছে । অগ্নিপুরাণের আয়ুর্বেদ অংশের উপরও তিনি একটি টীকা প্রনয়ন করেন ।

চ) গণনাথ সেন - কোলকাতার এই প্রসিদ্ধ কবিরাজ ঊনবিংশ শতাব্দীর কোন একসময় জন্মগ্রহণ করেন । সেনবংশের শেষ স্বাধীন রাজা লক্ষ্মণসেনের সভাকবি ধোয়ীর বংশধর এই গণনাথ সেন । তাঁর পিতার নাম বিশ্বনাথ । গণনাথ দুটি আয়ুর্বেদগ্রন্থ সংস্কৃতে প্রণয়ন করেন । আয়ুর্বেদ শাস্ত্রের বিভিন্ন গ্রন্থ থেকে তথ্যপ্রমাণাদি সংগ্রহ করে গ্রন্থকার নিজের সিদ্ধান্ত সমন্বিত একটি গ্রন্থ সংকলন করেন । গ্রন্থটির নাম প্রত্যক্ষশারীর । বিষয়বস্তুর বিন্যাস অনুসারে গ্রন্থটি তিনভাগে বিভক্ত । প্রথমভাগের নাম শারীরোপক্রমণিকা যেখানে শরীরের বিভিন্ন অংশের আয়ুর্বেদশাস্ত্রীয় পরিভাষা , অস্থি , সন্ধি , স্নায়ু প্রভৃতির বিস্তৃত বিবরণ ব্যাখ্যাত হয়েছে । গ্রন্থের দ্বিতীয়ভাগে আছে পেশী , ধবনী প্রভৃতির বর্ণনা এবং তাদের কার্যকারিতা । তৃতীয় ভাগটি মস্তিষ্ক ও সুষুম্না প্রভৃতি নাড়ীর বিবরণ , পঞ্চেন্দ্রিয় বিষয়ক বিজ্ঞান , তন্ত্রশাস্ত্রোক্ত ষট্চক্র পঞ্চবায়ুতত্ত্বের বর্ণনায় সমৃদ্ধ ।

সিদ্ধান্তনিদান নামক তাঁর দ্বিতীয় গ্রন্থে চরক সুশ্রুতাদি মূল গ্রন্থ থেকে বাত , পিত্ত , কফ বিষয়ক আলোচনা সংকলন করে গ্রন্থকারের স্বকীয় ব্যাখ্যা সন্নিবিষ্ট হয়েছে । আধুনিক চিকিত্সাবিজ্ঞানের ভাষায় গণনাথের প্রথম গ্রন্থটি Human Anatomy বিষয়ক এবং Pathology ও Symptomatology দ্বিতীয়টি বিষয়ক গ্রন্থ ।

ছ) অপরাপর বাঙ্গালী পণ্ডিতগণ ও তাদের গ্রন্থপরিচয় -
উপরী উল্লিখিত গ্রন্থগুলি ছাড়াও বৈদ্যকশাস্ত্রের আরও কিছু গ্রন্থ আছে যেগুলির রচয়িতা বাঙ্গালী বলে মনে হয় । যেমন - উমেশচন্দ্র কবিরত্ন প্রণীত বৈদ্যকশব্দসিন্ধু মূলতঃ আয়ুর্বেদশাস্ত্রের ব্যবহৃত শব্দসমূহের বিস্তৃত অভিধান । ঈশ্বরসেনের বনৌষধিদর্পণ , কালীচরণ বৈদ্য প্রণীত চিকিত্সাসার-সংগ্রহ , গঙ্গারাম দাসের শরীরনিশ্চয়াধিকার , গোপাল সেনের যোগামৃত , গোবিন্দরাম কবিরাজের নাড়ীপরীক্ষা , জগন্নাথ দত্তের চিকিত্সারত্ন , নারায়ণ দাসের দ্রব্যগুণ , প্রাণকৃষ্ণ বিশ্বাসের প্রাণকৃষ্ণ ঔষধাবলী প্রভৃতি গ্রন্থসমূহও প্রাচীন ভারতীয় আয়ুর্বেদশাস্ত্রের ভাণ্ডারকে অনেকাংশে সমৃদ্ধ করেছে ।

মূল্যায়ণ - ভারতবর্ষ পরাধীনতার নাগপাশ থেকে মুক্ত হয়েছে । অনেকে আশা করেছিলেন যে স্বাধীন ভারতের কর্ণধারগণের সদিচ্ছায় আয়ুর্বেদের সুপ্ত গৌরব পুনরুদ্‌ধৃত হবে । কিন্তু আয়ুর্বেদীয় চিকিত্সকগণের সেই আশা মিথ্যা মরীচিকায় পর্যবসিত হয়েছে । ভারতের বিভিন্ন স্থানে আয়ুর্বেদ শিক্ষার জন্য যে মহাবিদ্যালয় প্রতিষ্ঠিত হয়েছে , সরকারী ঔদাসীন্যে সেগুলির আজ প্রাণান্তকর অবস্থা । পরিতাপের বিষয় , একদা যে পশ্চিমবঙ্গ আয়ুর্বেদ বিদ্যার পীঠস্থান ছিল , সম্প্রতি সেই বঙ্গভূমিতেই আয়ুর্বেদ চরম দুর্দশাগ্রস্ত । এরই মধ্যে গণনাথ সেন , জ্যোতিষচন্দ্র সরস্বতী , যামিনীভূষণ রায় প্রমুখ কবিরাজগণ আয়ুর্বেদবিদ্যার গহন তমিস্রায় আশার আলোক জ্বালাতে চেষ্টা করলেও তাঁদের সেই প্রয়াস সুদূরপ্রসারী হয়নি । আয়ুর্বেদশাস্ত্র যে পৃথিবীর যাবতীয় চিকিত্সা পদ্ধতির উপর আয়ুর্বেদের প্রভাব অনস্বীকার্য । আমাদের দৃঢ বিশ্বাস , অদূর ভবিষ্যতে আয়ুর্বেদের মরা গাঙে আবার জোয়ার আসবে , আয়ুর্বেদীয় চিকিত্সায় ''ভারত আবার জগত্সভায় শ্রেষ্ঠ আসন লবেস ।''

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী

- **গোস্বামী , অনুবাদ ও সম্পাদনা শ্রীবিজনবিহারী (অক্টোবর ২০১১) ; বেদ , *হরফ প্রকাশনী* , কলকাতা , পৃষ্ঠা ১৩৮ ।**
- **ঘোষাল , বনবিহারী (জুলাই ২০১১) ; বি. এ সংস্কৃত নির্দেশিকা (জেনারেল কোর্স) , *বুকস্ অ্যাণ্ড টেকনোলজিস্* , কলকাতা , পৃষ্ঠা ৬০৭-৬০৯ ।**
- **ডাইরেকট্রেট অফ্ ডিস্ট্যান্স এডুকেশন , রবীন্দ্র ভারতী বিশ্ববিদ্যালয় , এম. এ. পার্ট ওয়ান , সংস্কৃত (২০১১) , তৃতীয়পত্র , কলকাতা , পশ্চিমবঙ্গ পৃষ্ঠা ৬৮-৭২ ।**
- **দাস , ডঃ দেবকুমার (১৪১৬) ; সংস্কৃত সাহিত্যের ইতিহাস , *সদেশ* , কোলকাতা , পৃষ্ঠা ৩০৪-৩১৮ ।**
- **শাস্ত্রী , অনুবাদক ডাক্টর মঙ্গলদেব (১৯৬৭) ; এ. বী. কীথ. সংস্কৃত সাহিত্য কা ইতিহাস , *মোতীলাল বনারসীদাস* , দিল্লী , পৃষ্ঠা ৬৩৮-৬৪৮ ।**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 55-59
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Raj Yoga: Its Psychological Impact in Disaster Management

Vijayadharan Pillai K 1, Dr Rajendran D.R. 2,
Affiliation!&2 Manipur International University MIU Palace, Air Port Road Imphal, Manipur795140 INDIA

Abstract

Raj Yoga in nut-shell means peoples yoga. It is form of visiting one's mind in various body postures that can be practiced by people of all background without rituals or mantras and can be practised anywhere at any time. The method is versatile, simple, easy as it is practised with 'eyes open It is a state of being in a place beyond every day consciousness. Discussing the impact of Raj Yoga in disaster management may appear illogical to at least some especially in the current monsoon when flash flood, huge landslide and deluge is engulfing many parts of India. As media is agog with political information, intelligence and management, it may be useful to discuss an aspects linked with Yoga a group of physical, mental, and spiritual practice originated in ancient India. It is being brought out with a renewed realization that at least some specific disasters and hazards which so far were misconceived as "an act of God" are the long term consequences of abandoning "an inner culture of restraint on desire" which was far different from the western culture evolved out and urge to surge ahead in controlling the gifts of nature like Land, Water and energy which pollutes the air we breathe and the modified food we ingest. There are opportunities in various phases of disasters where Meditation and Yoga are usable both as exercise and therapy

Key words: attitude; Rajayoga; Theory of mind;; Maslow's principles risk; rescue; rehabilitation disaster mitigation,

1.Introduction

Discussing psychological impact of Rajayoga in disaster management may seem irrelevant and illogical to at least some especially in the current scenario of flash flood, massive landslide and deluge this monsoon. The social, visual and print media is getting overtly surcharged with political information, political intelligence and political management. So it was considered useful to discuss the socio-psychological aspects of disasters. Disasters can be both natural and manmade. But when one scientifically reflects some disasters on "one health" system or on maintaining "optimal health of Man, Animal & Nature" [M.A.N.] you realize that many disasters considered so far, as "an act God" are really manmade.

2. Methodology: Disasters are mostly sudden and unpredictable. Manmade disasters are often the result of rapid change in human life-style or the way people handle gifts of nature and the animals in life. Democracy a product of civilization and culture is defined as the rule of the people, by the people, for the people. It is assumed that it is a way of governing on a basic design in order to meet their needs of people, (supposedly) in an equitable manner. The implementation of democracy varies with the attitude of people of

a community which in turn is based on their culture, education, experience, exposure or even encounters. For people to rule a village, town, state or country each country has prepared their constitution and bestowed the responsibility to govern them on representatives whom they elect periodically, say every 4-5 years. These reps are expected to use their competence, confidence, communication skill and, capacity for making decisions for meeting the needs of people, they represent. To assist these ruling reps, bureaucrats trained on the principles of constitution are placed in the system for advising the government in law making and administration

But when needs of people increase beyond a tolerable limit and assumes the form of want, desire, greed or craze, unsustainability and loss of bio-diversity ensue. The reps who has to win elections every 5 years often prepare and present projects that produce impressive and colourful results that have more of report value than sustainable. The cost effective projects that pass the tests impact assessment, cost benefit analysis and evaluation process take more time than 5 years to complete. Therefore reps are forced (or politically advised) to ignore scientific planning. This often can be a major reason for many disasters

2.1.Role of Yoga & Meditation in Physical & Mental Health

Yoga is a group of physical, mental, and spiritual practices or disciplines originated in ancient India in order to control (yoke) & still the mind. Meditation and Yoga are used as both exercise and therapy

Yoga in Sanskrit: means 'yoke' or 'union' among our physical, mental, and spiritual practices or disciplines. Yoga means samyoga or a holistic control of thoughts that still the mind, by recognizing a detached consciousness untouched by Chitta and Duḥkhathe ie. the mind and mundane suffering. There is a wide variety of (schools of) yoga, practices and goals in Hinduism, Buddhism and Jainism. The traditional and modern yoga is now practiced worldwide.

Raj Yoga means a form of meditation and posture that is accessible to people of all background. It is a meditation without rituals or mantras and can be practised anywhere at any time. Raja Yoga meditation is practised with ‘eyes open’ which makes this method of meditation versatile, simple and easy to practice. It is a state of being in a place beyond every day consciousness. It is claimed to be, where spiritual empowerment begins. Spiritual awareness gives us the power to choose good and positive thoughts which are free of negatives and waste. We start to respond to situations, rather than react to them. We begin to adopt a harmony among various systems of our body offering a better, happier and healthier relationship in our society in a most positive way.

In accordance with Pāṇini, Vyasa who wrote the first commentary on the Yoga Sutras, explained that yoga means samadhi or concentration. A person who practices yoga or follows the yoga philosophy with a high level of commitment, is called a yogi; a female yogi may also be known as a yogini.

2.2 Mind Control and Raj Yoga Meditation

“Like good things in life, bad things too, come to an end; if there is anything permanent in life, it is our attitude”. A study of behaviour system shows that in every society there exists difference of attitude among people who legally are the human element behind any action or crime. People’s attitude is guided mainly by their Theory of Mind or ToM which in our limited knowledge means, the state of mind, behaviour, intent, pretence and knowledge of persons. It also includes their ability to understand that others too have beliefs, desires and intentions and to react to them appropriately.

Meditation is, a journey of self-discovery or more accurately a re-discovery. Meditation involves taking time off the hustle and bustle of daily life to enable one to a juncture of inward reflection in silence and isolation. In the fast pace of life (which is growing even

faster?) we lose touch with our inner self and its immense power to bring a **true ease of life**. By taking time off we feel grounded sans (without) our attention being pushed and pulled in different directions. It is a process of getting trained gradually to experience a serene stage, free of the stress and strain that often throw our mental and physical health off balance. Disaster is one such phenomenon.

A study of behaviour system shows that in every society a difference in the attitude existed among people. This attitude is guided mainly by the Theory of Mind or ToM of individual people as explained pre-para.

3. Discussion on Attitude and Mind

3.1 The difference in Theory of Mind in the society is responsible for the peoples' difference in the attitude. The Behaviour system can vary with the places from where members of society come, their family background etc.. Normally in a society some people are bestowed with leadership qualities which include Confidence, Competence, Communication skill and Capacity to take decisions (4 C's). Mainstream of the society follows a leader or a group, who matches their ToM.

As per Maslow's principles needs of man (positive or negative), is largely based on their being accepted as part of a society (community, political party or team) getting recognition, gaining security and attaining actualisation or ultimate aspiration. Some 10-20% people (group II) may not be assertive in nature, but may passively support a group or an authority in power where their personal interests are secure. They may retract at any time when their interests suffer. Around 50-60% is non-committed and usually follows groups which dominate the scenario group III). A congruence of attitude among members of above group can enable or disable any activity in the society which may range between authoritative administrations to unreasonable agitation. The support of the Group III or their subtle tolerance is generally born out of fear of isolation, humiliation or even physical assault. They do not take a stand, but may justify their inaction against or tolerance of leadership as part of self-discipline. Some of them may try to justify their stand with face saving excuses like non-interference in administration, peace of life, lack of time etc. Some justify their stand of inaction or tolerance with arguments like 'the situation is chronic and incorrigible'. Some may argue that in other places the situations are worse. Some plead that theirs is a non-political stand. Some choose to show their concern with lip service or soulful poetic narration of sympathy for sufferers. Some even suggest strict action, but do nothing above that.

3.2 Between the late 20th century and 21st century man-made disasters had been making frequent visits to the world. This monsoon India is facing a number of landslides and flood all over its regions. Kerala recorded a very massive landslide which perhaps is the third largest landslide of India. The total area of Kerala being 1.9% of India this is the biggest disaster we have seen. Disasters are known to affect the socially and economically backward among the community. But experience shows that man-made disasters affect all people irrespective of social or economic status. Many if not most landslides are the sequel of single minded pursuit of economic development. Disasters pose both mental and material threats and also open some opportunities. All public men, administers, social scientists and professionals who study disaster have to reckon some of the opportunities and threats that follow every hazard/ disaster A study of nuances of disaster management reckon some opportunities and threats that follow every hazard/ disaster

Opportunity: Suffering by way of loss of men and materials emotionally hurt every victim. But there also prevails a subtle sense of sympathy and cohesion of action during all phases of disaster. In a reaction to try and escape the turmoil, there is a simultaneous attempt to provide mutual support by able bodied victims irrespective of their status, religion, culture or age. Many help each other to locate a relatively safe place and cluster

victims there. Advantage of joint endeavour is an opportunity for positivity and mutual consolation. Calling for support (SOS) is done to every possible source, like contacting relatives, public men and authority. Search & rescue of each other comes naturally to victims. This never before cohesion and co-operation reduces mental breakdown to an extent as everyone gets involved in rapid response. This phase prevails even during the initial phase when relief arrives. Victims help volunteers to search, rescue and shift disabled victims to temporary shelter, to distribute food, water and bedding. Relief, medical aid, rest and support follow.

Waning off of the overt readiness and will to help

Following every disaster there is a gush of enormous sympathy and good-will of people from the locality, other regions and even from outside the country. Often this surge of good-will [in the form of men and materials] may even surpass the real time need. But it is seen that this surge of support and generosity is a "onetime event". This tempo starts declining as time passes. When the area involved is large and the impact of disaster is long standing, many victims who get attuned to the overt initial generosity, may feel deserted or neglected with this decline. A stage may come when they start complaining or may even protest. It can become an opportunity for "scare mongers" to use this to their political or material advantage. A task before the disaster management team will be to control and maintain the reasonable inflow of help and good-will using their human management skill meticulously and effectively. They are trained in social engineering to anticipate stalemates and seek the support of cadres, public men and media.

Threat: In every disaster there is a possible threat from the hard core elements among survivors and even from some so called volunteers, who may use the massive suffering as an opportunity to loot or steal victims of their valuables. Selecting good relief materials like sleeping bags, sweaters, packed food and hiding them is also reported. Befriending vulnerable among victims on the pretext of help is also a threat which leaders of mitigation team will have to be watchful of when selecting groups of victims and allocating them temporary shelters like vacant rooms, tent houses etc.

This Is why Management of disasters has to be studied outside of exclusive political intelligence & political management

3.3 Study of Factors That Can Cause or Prevent Disasters

Scientific study on people who exhibited criminal tendency showed that it can be traced to their first exposure as a child to aangan vaaadi, nursery or primary school. The study emphasises the need to identify Competent and committed teachers aayaah's of nurseries who has the right frame of mind to induct positive attitude in the budding citizens

4. **Conclusion** It is felt that lack of motivation (or an erratic motivation) can destroy a peaceful life Therefore an ideal study must include the community and of the society where they pursue career. An analysis of strength, weakness, opportunities and threat (ie. the SWOT analysis) of the community or individual have to be reflected on the ToM of the society of a locality That means all the human elements including students, teaching staff, office staff, farm labour, slum dwellers, vendors or shop keepers of the locality must form part of a holistic study. It will be not only be interesting to identify the possible origin of manmade disasters and link it with their political motivation..

Leaders or leading groups plan strategies to remain in power or to strengthen their following based on the different attitudes among followers Though the qualities of this group may enhance the power and popularity of the group, they can be misused

The competence or communication skill in a Group can be used to generate blown-up propaganda material delivered through convincing lecture for popular support. Honest and transparent leadership is the mainstay for peaceful sustenance of an ideal social group.

When a leader or a leading group feels that their power (influence) is being questioned, their control on followers is waning off or another group is gaining more power, they can identify excuses to adopt demonstrations or protests. This is the critical control point for authorities to manage and mitigate possibility of disasters

Motivating and engaging the youth of community in healthy activities like yoga sports and games, entertainments, cultural activities, social service are important to provide a stimulating environment to participants by continuous monitoring The steps involved in implementing positivity can be,-

Identify any minor dissatisfaction and identify its root cause.

Encourage indulgence or involvement like social work, animal welfare, gardening, aquaculture ornamental fish breeding etc.

Provide priority to surveillance of disease, deficiency, hazards and disaster.

Set up periodic camps and oganise the event management on a competitive basis in camps and destination sports and cultural events outside the camps.

Train people to identifying their objectives in life and make them test them through Relevant, Logical, Feasible, Observable and Recordable and Measurable [RLFORM] parameters. The work can be made effective by making one group prepare a project and explain its objectives and others in the camp

References

1. The Interpretation of Dreams (1899/1900), The Psychopathology of Everyday Life (1904), Totem and Taboo (1913), and Civilization and Its Discontents (1930). Sigmund Freud (1856-1939) http//en:wikepedia.org:wiki: Sigmund Freud
2. "Learned Optimism" by Martin E.P. Seligman http//en:www.amazon.in learned optimism-change
3. How a Positive Outlook Enhances Life, First Step to Discover Optimism" by Tomer Rozenberg www//medium.com@tomer rozenberg how-a-posit
4. Practice gratitude, set realistic goals, and shift your narrative from negative by Tomer Rozenberg
5. Ajzen, I. (1985). From intentions to actions: A theory of planned behavior. In J. Kuhl and J. Bechmann (Eds.), Action control: From cognition to behavior (pp. 11–39). New York: Springer-Verlag.
6. Ajzen, I. (1991). The theory of planned behavior. Organizational Behavior and Human Decision Processes, 50, 179–211.
7. Alwin, D.F. (1998). The political impact of the Baby Boom: Are there persistent differences in political beliefs and behaviors? Generations, (Spring), 46–54.
8. National Academies of Sciences, Engineering, and Medicine. 2003. Attitudes, Aptitudes, and Aspirations of American Youth: Implications for Military Recruitment. Washington, DC: The National Academies Press. https://doi.org/10.17226/10478.
9. Is Landslide in Kerala man made? Rama Kumar V (personal communication)
10. Meditation and Yoga can Modulate Brain Mechanisms National Institutes of Health (NIH) (.gov) https://www.ncbi.nlm.nih.gov › articles › PMC4769029

1. kvpvijayans@gmail.com 2.rajendrandrr@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 60-67
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी समाज पर आधुनिक शिक्षा पद्धति का प्रभाव

शीतल यादव, **शोधार्थी**, **मोहित कुमार सिंह**, **शोधार्थी**,
डॉ0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,आगरा,
डॉ0 पंकज शर्मा, विभागाध्यक्ष, इतिहास,
किशोरी रमण (पी0जी0) कॉलेज, मथुरा

सारांश

यह शोधपत्र भारत के आदिवासी समाज पर आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें आदिवासी समुदायों की परंपरागत शिक्षा प्रणाली और आधुनिक शिक्षा पद्धति के बीच तुलना की गई है। शोधपत्र में आधुनिक शिक्षा के सकारात्मक प्रभावों जैसे साक्षरता दर में वृद्धि, आर्थिक अवसरों में बढ़ोतरी, और सामाजिक सशक्तीकरण पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही, नकारात्मक प्रभावों जैसे सांस्कृतिक क्षरण, भाषाई संकट, और पारंपरिक ज्ञान के नुकसान पर भी चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त, शोधपत्र में आदिवासी शिक्षा के क्षेत्र में मौजूद चुनौतियों और उनके संभावित समाधानों का विश्लेषण किया गया है। अंत में, एक समावेशी और संतुलित शिक्षा मॉडल की आवश्यकता पर जोर देते हुए, भविष्य की दिशा पर चर्चा की गई है। यह शोधपत्र नीति निर्माताओं, शिक्षाविदों और समाज के लिए आदिवासी शिक्षा के महत्व और इसके समग्र विकास की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

1. प्रस्तावना

भारत एक विविधतापूर्ण देश है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों, परंपराओं और जीवन शैलियों का समावेश है। इस विविधता में आदिवासी समुदाय एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। आदिवासी समाज की अपनी विशिष्ट पहचान, संस्कृति और जीवन शैली है, जो सदियों से चली आ रही है। परंतु, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के इस युग में, आदिवासी समाज भी परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। इस परिवर्तन का एक प्रमुख कारक है आधुनिक शिक्षा पद्धति का प्रवेश।

इस शोधपत्र का उद्देश्य आदिवासी समाज पर आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण करना है। हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे आधुनिक शिक्षा ने आदिवासी समुदायों के जीवन को प्रभावित किया है, उनकी परंपराओं और मूल्यों पर क्या असर पड़ा है, और इस प्रक्रिया में क्या चुनौतियाँ और अवसर सामने आए हैं।

1.1 आदिवासी समाज का परिचय

आदिवासी शब्द का अर्थ है "मूल निवासी" या "प्रथम निवासी"। भारत में आदिवासी समुदाय देश के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं, विशेष रूप से मध्य भारत, पूर्वोत्तर राज्यों और अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में। प्रत्येक आदिवासी समूह की अपनी विशिष्ट संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाज और जीवन शैली है।

आदिवासी समाज की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं:

1. प्रकृति के साथ संबंध: आदिवासी समुदाय प्रकृति के साथ गहरा संबंध रखते हैं। वे जंगलों, पहाड़ों और नदियों के आस-पास रहते हैं और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहते हैं।[1]
2. सामुदायिक जीवन: आदिवासी समाज में सामूहिकता का महत्व अधिक होता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में समुदाय की भागीदारी होती है।
3. परंपरागत ज्ञान: आदिवासी समुदायों के पास प्रकृति, चिकित्सा, कृषि और अन्य क्षेत्रों में समृद्ध परंपरागत ज्ञान होता है।
4. कला और संस्कृति: आदिवासी समाज की अपनी विशिष्ट कला, संगीत, नृत्य और हस्तशिल्प परंपराएँ होती हैं।
5. आर्थिक गतिविधियाँ: आदिवासी समुदाय मुख्य रूप से कृषि, वन उत्पादों का संग्रह, शिकार और मछली पकड़ने जैसी गतिविधियों पर निर्भर रहते हैं।

2. साहित्य समीक्षा

आदिवासी शिक्षा और आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रभाव पर कई शोधकर्ताओं ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। खाखा (2018) ने अपने अध्ययन में आदिवासी शिक्षा की चुनौतियों और संभावनाओं पर प्रकाश डाला है। उन्होंने पाया कि आधुनिक शिक्षा ने आदिवासी समुदायों में साक्षरता दर बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, लेकिन साथ ही यह सांस्कृतिक पहचान के लिए एक चुनौती भी बन गई है।[2]

गुप्ता और सिंह (2020) ने भारत में आदिवासी शिक्षा के विकास पर एक व्यापक अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि आधुनिक शिक्षा ने आदिवासी युवाओं को नए आर्थिक अवसर प्रदान किए हैं, लेकिन इसने पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों के क्षरण को भी बढ़ावा दिया है।[3]

नायक (2019) ने आदिवासी समुदायों में सांस्कृतिक परिवर्तन और शिक्षा की भूमिका पर शोध किया। उनके अनुसार, आधुनिक शिक्षा ने आदिवासी समुदायों में सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दिया है, लेकिन इसने पारंपरिक सामुदायिक संरचनाओं को भी कमजोर किया है।[4]

पटेल (2017) ने आदिवासी भाषाओं के संरक्षण और शिक्षा के बीच संबंध का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में आदिवासी भाषाओं की उपेक्षा से इन भाषाओं के अस्तित्व पर खतरा उत्पन्न हो गया है।[5]

मीना (2021) ने आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता पर एक विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। उनके अनुसार, आधुनिक शिक्षा प्रणाली आदिवासी छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने में अक्सर विफल रहती है, जिससे शैक्षिक परिणामों में अंतर पैदा होता है।[6]

वर्मा (2016) ने भारत में आदिवासी शिक्षा नीतियों का ऐतिहासिक विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि नीतियाँ अक्सर आदिवासी समुदायों की वास्तविक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने में विफल रही हैं।[7]

शर्मा और कुमार (2022) ने आदिवासी युवाओं के बीच डिजिटल शिक्षा के अवसरों और चुनौतियों का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि डिजिटल शिक्षा ने शिक्षा तक पहुँच को बढ़ाया है, लेकिन डिजिटल विभाजन की समस्या भी पैदा की है।[8]

सिंह (2019) ने आदिवासी समुदायों में परंपरागत ज्ञान और आधुनिक शिक्षा के समन्वय पर शोध किया। उनके अनुसार, दोनों ज्ञान प्रणालियों का एकीकरण आदिवासी शिक्षा को अधिक प्रासंगिक और प्रभावी बना सकता है।[9]

3. भारतीय समाज में शिक्षा एवं शिक्षक

राधा रानी सक्सेना के अनुसार, "उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा एवं शिक्षक" (2002) पुस्तक में उन्होंने भारतीय समाज में शिक्षा और शिक्षकों की बदलती भूमिका पर विचार किया है। उनके अनुसार, शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है ताकि समाज की उभरती जरूरतों को पूरा किया जा सके।[10]

सुदेश सिंह ने "उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक" (2012) में भारतीय समाज में शिक्षकों की भूमिका पर गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि शिक्षकों की भूमिका केवल शिक्षण तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उन्हें समाज के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए।[1]

आर.एन.पी पाठक की पुस्तक "आधुनिक भारतीय शिक्षा, समस्याएँ" (2010) में शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान समस्याओं और उनके समाधान पर विस्तृत चर्चा की गई है। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में नवीनतम प्रवृत्तियों और उनके प्रभावों का विश्लेषण किया है।[11]

वीरेंद्र सिंह यादव ने "भारतीय शिक्षा का बदलता परिदृश्य: चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ" (2013) पुस्तक में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों और उनके सामने आने वाली चुनौतियों पर विचार किया है। उन्होंने शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए आवश्यक उपायों का भी सुझाव दिया है।[12]

मंजू गुप्ता की पुस्तक "आधुनिक शिक्षा प्रतिरूप" (2007) में आधुनिक शिक्षा के विभिन्न मॉडल और उनके प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। उन्होंने शिक्षा में नवाचार और तकनीकी अपनाने के महत्व पर जोर दिया है।[13]

राजेन्द्रपाल सिंह ने "तुलनात्मक शिक्षा के सिद्धांत" (2011) में विभिन्न देशों की शिक्षा प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने विभिन्न शिक्षा प्रणालियों के सिद्धांतों और उनकी प्रभावशीलता का विश्लेषण किया है।[14]

3.1 परंपरागत शिक्षा प्रणाली

आदिवासी समाज में शिक्षा का अपना एक विशिष्ट स्वरूप रहा है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज्ञान के हस्तांतरण पर आधारित था। इस परंपरागत शिक्षा प्रणाली की कुछ प्रमुख विशेषताएँ थीं:

1. मौखिक परंपरा: ज्ञान का प्रसारण मुख्य रूप से मौखिक रूप से होता था। कहानियों, गीतों और लोककथाओं के माध्यम से महत्वपूर्ण जानकारी और मूल्य सिखाए जाते थे।[4]
2. व्यावहारिक शिक्षा: बच्चे अपने माता-पिता और समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ काम करके सीखते थे। यह शिक्षा जीवन के लिए आवश्यक कौशल पर केंद्रित थी, जैसे खेती, शिकार, वनस्पतियों की पहचान आदि।[15]
3. सामुदायिक शिक्षा: पूरा समुदाय शिक्षा प्रक्रिया में शामिल होता था। बड़े-बुजुर्ग अपने अनुभव और ज्ञान को युवा पीढ़ी के साथ साझा करते थे।[16]
4. प्रकृति-केंद्रित: शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा प्रकृति और पर्यावरण के बारे में था। बच्चों को प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग और संरक्षण के बारे में सिखाया जाता था।
5. संस्कृति और मूल्यों का संरक्षण: परंपरागत शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य समुदाय की संस्कृति, मूल्यों और विश्वासों को संरक्षित करना था।
6. जीवन कौशल: आत्मनिर्भरता, सहयोग, नेतृत्व और समस्या समाधान जैसे जीवन कौशल व्यावहारिक अनुभवों के माध्यम से सिखाए जाते थे।
7. अनौपचारिक प्रकृति: इस शिक्षा प्रणाली में कोई औपचारिक पाठ्यक्रम या मूल्यांकन प्रणाली नहीं थी। सीखना एक सतत प्रक्रिया थी जो जीवन भर चलती रहती थी।

3.2 आधुनिक शिक्षा पद्धति का परिचय

आधुनिक शिक्षा पद्धति का प्रवेश आदिवासी क्षेत्रों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन लेकर आया है। यह पद्धति मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली पर आधारित है और इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं:

1. औपचारिक संरचना: आधुनिक शिक्षा एक संरचित पाठ्यक्रम और नियमित कक्षाओं पर आधारित है। इसमें विद्यालय, शिक्षक और छात्रों की स्पष्ट भूमिकाएँ होती हैं।[3]
2. लिखित परंपरा: ज्ञान का प्रसारण मुख्य रूप से लिखित सामग्री (पाठ्यपुस्तकें, नोट्स आदि) के माध्यम से होता है।
3. विषय-आधारित शिक्षा: पाठ्यक्रम विभिन्न विषयों जैसे गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक विज्ञान आदि में विभाजित होता है।
4. मूल्यांकन प्रणाली: नियमित परीक्षाएँ और मूल्यांकन छात्रों की प्रगति को मापने के लिए आयोजित किए जाते हैं।
5. भाषा का मुद्दा: अधिकांश आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय या क्षेत्रीय भाषाओं में दी जाती है, जो कई बार आदिवासी भाषाओं से भिन्न होती हैं।[5]
6. तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा: आधुनिक शिक्षा प्रणाली में तकनीकी और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों पर भी जोर दिया जाता है।[11]
7. वैश्विक दृष्टिकोण: यह शिक्षा पद्धति छात्रों को वैश्विक परिप्रेक्ष्य से देखने और समझने के लिए तैयार करती है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति का उद्देश्य आदिवासी समुदायों को मुख्यधारा की शिक्षा से जोड़ना और उन्हें आधुनिक समाज की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करना है। हालाँकि, इस प्रक्रिया में कई जटिलताएँ और चुनौतियाँ भी सामने आई हैं ।[7]

4. आधुनिक शिक्षा का आदिवासी समाज पर प्रभाव

आधुनिक शिक्षा पद्धति ने आदिवासी समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। इस प्रभाव को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है: सकारात्मक प्रभाव और नकारात्मक प्रभाव।[13]

4.1 सकारात्मक प्रभाव

1. आर्थिक अवसरों में वृद्धि: शिक्षा के माध्यम से, आदिवासी युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर खुले हैं। वे सरकारी नौकरियों, निजी क्षेत्र और उद्यमिता में अपना करियर बना सकते हैं ।[3]
2. स्वास्थ्य और स्वच्छता में सुधार: आधुनिक शिक्षा ने स्वास्थ्य और स्वच्छता के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाई है, जिससे समुदाय में स्वास्थ्य संबंधी परिणामों में सुधार हुआ है।
3. सामाजिक समानता: शिक्षा ने जाति, लिंग और वर्ग आधारित भेदभाव को कम करने में मदद की है, जिससे समाज में अधिक समानता आई है।[4]
4. राजनीतिक सशक्तीकरण: शिक्षित आदिवासी अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने और राजनीतिक प्रक्रियाओं में भाग लेने में सक्षम हुए हैं।
5. तकनीकी ज्ञान: आधुनिक शिक्षा ने आदिवासी समुदायों को तकनीकी ज्ञान और डिजिटल साक्षरता प्रदान की है, जो आज के समय में महत्वपूर्ण है।[8]
6. सांस्कृतिक आदान-प्रदान: शिक्षा के माध्यम से, आदिवासी समुदाय अपनी संस्कृति को व्यापक समाज के साथ साझा कर पा रहे हैं, जिससे सांस्कृतिक समझ और सम्मान बढ़ा है।[16]
7. साक्षरता दर में वृद्धि: आधुनिक शिक्षा के प्रवेश से आदिवासी समुदायों में साक्षरता दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। यह उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने और सूचना तक बेहतर पहुँच प्राप्त करने में मदद करता है ।[17]

4.2 नकारात्मक प्रभाव

1. सांस्कृतिक क्षरण: आधुनिक शिक्षा के प्रभाव में, कुछ आदिवासी परंपराएँ और रीति-रिवाज धीरे-धीरे लुप्त हो रहे हैं। युवा पीढ़ी अपनी मूल संस्कृति से दूर होती जा रही है ।[2]
2. मूल्य संघर्ष: आधुनिक शिक्षा द्वारा प्रस्तुत मूल्य कभी-कभी पारंपरिक आदिवासी मूल्यों के विपरीत होते हैं, जिससे पीढ़ियों के बीच संघर्ष पैदा होता है ।[3]
3. भाषाई संकट: कई आदिवासी भाषाएँ खतरे में हैं क्योंकि शिक्षा मुख्यधारा की भाषाओं में दी जाती है। इससे मातृभाषा का उपयोग कम हो रहा है ।[5]
4. पारंपरिक ज्ञान का नुकसान: आधुनिक शिक्षा पर ध्यान केंद्रित होने से, पारंपरिक ज्ञान और कौशल, जैसे औषधीय पौधों का ज्ञान, धीरे-धीरे खो रहे हैं ।[9]
5. सामुदायिक बंधन का कमजोर होना: शिक्षा के लिए गाँव छोड़कर जाने और व्यक्तिगत उपलब्धियों पर जोर देने से, सामुदायिक बंधन कमजोर हो रहे हैं।

6. आर्थिक असमानता: शिक्षित और अशिक्षित आदिवासियों के बीच आर्थिक अंतर बढ़ रहा है, जो समुदाय में नई असमानताएँ पैदा कर रहा है।[14]
7. पलायन: उच्च शिक्षा और बेहतर रोजगार के अवसरों की तलाश में, कई शिक्षित आदिवासी युवा अपने गाँवों को छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

4.3 चुनौतियाँ और समाधान

आदिवासी समाज में आधुनिक शिक्षा के कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों और उनके संभावित समाधानों को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है:

चुनौतियाँ	**संभावित समाधान**
भाषा की बाधा	द्विभाषी शिक्षा का प्रावधान; स्थानीय भाषा में शिक्षण सामग्री का विकास
सांस्कृतिक संवेदनशीलता की कमी	शिक्षकों को आदिवासी संस्कृति के प्रति संवेदनशील बनाना; पाठ्यक्रम में स्थानीय ज्ञान और संस्कृति को शामिल करना
भौगोलिक दूरी और पहुँच	मोबाइल स्कूल; दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम; डिजिटल शिक्षा पहल
शिक्षकों की कमी	स्थानीय युवाओं को शिक्षक प्रशिक्षण; प्रोत्साहन और बेहतर सुविधाएँ प्रदान करना
आर्थिक बाधाएँ	नि:शुल्क शिक्षा; छात्रवृत्ति और वित्तीय सहायता कार्यक्रम
लैंगिक असमानता	बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन; महिला शिक्षकों की नियुक्ति
पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण	पाठ्यक्रम में पारंपरिक ज्ञान को एकीकृत करना; समुदाय के बुजुर्गों को शिक्षा प्रक्रिया में शामिल करना
रोजगार से जुड़ाव	व्यावसायिक प्रशिक्षण; स्थानीय अर्थव्यवस्था से जुड़े कौशल विकास कार्यक्रम

4.4 भविष्य की दिशा

आदिवासी शिक्षा के भविष्य को सुधारने और इसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए जा सकते हैं:

1. **समावेशी शिक्षा मॉडल**: एक ऐसा शिक्षा मॉडल विकसित करना जो आधुनिक ज्ञान और कौशल के साथ-साथ पारंपरिक ज्ञान और मूल्यों को भी समान महत्व देता है।
2. **स्थानीय भाषा का संरक्षण**: आदिवासी भाषाओं में शिक्षण सामग्री का विकास और इन भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना।

3. **सामुदायिक भागीदारी**: शिक्षा नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण और कार्यान्वयन में आदिवासी समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना।
4. **तकनीकी समावेश**: डिजिटल शिक्षा और तकनीकी साक्षरता पर जोर देना, लेकिन इसे स्थानीय संदर्भ के अनुरूप अनुकूलित करना।
5. **व्यावसायिक शिक्षा**: स्थानीय संसाधनों और कौशल पर आधारित व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।
6. **शोध और नवाचार**: आदिवासी शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर शोध और नवाचार को प्रोत्साहित करना।
7. **अंतर-सांस्कृतिक संवाद**: आदिवासी और गैर-आदिवासी समुदायों के बीच संवाद और समझ को बढ़ावा देना।
8. **पर्यावरण शिक्षा**: आदिवासी समुदायों के पर्यावरण संरक्षण के ज्ञान को आधुनिक पर्यावरण शिक्षा के साथ जोड़ना।

5. निष्कर्ष

आधुनिक शिक्षा पद्धति का आदिवासी समाज पर प्रभाव एक जटिल और बहुआयामी विषय है। जहाँ एक ओर इसने साक्षरता, स्वास्थ्य और आर्थिक अवसरों में सुधार लाया है, वहीं दूसरी ओर यह सांस्कृतिक पहचान और पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है।

आगे बढ़ते हुए, हमें एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन स्थापित कर सके। यह प्रणाली आदिवासी समुदायों को वैश्विक ज्ञान और कौशल से लैस करे, साथ ही उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत और पारंपरिक ज्ञान को भी संरक्षित करे।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, नीति निर्माताओं, शिक्षाविदों, और आदिवासी समुदायों के बीच निरंतर संवाद और सहयोग की आवश्यकता है। साथ ही, शिक्षा को केवल साक्षरता और रोजगार का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक संरक्षण और सतत विकास का माध्यम भी बनाना होगा।

अंत में, यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि आदिवासी समाज भारत की सांस्कृतिक विविधता का एक अमूल्य हिस्सा है। उनकी शिक्षा और विकास की प्रक्रिया इस तरह से होनी चाहिए जो न केवल उन्हें आधुनिक दुनिया के लिए तैयार करे, बल्कि उनकी अनूठी पहचान और ज्ञान को भी संरक्षित करे। यही संतुलित दृष्टिकोण आदिवासी समुदायों के सशक्तीकरण और समग्र राष्ट्रीय विकास में योगदान दे सकता है।

संदर्भ सूची

1. सिंह स. उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक. इलाहाबाद: अनुभव पब्लिशिंग हाउस; 2012.
2. खाखा ए.के. आदिवासी शिक्षा: चुनौतियाँ और संभावनाएँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2018.
3. गुप्ता एस, सिंह आर. भारत में आदिवासी शिक्षा का विकास. इंडियन जर्नल ऑफ़ सोशल साइंसेज. 2020;25(2):45-60.

4. नायक पी.के. आदिवासी समुदायों में सांस्कृतिक परिवर्तन और शिक्षा की भूमिका. एथ्नोग्राफिक स्टडीज. 2019;12(3):78-95.
5. पटेल एम. आदिवासी भाषाओं का संरक्षण और शिक्षा. लैंग्वेज एंड एजुकेशन. 2017;31(4):501-15.
6. मीना आर.पी. आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन. शैक्षिक अनुसंधान समीक्षा. 2021;16(2):123-40.
7. वर्मा एस.के. भारत में आदिवासी शिक्षा नीतियाँ: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य. जर्नल ऑफ़ एजुकेशन पॉलिसी. 2016;29(5):711-25.
8. शर्मा डी, कुमार ए. आदिवासी युवाओं के बीच डिजिटल शिक्षा: अवसर और चुनौतियाँ. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी. 2022;18(3):245-60.
9. सिंह एन.के. आदिवासी समुदायों में परंपरागत ज्ञान और आधुनिक शिक्षा का समन्वय. इंडियन जर्नल ऑफ़ ट्रेडिशनल नॉलेज. 2019;18(4):689-700.
10. सक्सेना आर. उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा एवं शिक्षक. जयपुर: क्लासिक पब्लिकेशन; 2002.
11. पाठक आर.एन.पी. आधुनिक भारतीय शिक्षा: समस्याएँ एवं समाधान. नई दिल्ली: कनिफ पब्लिशर्स; 2010.
12. यादव वी.एस. भारतीय शिक्षा का बदलता परिदृश्य: चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ. नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स; 2013.
13. गुप्ता म. आधुनिक शिक्षा प्रतिरूप. नई दिल्ली: केन्सल्को पब्लिशर्स; 2007.
14. सिंह र. तुलनात्मक शिक्षा के सिद्धांत. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी; 2011.
15. सुब्रमण्यम वी. भारत के आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षक प्रशिक्षण: चुनौतियाँ और अवसर. टीचर एजुकेशन क्वार्टरली. 2020;47(1):82-98.
16. सक्सेना एन.आर. स्वस्व. उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षा. मेरठ: आर. लाल बुक डिपो; 2012

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 68-72
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Intellectual Property Rights and Rural Development: Empowering Geographical Indications in India.

Priya Shukla, Research Scholar Department of Law
Mahatma Gandhi Kashi Vidyapeeth Varanasi

Abstract

India is a country of diversity and it is a rainbow of cultures and diverse agricultural practices, has harnessed the power of Intellectual Property Rights (IPR), specifically Geographical Indications (GIs), as a catalyst for rural and regional development. Significance of IPR, particularly Geographical Indication helps in economic growth, preserving traditional knowledge, and empowering local communities in rural India. Geographical Indications gave birth to the globalization and it increases global market. GI is a tool to protect Traditional Knowledge.

In this research paper author describe the IPR and rural development in India, importance of GI in IPR, role of local communities in rural India.

Key Words - IPR, GI, Value Addition, Traditional knowledge, Regional Brand.

Under Articles 1 (2) and 10 of the Paris Convention for the Protection of Industrial Property, geographical indications are covered as an element of IPRs. GI tag shows an assurance of quality and

distinctiveness. GIs are covered under Articles 22 to 24 of Trade-Related Intellectual Property Rights Agreement

Under Articles 1 (2) and 10 of the Paris Convention for the Protection of Industrial Property, geographical indications are covered as an element of IPRs. GI tag shows an assurance of quality and

distinctiveness. GIs are covered under Articles 22 to 24 of Trade-Related Intellectual Property Rights Agreement

Under Articles 1 (2) and 10 of the Paris Convention for the Protection of Industrial Property, geographical indications are covered as an element of IPRs. GI tag shows an assurance of quality and

distinctiveness. GIs are covered under Articles 22 to 24 of Trade-Related Intellectual Property Rights Agreement

Under Articles 1 (2) and 10 of the Paris Convention for the Protection of Industrial Property, geographical indications are covered as an element of IPRs. GI tag shows an assurance of quality and

distinctiveness. GIs are covered under Articles 22 to 24 of Trade-Related Intellectual Property Rights Agreement

Introduction:

Geographical Indication plays important role in the development of Rural India. India is a country of diversity and it is a rainbow of cultures and diverse agricultural practices, has harnessed the power of Intellectual Property Rights (IPR), specifically Geographical

Indications (GIs), as a catalyst for rural and regional development. Significance of IPR, particularly Geographical Indication helps in economic growth, preserving traditional knowledge, and empowering local communities in rural India.

By the help of Geographical Indication, we get the Geographical Indication Tag (GI Tag) and this tag add value in the products and became a "Regional Brand"[1] Geographical Indication Tag gives recognition to the particular area of the particular place which shows the speciality of that product. Geographical Indications create new and better opportunity for economic development or works as an economic tool for the society. It is better way to uplift the weaker section of the society by their special knowledge and by their special geographical condition.

A numerous study shows that Geographical Indication contribute in the development of rural region and geographical indication only attached to the particular region and this helps and add value in the product and it helps to increase the status of the producer.

Challenges:

1.Awareness: Many rural producers may not be fully aware of the potential benefits of GIs. Government and non-governmental organizations should focus on creating awareness and building the capacity of local communities to leverage these intellectual property tools effectively.

2.Sustainable Practices: Incorporating sustainable agricultural and production practices in GI protection can further enhance the long-term viability of rural development initiatives. Balancing economic growth with environmental and social sustainability is crucial.

3.Protection against misleading certification: Geographical Indication needs protection against misleading certification by the way of creating strong and potent law in the favour of the products. This will help the people to recognising the real or original goods and people not mislead about the products.

Understanding Geographical Indications in India:

According to World Trade Organization Geographical Indication means "Indications which identify a good as originating in the territory of a member country, or a region or locality in that territory, where a given quality, reputation or other characteristics of the good is essentially attributable to its geographical origin"[2].

A Geographical Indication is a sign used on products that have a specific geographical origin and possess qualities or a reputation that are due to that origin. To function as a GI, a sign must identify a product as originating in a given place.[3]

The qualities, characteristics, or reputation of the product should be essentially because of the place of origin.

The qualities based on the geographical place of production, there is a clear relation between the product and its original place of production.

Geographical Indications in India are protected under the Geographical Indications of Goods (Registration and Protection) Act, 1999. Section 2 (e) of the gives the definition of geographical indication-

"geographical indication", in relation to goods, means an indication which identifies such goods as agricultural goods, natural goods or manufactured goods as originating, or manufactured in the territory of a country, or a region or locality in that territory, where a given quality, reputation or other characteristic of such goods is essentially attributable to its geographical origin and in case where such goods are manufactured goods one of the activities of either the production or of processing or preparation of the goods concerned takes place in such territory, region or locality, as the case may be.[4]

This legislation ensures that products originating from a specific geographical area, possessing unique qualities, characteristics, or reputation, receive legal protection. GIs play a crucial role in safeguarding traditional practices, promoting rural development, and providing a distinct identity to region-specific products.

Rural Development through Intellectual Property Rights:

Preservation of traditional knowledge:

Traditional knowledge refers to tradition-based creations and innovations in fields such as literature, art, science, and technology. It includes inventions, scientific discoveries, performances, designs, symbols, and undisclosed information that are passed down through generations. This knowledge is tied to a specific people or territory and evolves with changing environments. Categories include agricultural, scientific, technical, ecological, and medicinal knowledge, as well as cultural expressions like music, dance, handicrafts, and folklore.

Taking account of rising importance attached to traditional Knowledge (TK) and philosophy as regards preserving cultural and biological diversity, protection for TK has anticipated huge implication recently.[5] Traditional Knowledge, nevertheless, is a multidimensional and multifaceted zone. There are no universal approved one definition of TK.

Economic empowerment:

GIs empower rural producers by granting them exclusive rights to market products with a specific geographical origin. This exclusivity often leads to increased market demand, higher prices, and improved income for local communities engaged in the production of GI-tagged goods.

Market Differentiation:

GI protection helps products stand out in the market by emphasizing their unique qualities and origin. This can lead to increased demand from consumers who value authenticity and quality, thereby creating economic opportunities for producers.

Products with GI status often command higher prices due to their perceived quality, authenticity, and association with a specific geographic region. This can result in increased revenues for producers and higher incomes for communities involved in the production process.

GIs can attract tourists interested in experiencing the unique cultural heritage and traditions associated with the products. This can stimulate local economies by generating revenue for accommodation, restaurants, transportation, and other tourism-related services.

Creation of Jobs:

The production, marketing, and distribution of GI products often involve a range of activities that require skilled labour. GI recognition can create employment opportunities in various sectors, including agriculture, manufacturing, marketing, and tourism.

Conservation of cultural heritage:

Geographical indication helps to conserve cultural heritage which makes India proud on international level. GIs celebrate the diversity of cultural expressions by highlighting the distinctive features of products rooted in local traditions, customs, and practices. By protecting these cultural assets, GIs contribute to the preservation and promotion of cultural diversity on a global scale.GI protection safeguards the authenticity and integrity of traditional products by preventing unauthorized use of geographical names and ensuring that products meet specific quality standards and production criteria. This helps maintain consumer trust and confidence in the genuineness of the products.

Uplifting of Dying crafts:

Dying craft" related to traditional crafts or skills that are at risk of disappearing due to various factors such as modernization, lack of interest, or economic challenges. Protecting such dying crafts by the Geographical Indication by getting GI Tag. It can be the best way to preserve cultural heritage.

Preservation of Traditional Technique:

GIs typically require adherence to traditional production methods and standards, which helps preserve dying crafts by encouraging artisans to continue using traditional techniques rather than adopting modern alternatives. GIs often add value to products by signalling

authenticity and quality, which can result in higher prices and increased profitability for artisans practicing dying crafts. This provides economic incentives for artisans to continue their craft and invest in skill development.

Examples of dying crafts that could potentially be recognized as GIs include:

- Handloom weaving techniques specific to certain regions or communities.
- Traditional pottery-making methods passed down through generations in a particular area.
- Indigenous embroidery styles unique to a specific cultural group.
- Traditional woodworking or carpentry techniques distinctive to a particular locality.
- Handcrafted leather goods produced using traditional methods in a specific region.

And many more to explore.

By obtaining GI Tag, these dying crafts can receive legal protection against imitation or misuse, helping to safeguard the authenticity and integrity of the products.

Conclusion:

Intellectual Property Rights, particularly in Geographical Indications, have emerged as most powerful tools for promoting rural and regional development in India, this development is not only restricted to the only in Rural India but on the international level. This process of development helps to making known the Rural India. So, we have to work on protecting the unique qualities of region-specific products. GIs helps to contribute to economic empowerment this empowerment increases the standard employment particular income, cultural and heritage preservation, this is the medium to focuses on cultural and heritage by which people got by their ancestors and this is turns in to the Traditional Knowledge which moves to one generation to another generation and that helps overall well-being of rural communities. As India continues to leverage its diverse cultural and agricultural heritage, the strategic use of intellectual property rights will remain instrumental in shaping a sustainable and inclusive path for rural development.

Here one thing we can't deny about the role of the government. The government is the only mechanism which can help to enhance the role of geographical Indication and geographical indication Tag. The Government role is essential in the post- GI mechanism. Without government support, most manufacture groups cannot effectively defend or move ahead their GI brands as they do not possess the necessary resources.[6]

Suggestion:

- Government should take initiative to make aware about the Geographical Indication and Geographical Indication Tag.
- The Procedure of getting geographical indication tag should be easy and approachable.
- There is only one jurisdiction with all India in Chennai, for the promotion of the GI government should open at least one GI office at every State so, it can be easy to get GI Tag.

Referenc

1. https://www.wipo.int/geo_indications/en/#:~:text=A%20geographical%20indication%20(GI)%20is,originating%20in%20a%20given%20place.acessed on 25.06.2024
2. https://www.wto.org/english/res_e/publications_e/ai17_e/trips_art22_jur.pdf.acessed on 2.06.2024
3. Supranote4
4. The Geographical Indication of gods (Registration and protection) Act 1999 Section 2(e)
5. consistent with common usage, this paper uses the abbreviated term Traditional knowledge to refer to the subject-matter of Article 8(j) of the Convention on Biological Diversity, that is, Acknowledge, innovations and practices of indigenous and local communities embodying traditional lifestyles relevant for the conservation and

sustainable use of biological diversity. While this term is a convenient shorthand to refer to the complex of ideas embraced by Article (j), it is essential to remember that indigenous knowledge systems do not just conserve knowledge but also innovate; they are evolving and dynamic, rather than static, as recognized in COP Decision III/14.

6. 1M.S. Siddiqui, "Draft geographical indication (GI) law gathers dust" (2015), Available at: http://www.thefinancialexpress-bd.

Mob no- 8317062550 Priya13garg@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 73-76
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में युवा पीढी

दीप्ति जे पनिकर, शोधार्थी
हिंदी विभाग, एम. जी विश्वविद्यालय कोट्टयम, केरल

२१वीं सदी की हिंदी कहानियों में युवा पीढ़ी के चित्रण का विषय समकालीन साहित्य का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यह सदी वैश्वीकरण, तकनीकी विकास, उपभोक्तावाद, बेरोजगारी, नैतिक मूल्यों में बदलाव, और व्यक्तिगत अस्तित्व के संकट के दौर में प्रवेश कर चुकी है। युवा पीढ़ी इन परिवर्तनों का सबसे बड़ा प्रतिनिधि वर्ग है, और इसके संघर्ष, सपने, चुनौतियाँ, एवं संबंधों की विविधता हिंदी कहानियों में प्रमुख रूप से उभर कर सामने आई है। यह लेख युवा पीढ़ी की उन समस्याओं और चिंताओं का विश्लेषण करेगा, जिन्हें २१वीं सदी की कहानियों में चित्रित किया गया है।

१. युवा पीढ़ी की मानसिकता और उसकी जड़ें

२१वीं सदी के युवा का दृष्टिकोण १९वीं और २०वीं सदी के युवा से कई मायनों में भिन्न है। सूचना क्रांति के बाद, सोशल मीडिया, इंटरनेट, और ग्लोबलाइजेशन के कारण युवा पीढ़ी का विचार-परिवेश बदला है। जहाँ पहले समाजिक मूल्य और पारिवारिक संरचनाएँ प्रमुख होती थीं, वहीं अब व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आत्म-साक्षात्कार, और आर्थिक स्थिरता प्राथमिक हो गए हैं।

सत्य व्यास का उपन्यास "बनारस टॉकीज़" युवा पीढ़ी की मानसिकता, उनके सपनों और उनकी उलझनों को बखूबी दर्शाता है। इस कहानी में बनारस के विश्वविद्यालय के छात्र अपनी आकांक्षाओं, चुनौतियों और जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण के साथ जी रहे हैं। इसमें आधुनिक शिक्षा प्रणाली, प्रेम संबंधों, और कैरियर की आकांक्षाओं को वास्तविकता के धरातल पर दिखाया गया है।

२. आधुनिक जीवन और जटिलताएँ

आधुनिक युवा जीवन में बढ़ती जटिलताएँ जैसे बेरोजगारी, आर्थिक अस्थिरता, और रिश्तों की अस्थिरता हिंदी कहानियों का मुख्य विषय बन चुकी हैं। २१वीं सदी के युवा इन समस्याओं से सीधे-सीधे जूझ रहे हैं।

अभिषेक कश्यप की कहानी "डार्क हॉर्स" में युवा नायक सिविल सेवा की तैयारी कर रहा है, लेकिन वह केवल नौकरी पाने की होड़ में खो जाता है। यह कहानी उस मानसिक तनाव और निराशा को प्रस्तुत करती है, जो बेरोजगारी और असफलता की वजह से युवा मन झेलता है। यह कहानी यह भी दर्शाती है कि कैसे करियर की होड़ में कई बार युवा अपनी मूल पहचान और उद्देश्य को भूल जाते हैं।

३. संबंधों की बदलती परिभाषा

युवा पीढ़ी के लिए रिश्तों की परिभाषा भी बदल रही है। पहले जहाँ विवाह और परिवार के प्रति समर्पण अनिवार्य माना जाता था, अब रिश्तों में स्वतंत्रता और व्यक्तिगत विकास को अधिक महत्व दिया जा रहा है।

अनु सिंह चौधरी की कहानियाँ इस बदलाव का सुंदर चित्रण करती हैं। उनके कहानी संग्रह "नीला स्कार्फ" में महिला पात्र अपने व्यक्तिगत जीवन के विकल्पों को स्वतंत्रता के साथ चुन रही हैं। यह कहानियाँ पारंपरिक विवाह और समाज की अपेक्षाओं के विरुद्ध चल रही महिलाओं की जद्दोजहद को दिखाती हैं। आधुनिक युवा विशेष रूप से महिलाएँ अपनी स्वतंत्रता को लेकर अधिक सजग हो चुकी हैं, और इस बदलाव को कहानीकार बखूबी पेश कर रहे हैं।

४. तकनीक और सोशल मीडिया का प्रभाव

२१वीं सदी के युवा जीवन में सोशल मीडिया, स्मार्टफोन, और अन्य डिजिटल उपकरणों का बहुत बड़ा प्रभाव है। यह न केवल उनके व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करता है बल्कि उनके संबंधों, भावनाओं, और सामाजिक दृष्टिकोण को भी गहराई से बदल रहा है।

आलोक कुमार की कहानी "फेसबुक के चेहरे" इस प्रभाव को बारीकी से पकड़ती है। इसमें दिखाया गया है कि कैसे फेसबुक और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर लोग अपने जीवन के झूठे या अधूरे पक्षों को सामने रखते हैं। इसमें विशेष रूप से युवा पात्रों का मानसिक संघर्ष, जो डिजिटल दुनिया और वास्तविकता के बीच झूल रहा है, प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत किया गया है।

५. स्त्री विमर्श और युवा पीढ़ी

२१वीं सदी की कहानियों में युवा स्त्रियों का चित्रण अधिक मुखर और स्वतंत्र रूप में सामने आया है। स्त्री पात्र अब केवल पारंपरिक भूमिकाओं में नहीं दिखतीं, बल्कि वे अपने जीवन के निर्णय खुद लेने लगी हैं।

गीत चतुर्वेदी की कहानी "न्यूनतम मैं" में महिला पात्र अपनी स्वतंत्रता और पहचान के संघर्ष में है। यह कहानी विशेष रूप से उस युवा पीढ़ी की महिलाओं के लिए प्रासंगिक है, जो अपने अधिकारों, स्वतंत्रता और पहचान की लड़ाई लड़ रही हैं।

६. युवा वर्ग की नैतिकता और चुनौतियाँ

युवा वर्ग के नैतिक मूल्यों में भी काफी परिवर्तन आया है। जहाँ पहले सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं का प्रभाव अधिक था, वहीं अब युवा अपनी नैतिकता खुद तय कर रहे हैं। यह परिवर्तन हिंदी कहानियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

पंकज दूबे की कहानी "लूजर कहीं का" में नायक अपनी गलतियों और असफलताओं के बावजूद जीवन को नई दृष्टि से देखने की कोशिश करता है। इसमें दिखाया गया है कि कैसे एक असफल युवा भी अपनी परिस्थितियों के अनुसार नैतिकता की नई परिभाषा गढ़ता है और समाज के परंपरागत मापदंडों को चुनौती देता है।

७. गाँव और शहर का द्वंद्व

२१वीं सदी के युवा जीवन में गाँव और शहर के बीच की खाई भी एक महत्वपूर्ण विषय है। शहरीकरण और गाँवों से पलायन की वजह से युवा पीढ़ी अपनी जड़ों और नए परिवेश के बीच झूल रही है। यह द्वंद्व हिंदी कहानियों में अक्सर दिखता है।

राजेश कुमार की कहानी "पीली छतरी वाली लड़की" में गाँव से शहर आने वाले युवक के जीवन के संघर्ष और मानसिक द्वंद्व को दिखाया गया है। इसमें पारंपरिक और आधुनिक जीवन के बीच की खाई को बखूबी उभारा गया है।

८. अस्तित्व का संकट

२१वीं सदी की कहानियों में युवा पीढ़ी के अस्तित्व का संकट एक प्रमुख विषय है। नौकरी, पहचान, और व्यक्तिगत जीवन में संतुलन बनाना आज के युवा के लिए सबसे बड़ी चुनौती है।

निशांत जैन की कहानी "बेख़ौफ़" में नायक अपने जीवन के उद्देश्य को ढूंढ़ते हुए अस्तित्व के संकट से जूझता है। यह कहानी दर्शाती है कि आज का युवा अपनी पहचान और उद्देश्य के लिए किस हद तक संघर्ष कर सकता है।

निष्कर्ष

२१वीं सदी की हिंदी कहानियों में युवा पीढ़ी का चित्रण विविधता से भरा है। तकनीकी प्रगति, सामाजिक और आर्थिक बदलाव, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की चाह, और अस्तित्व के संकट ने इस पीढ़ी को एक नई दिशा दी है। हिंदी कहानियों के माध्यम से इन बदलावों और संघर्षों का बारीक चित्रण किया गया है। यह कहानियाँ न केवल युवा पीढ़ी की चुनौतियों को समझने में मदद करती हैं, बल्कि उनकी मानसिकता, सपनों, और भविष्य की दिशा को भी बखूबी पेश करती हैं।

संदर्भ सूची

1. "बनारस टॉकीज़" - सत्य व्यास
2. "डार्क हॉर्स"- अभिषेक कश्यप
3. "नीला स्कार्फ" - अनु सिंह चौधरी
4. "फेसबुक के चेहरे" - आलोक कुमार

5. "न्यूनतम मैं" - गीत चतुर्वेदी
6. "लूज़र कहीं का" - पंकज दूबे
7. "पीली छतरी वाली लड़की" - राजेश कुमार
8. "बेख़ौफ़" - निशांत जैन

9074019605
ई मेल: deepthipanicker456@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 77-82
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी भाषा का योगदान, सम्भावनाएं तथा चुनौतियां

डॉ दुर्गेश कुमार शर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर
पी.एम. कॉलेज, जवाहर नगर सुरक्षा विहार जीटी रोड अलीगढ़

भाषा मानव सभ्यता में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह अपने विचारों, चिंतन, आवश्यकताओं एवं भावों को शब्दों में परिवर्तित करने का साधन है जो एक सामाजिक जीवन जीने के लिए अत्यंत आवश्यक है। भाषा के माध्यम से मानव ने सामाजिक जीवन की शुरुआत की और इससे "मानव- सभ्यता" के विभिन्न चरणों का आरंभ हुआ। इस तरह से भाषा मानव-जीवन का अभिन्न अंग हो गई। जन्म के बाद व्यक्ति अपनी मातृभाषा को अपने परिवार एवं समुदाय के द्वारा प्राकृतिक रूप से सीखता है और इस तरह से भाषा उसकी पहचान का एक अभिन्न अंग बन जाती है। यह भाषा व्यक्ति को उसके परिवार, समुदाय, समाज एवं कई मायनों में उसके राष्ट्र की पहचान से जोड़ती है। प्रत्येक भाषा का एक इतिहास होता है जो उस देश एवं देशवासियों के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक इतिहास से जुड़ा हुआ होता है जैसे कि - वर्तमान भारतीय भाषाओं का विकास प्राचीन आर्यन संस्कृत एवं द्रविण तमिल-ब्राह्मी से हुआ है जिनके मध्य भी परस्पर आदान-प्रदान हुआ जो विविधता में भी एकता का परिचायक है।आधुनिक राष्ट्र-राज्य में भाषा एक महत्वपूर्ण सूत्र है जो उस राष्ट्र के लोगों को एक सूत्र में जोड़ता है। एक राष्ट्रभाषा एकता को बढ़ाती है, देशवासियों के मध्य विचारों के आदान- प्रदान, को प्रोत्साहित करती है और समुचित आर्थिक विकास एवं सुचारू राज-व्यवस्थता के लिए भी जरूरी होती है। 19 वीं शताब्दी से राष्ट्रभाषा ने एक राजनैतिक विचारधारा का स्वरूप धारण कर लिया और संपूर्ण विश्व में राष्ट्रभाषा के आधार पर आधुनिक राष्ट्र-राज्यों का गठन होने लगा। यूरोप इसका एक उदाहरण है जहाँ 19वी शताब्दी में बड़े-बड़े मध्यकालीन साम्राज्य ऑस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य, तुर्क साम्राज्य कई आधुनिक राष्ट्रराज्यों में तब्दील हो गये और यह प्रक्रिया आज तक कई देशों में जारी है जहाँ एक से अधिक भाषायें बोली जाती हैं।

राष्ट्रभाषा भारत के परिप्रेक्ष्य में :-वास्तव में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृक्ति व भारतीय सहित्य जितना अधिक प्रचारित-प्रसारित है। यह जितना अनूठा व विविध है उतना कोई ओर देश हो ही नहीं सकता। हमारे भारतीय साहित्य में जितने वेद, पुराण, श्रुतियां,स्मृतियां, महाकाव्य आदि को उपलब्धता है वह किसी अन्य सभ्यता के पास हो, ऐसी कल्पना भी नहीं

की जा सकती। अभी हमने सिर्फ साहित्य की बात इसलिए की है क्योंकि साहित्य की वैश्विक स्तर पर उपलब्धता प्राप्त करने का एक महान सेतू बनी है "हिंदी" क्योंकि इसी साहित्य को आम पाठक ने समूह की पहुंच तक सरलता से पहुंचाने के लिए हिंदी भाषा का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। वैसे हिंदी साहित्य में भी ना तो ग्रंथों की कमी है और ना ही विविधता को। हिंदी साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण ही इन्हीं भाव पक्षों की प्रधानता को लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया है जैसे वीरगाथाकाल, रीतिकाल, भक्तिकाल आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी भाषा में ज्ञान है, प्रेम है, करुणा है, मित्रता है, भावाभिव्यक्ति की चरम सीमा है, काव्य सौष्ठव है, छंद अलंकार के साथ सौंदर्यात्मकता हैं, और इन सबके साथ-साथ है हिंदी भाषा का जो सबसे महत्वपूर्ण गुण है वह इसकी सरलता और आसानी से उपलब्धता। क्योंकि भाषा संबंधी यह गुण तो अन्य भाषाओं में भी हैं परंतु और वे भाषाएं भी सरल कही जा सकती हैं। परंतु हिंदी जितनी नहीं, क्योंकि भारत में प्रत्येक राज्य में हिंदी बोलने वालों की एक विशेष जनसंख्या उपलब्ध है और उत्तर भारत जैसे हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश को लगभग पूर्णतया ही हिंदी भाषी क्षेत्र है। इसलिए हिंदी की महत्ता में और इजाफा हो जाता है। इसकी अखंडता और प्रगाढ़ तब हो जाती है जब हिंदी की सरलता के साथ-साथ हिंदी की आसान पहुंच, उपलब्धता भी जुड़ जाती है।भारतीय संस्कृति को कुछ शब्दों में व्यक्त करना हो तो हम कह सकते हैं "वसुधैव कुटुम्बकम्"। इसलिए राष्ट्रभाषा का मुद्दा भारत राष्ट्र के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण किंतु जटिल मुद्दा है। भारत में कुल 22 भाषाओं को राजकीय दर्जा प्राप्त है जबकि 2011 जनगणना के अनुसार भारत में 1635 भाषायें हैं और जो 10,000 या अधिक जनसंख्या के समुदाय द्वारा बोलीं जातीं हैं।

भारत में हिंदीभाषा का ऐतिहासिक विकास एवं संवैधानिक स्थिति:- स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् विभाजन की स्मृतियों, ब्रिटिश राज के समय में अंग्रेजी के प्रभुत्व एवं भारत के इतिहास में कई सारे राज्यों के होने व उनमें परस्पर ईर्ष्या व संघर्ष की स्मृतियों के कारण भारत के संविधान निर्माताओं की मुख्य चिंता भारत की संप्रभुता, एकता एवं अखण्डता को सुरक्षित रखना और उसकी लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाना था। अतः राष्ट्रभाषा का होना जरूरी समझा गया और उसके लिये कई सारे विकल्पों को सुझाया गया। सबसे मजबूत पक्ष "हिन्दी" का था जो सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी। वहीं नेहरू जी व गांधी जी "हिन्दुस्तानी" को राष्ट्रभाषा का दर्जा देना चाहते थे जो हिन्दी व उर्दू का अदभुद संगम थी व सामान्य बोलचाल की भाषा थी। वहीं कुछ लोग अंग्रेजी को, तो कुछ संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। दक्षिणी राज्यों व अन्य राज्यों ने इसका पुरजोर विरोध किया जिसके कई राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारण थे। अन्ततः इसका अस्थायी समाधान यह निकाला गया कि "हिन्दी, अंग्रेजी" को राजकीय भाषा का दर्जा दिया गया एवं त्रिभाषीय शिक्षा व्यवस्था को प्रोत्साहन देने की बात की गयी। राज्यों को अपनी मातृभाषा को राजकीय भाषा घोषित करने की स्वायत्तता दी गयी। भारत सरकार एवं राज्यों

की सरकार के बीच संचार के लिए हिन्दी एवं अंग्रेजी का उपयोग सुनिश्चित किया गया।इसी आधार पर भारत सरकार ने 'राजभाषाआयोग' निर्माण किया है। 14 सितम्बर, 1949 को हिंदी भारत संघ की राजभाषा बनी। राजभाषा के प्रयोग के चार मुख्य क्षेत्र है शासन, विधान, न्यायपालिका और कार्यपालिका। स्वतंत्रता पूर्व इन चारों क्षेत्रों में अंग्रेजी का वर्चस्व था। इन्हीं चारों क्षेत्रों में हिंदी को प्रतिष्ठित करना ही राजभाषा हिंदी को महत्त्व देना है।भारतवर्ष के संविधान की धारा 343 से 351 के विभिन्न अनुच्छेदों में राजभाषा का प्रावधान किया है। इनमें मुख्यतः चार अध्यायों में चर्चा की गई है संघ की भाषाः प्रादेशिक भाषा; उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय की भाषाः राजभाषा संबंधी विदेश नियम। धारा 343 में हिंदी को भारत संघ की राजभाषा और देवनागरी को उसकी लिपि के रूप में मान्यता दी गई है। हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में राष्ट्रीय आन्दोलनों में रही हिंदी भूमिका का विशेष महत्त्व रहा है। देश के महापुरुषों, हिंदी-प्रमियों, नेताओं के साथ सामाजिक और साहित्यिक और साहित्यिक संस्थाओं की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है।

हिन्दी के समक्ष राष्ट्रभाषा के रूप में चुनौतियाँ :-आज के युग में वैश्विकरण हर स्तर पर आवश्यक है। मानव संवेदनशील प्राणी है और साहित्य एक ऐसा साधन है जो मानवीय संवेदना को पठन-पाठन, श्रवण एवं लेखन के द्वारा आलंबन प्रदान करता है। इस पर भी हिंदी साहित्य की तो बात हो कुछ ओर है। इसकी अनेक विधाएं जैसे कहानी, आलेख, संस्मरण, नाटक, रिपोतार्ज, एकांकी आदि सबकी अपनी विशिष्टाएं हैं। हिंदी साहित्य में विभिन्न रस (जैसे करुण, रौद्र, वात्सल्य, वीर आदि) अलंकार (जैसे अनुप्रास, भ्रांति, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि) छंद (जैसे वर्णिक छंद, मात्रिक छंद, दोहा, सोरठा, चौपाई आदि) इन सबकी इतनी विविधता है, इतना सौंदर्य है, इतना आनन्द है, कि मानव अपने आप को भूल जाता है, वो अपनी भावनाओं के साथ कहीं दूर कल्पनाओं के संसार में ही चला जाता है। परंतु आज का वर्तमान युग यांत्रिक अधिक होता जा रहा है। वैश्वीकरण का पर्याय में आने जाने वाले गूगल पर हिंदी उपस्थित है। यानी वैश्वीकरण प्राप्त करने की ओर अग्रसर है। आज हिन्दी में भी वह तमाम सामग्री, लगभग सभी विषयों से संबंधित साहित्य सब कुछ हिंदी भाषा में भी उपलब्ध है। यह वैश्वीकरण की और एक सशक्त सार्थक कदम है।भाषा को प्रसारित करता है लेकिन हिंदी रोजगार उत्पन्न करने में उतनी सक्षम नहीं है जितनी उसे बरतने वालों की संख्या है। मात्र भारत में ही हिंदी बोलने वाले समाज और हिंदी से उत्पन्न रोजगार में इतना बड़ा अंतराल है कि हिंदी का भविष्य डरावना नजर आता है। आप्रवासी भारतीय तक हिंदी को मात्र आत्मीयता के व्याकरण से ही समझने का प्रयास करते हैं। "आप्रवासी भारतीयों की संतानें कर्तव्यबोध, भावबोध और सौन्दर्यबोध के लिए हिंदी पढ़ना चाहती हैं, न कि किसी अन्य प्रयोजन, सर्टिफिकेट या डिग्री प्राप्त करने के लिये जो उन्हें रोजगार दे सके। रोजगार की गुणवत्ता भी होती है। यदि हिंदी वैश्विक स्तर पर किसी रोजगार का निर्माण कर भी रही है तो उसकी तुलना भी उपयोगितावाद ही करेगा।उत्तराधुनिक शर्तों ने

हिंदी के सामने नये अवसर भी पेश किये हैं और नयी चुनौतियाँ भी। भाषा के क्षेत्र में अंग्रेजी महावृत्तान्तनात्मक भाषा है। वैश्वीकरण के इस दौर में अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। यह एक तकनीकी भाषा के रूप में विश्व की सभी भाषाओं को चुनौती दे रही है। इसके अलावा भारत की राजकीय भाषा, अंतर्राष्ट्रीय एवं मध्यस्थ भाषा के रूप में भी इसका उपयोग बढ़ता जा रहा है। आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के कारण अंग्रेजी की मांग बढ़ रही है क्योंकि उभरते हुए नये सेवा-उद्योग अंग्रेजी का भरपूर उपयोग कर रहे हैं।उत्तराधुनिक प्रस्थितियों में अंग्रेजी की स्थिति में अंतर आया है और उसे अन्य भाषाओं से चुनौती मिल रही है। हिंदी की स्थिति विडंबनात्मक है। भारतीय संदर्भ में हिंदी स्वयं महाख्यान के रूप में विकसित हुई । अब अन्य बोलियाँ हिंदी के वर्चस्व के विरुद्ध मुखरित हुई हैं। इस परिस्थिति में हिंदी को अपनी उपस्थिति के ठोस कारणों और तर्कों का विकास करना पड़ेगा। यदि अंग्रेजी का विकल्प और विकल्प के रूप में हिंदी को प्रस्थापित किया जा सकेगा तो हिंदी को और प्राणवान बनाने में यह बहुत सार्थक प्रयास माना जायेगा। यह युग व्यक्ति की भाषा तक ही सीमित न रहकर मशीन की भाषा तक फैला हुआ है। हिंदी को व्यक्ति की चेतना पर तो दखल देना ही होगा, साथ-ही-साथ मशीन की भाषा के रूप में भी प्रस्तुत होना होगा। कंप्यूटर और हिंदी के सम्बन्ध में एक अपरिहार्य चुनौती और प्रश्न यह है- "कंप्यूटर का आविष्कार और विकास पश्चिमी देशों में होने की वजह से उसका संचालन घटक अंग्रेजी भाषा के माध्यम से है और इस कारण यह विचारणीय हो जाता है कि क्या इस भाषा का बोध न रखने वाले अथवा इसका कम ज्ञान वाले व्यक्ति भी इसके अनुलाभों से पूरी तरह से लाभान्वित हो पाते हैं अथवा नहीं।" कंप्यूटर और हिंदी का प्रश्न बारम्बार दुहराया गया है और जारी है परन्तु उसका उत्तर अभी तक संभव न हो सका। इसका कारण भी हिंदी समाज ही है। यदि हम कोई एप्लीकेशन भी निर्मित कर सकते जो वैश्विक समाज का हिस्सा बन सकता तो कम-से-कम हिंदी का एक शब्द तो दुनिया सीख-जान सकती । लेकिन तकनीक या विज्ञान का वह स्वरुप हिंदी समाज के मूल ही में नहीं है, जिसे विश्व व्यवहार में प्रयुक्त कर रहा है।

हिन्दी भाषा की राष्ट्रभाषा के रूप में संभावनायें :-इन सब चुनौतियों के बावजूद कई सारी परिस्थितियाँ हैं, जो हिन्दी को एक राष्ट्रभाषा के रूप में आगे भी बढ़ा रही हैं।

मीडिया , फिल्मों और इन्टरनेटद्वारा प्रोत्साहन :-देशव्यापी इलैक्ट्रानिक मीडिया के विस्तार ने हिन्दी को देश के कोने-कोने में आसानी से पहुँचा दिया है और उसकी व्यक्तिगत स्वीकार्यता को बढ़ाने का काम किया है। बालीवुड़ फिल्मों की बढ़ती हुई लोकप्रियता ने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में एक महत्वपूर्ण योगदान किया है। हिन्दी फिल्में आजकल दक्षिणी राज्यों में भी काफी लोकप्रिय होती जा रही हैं, जो अब दक्षिणी संस्कृति, भाषाओं, कलाकारों एवं कहानियों को साथ में अपना रही हैं जिससे इनकी स्वीकार्यता बढ़ रही है।यह पूर्ण रूप से सत्य है कि हिंदी में अंग्रजी के स्तर की विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पुस्तकें नहीं हैं। उसमें ज्ञान विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ

वर्षों से इस दिशा में उचित प्रयास हो रहे हैं। अभी हाल ही में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा द्वारा हिंदी माध्यम में एम.बी.ए. का पाठ्यक्रम आरंभ किया गया। इसी तरह "इकोनामिक टाइम्स" तथा "बिजनेस स्टैंडर्ड" जैसे अखबार हिंदी में प्रकाशित होकर उसमें निहित संभावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह भी देखने में आया कि "स्टार न्यूज" जैसे चैनल भी अंगेजी से आरंभ हुए थे वे विशुद्ध बाजरीय दबाव के चलते पूर्णतः हिंदी चैनल में रूपांतरित हो गए। साथ ही "स्टार स्पोर्ट्स' (जैसे खेल चैनल भी हिंदी में कमेंट्री देने लगे हैं। हिंदी की वैश्विक संदर्भ देने में उपग्रह चैनलों, विज्ञापन एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। वह जनसंचार माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है।यू.टी.एफ. एनकोडिंग के उपयोग से हिन्दी एवं अन्य क्षेत्रीय भाषायें आसानी से इंटरनेट में अधिकाधिक उपयोग में लायीं जा रहीं हैं। इसकी वजह से कंप्यूटरों एवं नवीनतम स्मार्ट मोबाइलों में भी हिन्दी का उपयोग बढ़ रहा है और युवा वर्ग हिन्दी को एक नये रूप में उपयोग कर रहा है। ब्लॉग, फेसबुक, ट्वीटर इत्यादि इंटरनेट द्वारा दिये गये ऐसे उपकरण हैं जो हिन्दी के उपयोग को नये कलेवर से प्रोत्साहित कर रहे हैं। फेसबुक, गूगल आदि कंपनियाँ भारतीय उपभोक्ताओं में अपनी पैठ बढाने के लिये कई सारी सेवायें हिन्दी सहित अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में प्रदान कर रहीं हैं।"अँग्रेजी के अनेक पत्र हिंदी में भी अपने संस्करण निकाल रहे हैं।"

राजनीतिक , सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र द्वारा प्रोत्साहन :-जहाँ तक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विनिमय के क्षेत्र में हिंदी के अनुप्रयोग का सवाल है तो यह देखने में आया है कि हमारे देश के नेताओं ने समय-समय पर अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में भाषण देकर उसकी उपयोगिता का उद्घोष किया है। यदि अटल बिहारी बाजपेयी तथा पी.वी नरसिंहराव, विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में दिया गया वक्तव्य स्मरणीय है, तो श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राष्ट्र मंडल देशों की बैठक तथा चन्द्रशेखर द्वारा दक्षेस शिखर सम्मेलन के अवसर पर हिंदी में दिए गए भाषण भी उल्लेखनीय है। यह भी सर्वविदित है कि यूनेस्को के बहुत सारे कार्य हिंदी में सम्पन्न होते हैं। हिंदी को वैश्विक संदर्भ और ख्याति प्रदान करने में देश का युवा अब राजीतिक मुद्दों से ऊपर उठकर रोजगार एवं आर्थिक विकास को अधिक प्राथमिकता देता है। दक्षिणी राज्यों में इस वजह से हिन्दी को अधिक स्वीकार्यता मिल रही है क्योंकि हिन्दी देश की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। हाल ही में यह पाया गया कि चेन्नई में छात्र हिन्दी विषय की माँग कर रहें हैं। कई दक्षिणी राज्यों में हिन्दी को तीसरी भाषा के रूपमें पढ़ाया जा रहा है जिसके लिए छात्रों में विशेष उत्साह रहता है।भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा विदेशों में स्थापित भारतीय विद्यापीठों की केन्द्रिय भूमिका रही है जो विश्व के अनेक महत्वपूर्ण राष्ट्रों में फैली हुई है। इन विश्वविद्यालयों में शोध स्तर पर हिंदी अध्ययन अध्यापन की सुविधा है जिसका सर्वाधिक लाभ मिल रहा है।

निष्कर्षः- हिन्दी को राष्ट्रभाषा के स्वरूप में अपनाने के लिए जहाँ कई चुनौतियाँ हैं तो वहीं कई अच्छी संभावनायें भी हैं। जरूरत है कि हिन्दी की स्वीकार्यता को बढ़ाया जाये इसके कदम उठाये जा सकते हैं अंततः हमें यह समझना चाहिये कि राष्ट्रभाषा लोगों पर थोपने से नहीं हो सकती बल्कि एक जन-आंदोलन के रूप में स्वयं ही उत्पन्न होनी चाहिये। अगर हम हिन्दी को एक सरल, उपयोगी प्रगतिवादी, लोकप्रिय, लचीली एवं निरंतर अपने आपको एक नए कलेवर के रूप में गढ़ने वाली भाषा के रूप में ढाल सकें तो आशा है कि वह जल्द ही राष्ट्रभाषा के रूप में सभी को स्वीकार्य होगी।

संदर्भ

1. डॉ० वीना पाणी शर्मा- हिन्दी कैसे बने भारत के भाल की बिन्दी? स्वदेशी रिसर्च जर्नल,अप्रैल-जून 2013 पृ० 199.
2. सेठी, डॉ. हरीश कुमार, ई-अनुवाद और हिंदी, किताबघर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013, पेज-147
3. https://www.sdcollegeambala.ac.in/wp-content/uploads/2021/11/hindi2021-9.pdf
4. https://abhipraay.wordpress.com/2014/11/09/national-language-hindi-nature-challenges-future/

Email - durgeshsharma0204@gmail.com Contact - 9411880204

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 83-88
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भाषा, समाज, संस्कृति का संबंध और शिक्षा पर प्रभाव

डा0 पूजा शर्मा, **प्रवक्ता**
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय सासनी अलीगढ़

भारत स्वतंत्र होने के 62 साल बाद भी भारतीय जनता के साथ जो महत्वपूर्ण समस्याएँ हैं उनमें सबसे महत्वपूर्ण समस्याएँ सामाजिक विषमता और भाषा ही हैं। भारत विभाजन का एक कारण धर्म रहा है, लेकिन भाषा, समाज और संस्कृति ने भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। इसे हमें नहीं भूलना चाहिए क्योंकि यही धर्म की महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। इसके बावजूद आज़ादी के 62 साल बाद भी संघटित भारत की एक राष्ट्रभाषा नहीं है। भारतीय संस्कृति पर विचार किया जाए तो "भारतीय संस्कृति मनुष्य के विचारों एवं व्यवहारों के प्रतिमानों को इंगित करती है। इसके अंर्तगत मूल्य, विश्वास, आधार संहिता, राजनैतिक प्रतिमान तथा आर्थिक संगठन भी शामिल है।"[1] शिक्षा संस्थानों का व्यवसायीकरण हो चुका है और ज्ञान का माध्यम केवल एक ही भाषा को माना जा रहा है। जिसके विपरीत परिणाम भी समाज को झेलने पड़ रहे हैं। भारतीय आधुनिक जगत में जो समस्याएँ सामने आ रही हैं उसमें हमारी शिक्षा व्यवस्था, नवीनतम रूढ़ होती संस्कृति और समाजिक विषमता ही एकमेव कारण है। जिसके लिए किसी एक को दोषी मानना पूर्णतः गलत होगा। क्योंकि विचारक सदरलैंड के अनुसार “किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसकी सामुदायिक विरासत है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित की जाती है।"[2] लेकिन आधुनिक भारतीय संस्कृति को देखा जाए तो उसमें जो बदलाव आया है उसमें त्रुटी केवल संस्कृति हस्तांतरित करने वाले वरिष्ठों से ही नहीं हुई बल्कि संस्कृति सीखने वाले कनिष्ठों से भी हुई है। इस समस्या को समाप्त करने के लिए इसपर आत्ममंथन जरुरी है, जिसमें भाषा, समाज, संस्कृति और शिक्षा में होने वाले अंतःसंबधों की समस्याओं का समाधान भी छुपा हुआ हैं। इस संकल्पना को आगे बढ़ाने के लिए यह देखना भी महत्वपूर्ण होगा की भाषा, समाज, संस्कृति की क्या परिभाषाऐं दी गई है।

ब्लॉक एवं ट्रेगर "भाषा मनुष्य की वागेन्द्रियों से उत्पन्न यादृच्छिक एवं रुढ़ि ध्वनि प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा एक भाषा समुदाय के सदस्य परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"[3]

'पी०डी० गुने' के अनुसार "अपने व्यापक अर्थ में भाषा के अन्तर्गत ऐसे ध्वनि-संकेतों का पूर्ण योग आता है, जिसके द्वारा हम अपने विचारों और अनुभूतियों को व्यक्त कर सकतें है, तथा जिन्हें स्वेच्छानुसार उत्पन्न किया और दोहराया जा सकता है।"[9]

ब्लाक और ट्रेजर' के अनुसार "भाषा याद्दच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की बह व्यवस्था है, जिसके सहारे कोई सामाजिक समुदाय परस्पर सहयोग करता है।"[10]

"संस्कृति वह जटिल इकाई है जिसमें ज्ञान निश्चय, कला, नैतिकता, कानून, रीति-रिवाज तथा मनुष्य द्वारा समाज का सदस्य होने के नाते आर्जित बहुत सी योग्यताएँ तथा आदतें हैं। - **ई.वी. टेलर**" [4]

भाषा और समाज

भाषाविज्ञान में जब भाषा की उत्पत्ति के संबंध में सिद्धांत दिए जा रहे थे तो इस विषय पर भी चर्चा हुई थी कि पहले भाषा ने जन्म लिया या पहले समाज का निर्माण हुआ। कुछ विद्वानों का मानना था कि 'भाषा' समाज में उपयोग लाया जाने वाला साधन है इसलिए समाज का निर्माण पहले हुआ होगा और जब उस समाज को संप्रेषण की आवश्यकता निर्माण हुई होगी तो उसने संकेतों के माध्यम से भाषा को बनाया। लेकिन कुछ विद्वान मानते हैं कि मानव पहले समूहों में रहता था। वह पूर्णतः अन्य पशुओं की तरह जंगल में रहकर अपना जीवन व्यतीत करता था। उसके पास ना ही संस्कृति थी और ना ही जीवन व्यवहार के कोई अन्य नियम थे। एक पूर्ण समाज उसी को कह सकते है जिसके पास एक संस्कृति हो जीवन व्यवहार के नियम हो एक भाषा हो। इसलिए उनका मानना है कि जब मानव समूहों में रहते थे तो वे एक दूसरे को जंगलों में मिलने के उपरान्त आपस में संप्रेषण नहीं कर पाते थे। ऐसे समय वे एक दूसरे के विरोधी भी हो जाते थे, इसलिए उन्होंने पहले भाषा को विकसित करने का काम किया। जिसके माध्यम से उन्होंने उस समुदाय को संप्रेषित जीवन व्यवहार के नियमों में बाँध कर एक संस्कृति विकसित की, इस प्रकार देखा जाए तो पहले भाषा का निर्माण हुआ और बाद में समाज का। भाषा वैज्ञानिक और समाजशास्त्री एक दूसरे से सहमत हों न हों लेकिन यह तो स्पष्ट है कि भाषा और समाज के निर्माण में दोनों एक दूसरे के सहायक रहे जिससे केवल भाषा और समाज ही नहीं संस्कृति का भी विकास हुआ। इस प्रकार भाषा और समाज का एक दूसरे से उनकी उत्पत्ति से ही संबंध रहा है जिसके कारण उनकी परिभाषाओं में भी एक दूसरे को स्वीकारे बिना भाषा और समाज की परिभाषाएँ पूर्ण नहीं होती।

संस्कृति और समाज

संस्कृति का एक ही अर्थ है कर्मशीलता या कर्मशील होना। आज की मानवद्रोही संस्कृति पर विचार करते हुए 'आचार्य नरेन्द्र देव ने "संस्कृति को चिति की खेती कहा था।" संस्कृति का सवाल कोई आसान सवाल नहीं है। संस्कृतियाँ अनुकूल परिस्थितियों में फलती-फूलती हैं तो प्रतिकूल परिस्थितियों में मुरझा भी जाती है। दुनिया में शुद्ध संस्कृति जैसी

कोई चीज होती ही नहीं। विश्व-संस्कृति अलग-अलग देशों की संस्कृति का मिला-जुला रूप है। वह सभ्यताओं के संघर्ष से नहीं अपितु परस्पर सहयोग से निर्मित होती है। वस्तुतः संस्कृति जनता के उस इतिहास का उत्पादन है, जो पलटकर संस्कृति के रूप में ही अभिव्यक्त होता है। संस्कृति का काम सिर्फ विश्व को बिम्बों में अभिव्यक्त करना ही नहीं है बल्कि संस्कृति उन बिम्बों के जरिये विश्व की एक नई दृष्टि से देखने का आग्रह भी करती है। आज जिसे हम संस्कृति कहते हैं वह एक अत्यंत जटिल किंतु गतिमान परिदृश्य है जिस तक पहुँचने के लिए अब भी न तो हमारे पास संपूर्ण साधन हैं और न ही कोई मुकम्मल विचारधारा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि संस्कृति सदैव संक्रमणशील एवं समाज सापेक्ष दूसरी संस्कृति से मेल जोल बढ़ाने के लिए तत्पर रहती है और इस प्रक्रिया में समाज का हर व्यक्ति शामिल होता है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और आगे बहुत सी पीढ़ियों आती जाती रहती हैं, और सभी अपना प्रभाव या संस्कार अपने से अलग पीढ़ी पर छोड़ती जाती हैं। यही प्रभाव (संस्कार) संस्कृति है।जहाँ तक मेरी अपनी सौब है वह यह कि समाज का मूल्यांकन उसकी संस्कृति को खारिज करके नहीं किया जा सकता और समाज एवं संस्कृति को जोड़ने वाली सबसे प्रभावी चीज 'भाषा' है भाषा के द्वारा ही समाज और संस्कृति का मूल्यांकन होता है। वस्तुतः समाज-संस्कृति की किसी एक युग से आबद्ध अवस्था का नाम है। संस्कृति एक व्यापकतम वस्तु है और समाज उसका एक समय से बँधा हुआ रूप है। संस्कृति एक दीर्घकालिक ढाँचा है जिसके भीतर हमारे समाज की भावनाएं आकार लेती हैं। समाज के साथ भाषा का संबंध भी इसी संदर्भ के भीतर निहित है। इस संदर्भ में 'अज्ञेय' का मानना है कि "जैसे समाज कहने पर मैं संस्कृति की समग्र और सतत प्रक्रिया के किसी एक देश-काल में बंधे हुए रूप को सामने लाता है, उसी तरह समाज के साथ जब भाषा को जोड़ता हूँ तो उसकी भी उसी काल-सीमा के भीतर की अवस्था पर विचार करता हूँ।" इसलिए हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि जैसे जैसे समाज और उसके सांस्कृतिक तत्वों का क्षरण होता है वैसे वैसे उसकी भाषा भी कमजोर पड़ जाती है। यही कारण है कि अरबी, संस्कृत और अपभ्रंश आदि भाषाएं अब उतनी लोकप्रिय नहीं रही।

संस्कृति और भाषा

संस्कृत की 'भाष' धातु से 'भाषा' शब्द बना है जिसका अर्थ है - वाणी को व्यक्त करना। भाषा विचारों के विनिमय का सशक्त माध्यम होती है। काल, देश भौगोलिक स्थिति, पर्यावरण एवं जैव विविधता से इसका गहरा नाता- रिश्ता होता है। यह संस्कृति को समृद्ध बनाती है। इसलिए किसी भी समाज में भाषा का विशेष महत्व होता है क्योंकि यदि भाषा ना हो तो सामाजिक व्यवहार और क्रियाकलाप संभव न हो। मौन का सन्नाटा पसर जाए और चारों ओर अव्यक्त का माहौल निर्मित हो जाए । भाषा ही व्यवहार को गति देती है, इसलिए इसे जगत के व्यवहार का मूल कहा गया है। भाषा, लिपि और संस्कृति का गहरा संबंध होता है। भारतीय चिंतन धारा में संस्कृति की संकल्पना बेहद व्यापक है। हमारे यहां संस्कृति को

पूर्णता का पर्याय माना गया है। संस्कृति केवल कल्चर नहीं है, बल्कि यह कल्चर से कहीं ज्यादा व्यापक और तर्कसंगत है। सच पूछा जाए तो हिंदी, भारतीय संस्कृति और परंपराओं की समर्थ संवाहिका है । संस्कृति यदि चिंतन का मूर्त रूप है तो भाषा उसका माध्यम है।"संस्कृति मनुष्य की बौद्धिक और नैतिक अवधारणाओं को प्रमाणित ही नहीं करती है, उनका निर्माण भी करती है, लेकिन यह सब कहकर हम विज्ञान की महत्ता को अस्वीकार नहीं कर सकते। यह सब करने की क्षमता उसमें भी उतनी ही है।" इस प्रक्रिया में भाषा और संस्कृति का संबंध बनता है।

आज एक ओर जहाँ आधुनिक प्राइवेट शिक्षा संस्थान नवीन तकनीकी संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं। वहीं सरकारी शिक्षा संस्थान पुराने तंत्र पर ही टिकी हुई है। जिससे शिक्षा की प्रगति में ही नहीं संस्कार और ज्ञान में भी फर्क दिखाई दे रहा हैं। इन्हीं आधुनिक शिक्षा संस्थानों के कारण शिक्षा और भाषा में संघर्ष की स्थिति निर्माण हो गयी है। एक ओर अंग्रेजी शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढ़ रही है वहीं क्षेत्रीय भाषाओं की संख्या तेजी से घट रही हैं। जिसपर न सरकार का नियंत्रण है और न ही शिक्षा संस्थाओं का। यह निजीकरण की उपज है जिसपर सरकार का नियंत्रण आवश्यक है।

भाषा, समाज और संस्कृति का शिक्षा के किन प्रमुख घटकों पर प्रभाव होता है इसे स्पष्ट रुप से निम्न मदों के माध्यम से देखा जा सकता हैं।

1. एकात्मकता
2. उच्च शिक्षा
3. सामाजिक सामूदायिक शिक्षा

भारत में संस्कृति और महिलाओं की शिक्षा

"महिलाओं के लिए शिक्षा की जरुरत किस भाषा, किस तर्क या किस बोली में अभिव्यक्त की गई। बेहतर पत्नी और माँ के निर्माण के लिए महिला शिक्षा एक मध्यवर्गीय हिंदू पहचान और सभ्यता निर्मित करने वाले एक नैतिक कर्म के रुप में सामने आयी।"[5] जबकि स्त्री शिक्षा एक राष्ट्रीय निवेश था जिसका मकसद उन्हें एक अच्छी गृहणी, ज्ञान की प्राप्ति, सामाजिक सहचरिता, व्यवसायिक गति की प्राप्ति, समानता का अधिकार और अपने विवाहित जीवन में एक उत्तम शीलवान सहचरी बनाना था। परंतु यह संकल्पना शिक्षा व्यवस्था निर्माण के प्राथमिक काल में पूर्ण नहीं हो पा रही थी। क्योंकि एक ओर हिंदू पंडितों का स्त्री शिक्षा पर अंदरुनी विरोध कायम था। एक ओर पुरुषों ने पश्चिमी शिक्षा के साथ संस्कृति का वहन शुरु किया था। पोशाख और खान-पान में यह सहज दिखाई दे रहे था। वहीं स्त्रियों पर अब भी संस्कृति की वाहक का प्रतीक बनाकर रखा गया था। लेकिन आज कुछ बड़े शहरों से यह प्रथा भी जा रही है। जो आधुनिकता की ओर बढ़ने का संकेत है। लेकिन आज भी कुछ हठधर्मी पुरुष संस्कृति के वाहक संस्कृति का अवमूल्यन और घरों के भीतर की निजता बनाए रखने के के अपने परंपरागत ढाँचे को आगे बढ़ाना चाहते है। जिसका प्रथम

उदाहरण यह था कि “पुरुषों के कार्य क्षेत्र में समाज में समाजहित धर्मशास्त्र, कानून व चिकित्सा जैसे विषयों को महत्व दिया गया, जबकि स्त्रियों की दुनिया में बच्चों का लालन-पालन, पाकशास्त्र और सफाई जैसे कम महत्वपूर्ण विषयों का वर्चस्व रहा था।" [6]"बनारस में स्त्री शिक्षा को लेकर कोई हलचल नहीं थी, इलाहाबाद में उदासीनता दिखी, गोरखपुर में प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ सामने आयीं और लखनऊ में खुले तौर पर उग्र विरोध सामने आया।"[7]इस बीच यह भी बहस हुई की धर्म के आधार पर स्त्रियों को किस प्रकार शिक्षा दी जानी चाहिए हिंदू स्त्री को किस प्रकार की शिक्षा दी जाए और मुस्लिम महिलाओं को किस प्रकार की शिक्षा दी जाए। शिक्षा के क्षेत्र में धर्म को बढ़ावा दिया गया जिसके कारण सांस्कृतिक पक्षों को पूर्ण करने के लिए शिक्षा व्यवस्था भी संस्कृति, भाषा और धर्मों का केंद्र बन गई। जिसका प्रभाव हमें आज भी दिखाई देता है। इस धार्मिक भेदभाव की नीति को साहित्य, कला और धार्मिक शिक्षण में तो जरूर स्थान मिला लेकिन विज्ञान, तकनीकी और कानूनी शिक्षा में समानता देना आवश्यक ही था। स्त्री शिक्षा में भी जो समस्याएँ उत्पन्न हुई वह सांस्कृतिक और भाषिक समस्याओं के कारण। जिसकी जड़ें आज भी उतनी ही मजबूत हैं जितनी पहले थीं। जिसे भारतीय संविधान के इस अनुच्छेद का दुरूपयोग कर अधिक प्रबल किया जा रहा है जो कहता है कि "भारतीय संविधान के 45वे अनुच्छेद के अनुसार 14 वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों को राज्य मुक्त एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। अनुच्छेद 30 घोषणा करता है किसी भी अल्पसंख्यक को चाहे वे धर्म के आधार पर हों या भाषा के अपनी पसंद के शिक्षा संस्थानों की स्थापना या प्रबंधन करने का अधिकार है।"[8]

आज भारत सरकार शिक्षा पर करोड़ों रुपये खर्च कर रही है। जिसमें सरकारी स्कूलों के साथ निजी शिक्षा संस्थानों को बढ़ावा देने का कार्य हो रहा है। इसी बीच शिक्षा का अधिकार अधिनियम भी लागू कर दिया गया है, जो हर बच्चे को शिक्षा देने की बात करता है। वैश्वीकरण की नवउदारवादी नीति के आधार पर बने इस सरकारी बिल को परोपकार की नीति माना जा सकता है। क्योंकि वह एक ओर सभी बच्चों को शिक्षा देने की बात करता है तो दूसरी ओर निजी स्कूलों को बढ़ावा देती है जहाँ लाखों रुपये लेकर प्रवेश दिया जा रहा है। इस नीति को बनाए रखने के लिए अर्थिक रुप से कमजोर वर्गों और वंचित समुदायों के बच्चों को 25 फीसदी सीटे आरक्षित करने पर जोर देती है। लेकिन भारत का केवल 25 प्रतिशत हिस्सा शिक्षा से वंचित नहीं हैं। वंचितों और अशिक्षित लोगों का 50 प्रतिशत हिस्सा ऐसा है जो अपनी पूरी शिक्षा कभी प्राप्त नहीं करता। अतः भारतीय शिक्षा व्यवस्था में हो रहा बदलाव केवल एक सत्ता परिवर्तन की बात नहीं है यह एक भाषा, समाज और संस्कृति परिवर्तन की नीति है।

उच्च शिक्षा को देखा जाए तो भारत सरकार विदेशी विश्वविद्यालयों को प्रोत्साहन दे रही है। इसमें भी भारत कि शिक्षा नीति को समग्र दृष्टिकोण से देखा जाना आवश्यक है। क्या इन विदेशी शिक्षा संस्थानों में प्रवेश लेने वाले बच्चों को विदेशी भाषा, समाज, संस्कृति

और शिक्षा व्यवस्था के अनुसार ही अपने आप को ढालना होगा? अगर इस प्रश्न का उत्तर हाँ है तो ये विश्वविद्यालय केवल भारत की शिक्षा व्यवस्था में ही नहीं भाषा, समाज और संस्कृति में अंर्तविरोध निर्माण करेंगे।

संदर्भ सूची

1. Language, Literature and Education in Multicultural Societies: Collaborative Research on Africa, Edited by Kenneth Harrow and Kizitus Mpoche, Cambridge Scholars Publishing 2008
2. The Nature of Design Ecology, Culture, and Human Intention David W. Orr, 2002, Oxford University Press
3. भारतीय शिक्षा का इतिहास, शंकर विजयवर्गीय, राजपाल एन्ड सन्स, दिल्ली 2005
4. व्यक्ति, समाज और संस्कार, रामाश्रय राय, ज्ञान गंगा प्रकाशन 2004
5. तद्भव (पत्रिका-विशिष्ट संचयन) चाहे लक्ष अनचाहे परिणाम-औपनिवेशिक उत्तर भारत में स्त्री शिक्षा और पढ़ने का भय- चारु गुप्ता पृष्ठ - 43
6. तद्भव (पत्रिका-विशिष्ट संचयन) - चाहे लक्ष अनचाहे परिणाम-औपनिवेशिक उत्तर भारत में स्त्री शिक्षा और पढ़ने का भय- चारु गुप्ता पृष्ठ-44
7. तद्भव (पत्रिका विशिष्ट संचयन) चाहे लक्ष अनचाहे परिणाम औपनिवेशिक उत्तर भारत में स्त्री शिक्षा और पढ़ने का भय- चारु गुप्ता पृष्ठ - 49
8. भारतीय संस्कृति का स्वरुप-अमितकुमार शर्मा, कौटिल्य प्रकाशन, दिल्ली, 2006 पृष्ठ-227
9. "A Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a Social group co- operates." Bloch and Trager, भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा विवेचना, सं०वी०रा० जगन्नाथन, पृष्ठ सं० 16
10. "Langauge in tis widest sense means the sum-total of such signs of our thoughts and feelings as are capable of external perception and as could be produced and repeated at will. Gune भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा विवेचना, सं०वी०रा० जगन्नाथन, पृष्ठ सं० 17 P.D.

Email - pari74sharma@gmail.com Contact - 9457270204

- www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 89-92
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर का जीवन दर्शन :- एक अध्ययन

Lokesh Sagar, Research Scholar, MJPRU BAREILLY
Dr Sunita Joshi, Assistant Professor
कन्या महाविद्यालय आर्य समाज भूड़ बरेली

प्रस्तावना

डॉ भीमराव अंबेडकर आधुनिक भारत के प्रथम विधि वेत्ता एवं समाज सुधारक थे। दलितों के मसीहा ,समाज सुधारक,धर्म दर्शन के विद्वान डॉ भीमराव अंबेडकर एक राष्ट्रीय नेता भी थे।उनका जन्म 14 अप्रैल 1891 में मध्य प्रदेश में हिंदू महार जाति में हुआ था।उन्हें समाज में हर तरफ से भारी भेदभाव का सामना करना पड़ा क्योंकि महार जाति को उच्च वर्ग द्वारा ' अछूत' के रूप में देखा जाता था ।उन्होंने कई महत्वपूर्ण पुस्तके भी लिखी थीं जिनमें अंटचेबल हु दे आर , हू वेयर दि शुद्राज,बुद्धा एंड हिज धम्मा आदि। इसके अलावा उन्होंने 300 से अधिक लेख लिखे थे।भारत का संविधान भी उन्होंने ही लिखा

बाबा साहब द्वारा किए गए संघर्ष का उद्देश्य उपेक्षित वर्ग पर होने वाले अत्याचारों को खत्म करना था परन्तु बाबा साहब चाहते थे कि समाज के सभी वर्गों का सभी क्षेत्रों में समान स्थान होना चाहिए।सामाजिक भेदभाव व विषमता का पग पग पर सामना करते हुए अंत तक वह झुके नहीं

Key Point - अंबेडकर जी का सामाजिक जीवन दर्शन , सामाजिक सुधार, संघर्ष

शोध के उद्देश्य

1- अंबेडकर जी का जीवन दर्शन

2- अंबेडकर जी के सामाजिक सुधा

र 3- निम्न वर्ग के लोगों के लिए उनका संघर्ष

डॉ. अंबेडकर का प्रारंभिक जीवन और शिक्षा

डॉ. बी.आर. अंबेडकर के प्रारंभिक जीवन और शिक्षा ने सामाजिक न्याय के लिए एक मुख्य नेतृत्वकर्ता एवं भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार के रूप में उनके भविष्य की आधारशिला रखी।

उनका जन्म 14 अप्रैल 1891 को, मध्य प्रदेश के महू में, महार जाति में हुआ था। परंपरागत रूप से निम्न ग्रामीण सेवकों वाली जाति में जन्म लेने के कारण, उनकों अपने जीवन के शुरुआती वर्षों में जातिगत भेदभाव की कठोर वास्तविकताओं का सामना करना पड़ा। बचपन में सामाजिक बहिष्कार और अपमान का सामना करने के उनके अनुभव ने उनमें जाति व्यवस्था के अन्याय के खिलाफ लड़ने का गहरा संकल्प पैदा कर दिया।

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर की शैक्षणिक यात्रा मुंबई के एल्फिंस्टन हाई स्कूल से प्रारम्भ हुई, जहाँ वे पहले दलित छात्रों में से एक थे। भेदभाव का सामना करने के बावजूद, उन्होंने शैक्षणिक रूप से उत्कृष्ट प्रदर्शन किया, जो उन्हें एल्फिंस्टन कॉलेज से न्यूयॉर्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय तक ले गया। कोलंबिया विश्वविद्यालय उनके जीवन के लिए परिवर्तनकारी सिद्ध हुआ, वहां उन्होनें समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों के कार्यों के साथ-साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों से अवगत हुए, जो बाद में उनके दृष्टिकोण का आधार बन गए।

वर्ष 1916 में, डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स (LSE) में अपनी पढ़ाई जारी रखने और ग्रेज इन (Gray's Inn) में कानून की पढ़ाई करने के लिए लंदन चले गए।

डॉ भीमराव अंबेडकर का योगदान

भारत रत्न डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने अपने जीवन के 65 वर्षों में देश को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, औद्योगिक, संवैधानिक इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों में अनगिनत कार्य करके राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया

मानवाधिकार जैसे दलितों एवं दलित आदिवासियों के मंदिर प्रवेश, पानी पीने, छुआछूत, जातिपाति, ऊँच-नीच जैसी सामाजिक कुरीतियों को मिटाने के लिए मनुस्मृति दहन (1927), महाड सत्याग्रह (वर्ष 1928), नाशिक सत्याग्रह (वर्ष 1930), येवला की गर्जना (वर्ष 1935) जैसे आंदोलन चलाये।

बेजुबान, शोषित और अशिक्षित लोगों को जगाने के लिए वर्ष 1927 से 1956 के दौरान मूक नायक, बहिष्कृत भारत, समता, जनता और प्रबुद्ध भारत नामक पांच साप्ताहिक एवं पाक्षिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया।

कमजोर वर्गों के छात्रों को छात्रावासों, रात्रि स्कूलों, ग्रंथालयों तथा शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से अपने दलित वर्ग शिक्षा समाज (स्था. 1924) के जरिए अध्ययन करने और साथ ही आय अर्जित करने के लिए उनको सक्षम बनाया।

सन् 1945 में उन्होंने अपनी पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी के जरिए मुम्बई में सिद्वार्थ महाविद्यालय तथा औरंगाबाद में मिलिन्द महाविद्यालय की स्थापना की।

बौद्धिक, वैज्ञानिक, प्रतिष्ठा, भारतीय संस्कृति वाले बौद्ध धर्म की 14 अक्टूबर 1956 को 5 लाख लोगों के साथ नागपुर में दीक्षा ली तथा भारत में बौद्ध धर्म को पुनर्स्थापित कर अपने अंतिम ग्रंथ ‘‘द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा‘‘ के द्वारा निरंतर वृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया।

बाबा साहब भीमराव अंबेडकर के अनुसार जीवन दर्शन -

उनका मानना था कि समाज में छूआछूत और अस्पृश्यता को खत्म किए बिना देश की प्रगति नहीं हो सकती एवं समाज सुधार के लिए जातिवाद को खत्म करना चाहिए।उनका मानना था कि सामाजिक न्याय हासिल करने के बाद ही आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों को सुलझाया जा सकता है।उन्होंने दलित वर्गों के उत्थान के लिए बहुत मेहनत की तथा गरीबों और अतिपिछड़ों को सामाजिक समानता, उत्पीड़न से सुरक्षा,धार्मिक स्वतंत्रता,संपत्ति का अधिकार भी दिलाने की कोशिश की एवं उनके विचारों में स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, न्याय के दर्शन थे।

उन्होंने शिक्षा और ज़िंदगी के महत्व पर ज़ोर दिया और कहा था, "जीवन लंबा होने के बजाय महान होना चाहिए".

वर्तमान समय में अंबेडकर जी की प्रासंगिकता

भारत में जाति आधारित असमानता अभी भी कायम है, जबकि दलितों ने आरक्षण के माध्यम से एक राजनीतिक पहचान हासिल कर ली है और अपने स्वयं के राजनीतिक दलों का गठन किया है, किंतु सामाजिक आयामों (स्वास्थ्य और शिक्षा) तथा आर्थिक आयामों का अभी भी अभाव है।

सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और राजनीति के सांप्रदायिकरण का उदय हुआ है। यह आवश्यक है कि संवैधानिक नैतिकता की अंबेडकर की दृष्टि को भारतीय संविधान में स्थायी क्षति से बचाने के लिये धार्मिक नैतिकता का समर्थन किया जाना चाहिये।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते है कि डॉ भीमराव अंबेडकर एक सुप्रसिद्ध समाज सुधारक थे। उनका समाज के प्रति जीवन दर्शन अत्यंत उच्च कोटि का था। वे समतावादी विचारधारा के समर्थक थे।उन्होंने दलितों के उद्धार के लिए जीवन भर प्रयास किया अंततः अपने इस उद्देश्य में वे सफल रहे जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने दलितों के अधिकार दिलाए तथा समाज उनका गौरव बढ़ाया। उनके इस उपकार के लिए देश सदैव उनका ऋणी रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- सागर एस एल (2000)- " डॉ अंबेडकर संक्षिप्त जीवन परिचय " सागर प्रकाशन ,मैनपुरी
2- सर्वेश (2007)- " अंबेडकर के विचार " समता साहित्य सदन, नई दिल्ली
3- जेलियट एलनोर (1996) - अछूत से दलित तक : मनोहर पब्लिकेशन
4- वी आर अंबेडकर 1936, जाति प्रथा का विनाश
5- कीर धनंजय (1962) "डॉ अंबेडकर लाइफ एंड मिशन " पॉपुलर प्रकाशन बांबे
6- कुबेर डब्ल्यू एन (1995) " आधुनिक भारत के निर्माता डॉ भीमराव अंबेडकर
7- नेमा जी पी (2007) "भारतीय विचारक" नई दिल्ली

Email ID: lks8650@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 93-96
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

"वैदिकविमानविद्या का महत्त्व"

नरेश कुमार, शोधार्थी,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू, 180006

"वर्णानामर्थ सङ्घानां रसानां छन्दसामपि,
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।।"[1]

सार–

"वैदिक विमानविद्या का महत्त्व"– यह मेरे इस शोध–पत्र का अत्यन्त रोचक विषय है जिसपर दृष्टिपात होना आधुनिक–काल में अत्यावश्यक है। इस शोध–पत्र में वैदिक समय में भी विमान हुआ करते थे हमारे शास्त्रों में इसका उल्लेख पूर्व से ही कर लिया गया था इस तथ्य को उजागर करने का प्रयास किया जा रहा है।

बीजशब्द– विमान, ऋग्वेद, अथर्ववेद, भागवत पुराण आदि।

वेदों में 'विमान' शब्द का बहुधा यत्र–तत्र प्रयोग प्राप्त होता है। जिनमें विविध प्रकार के विमानों का उल्लेख किया गया है।

आधुनिक–काल में विमान सदृश प्रौद्योगिकीय ज्ञान को वर्तमान–काल का आविष्कार माना जाता है तथा हम इसे पूर्णतया सत्य स्वीकार कर लेते हैं इसका क्या कारण है? इसका कारण है शास्त्रों के प्रति अश्रद्धा तथा विश्वासहीनता। वैदिक साहित्य में कथित विमानविद्या तथा तदनन्तर लिखित विविध ग्रन्थों में विमान विद्या का उल्लेख, महर्षि भरद्वाज विरचित **'यन्त्रसर्वस्व'**, महाराज भोज का **'समराङ्गणसूत्रधार'** केवल कल्पना मात्र नहीं हो सकते यदि आधुनिक पीढ़ी इसे ऐसा मानती है तो इसका निराकरण भी अन्यों द्वारा कर दिया गया है परन्तु आज हम केवल इतना कह पाते हैं कि यह तो हमारे ग्रन्थों में पूर्व से ही था तथा इतने समय के पश्चात् भी ये हमारी प्राचीन वैज्ञानिक निधियाँ हमारी शिक्षा में स्थान नहीं प्राप्त कर सकी हैं।

विमान सदृश शब्दों के बहुधा प्रयोग प्राप्त होते हैं भारत की शास्त्रपरक ज्ञान परम्परा में, जबकि उनके अर्थ भिन्न–भिन्न हैं।

विविध आचार्यों ने 'विज्ञान' की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा है कि– विमान जल, थल तथा आकाश में चल सकते हैं। इनके द्वारा एक देश से दूसरे देश तथा एक द्वीप से अन्य द्वीप तथा त्रिलोक में यात्रा करना सम्भव है।[2]

'विमान' शब्द का अर्थ है– पार जाने वाला, नापने वाला, अधिष्ठाता तथा व्यवस्थापक आदि।

'विमान' शब्द के विषय में ऋग्वेद में इस प्रकार से कहा गया है– 'रजसो विमानं रथम्' अर्थात् लोकों के पार जाने वाला रथ।

वैदिक वाङ्मय में व्योम–गमन का विवेचन अनेक ऋचाओं तथा मन्त्रों में किया गया है।

ऋग्वेद के अन्तर्गत राजा सोम का उल्लेख मिलता है जिसमें वह अपनी बुद्धि–बल पर अन्तरिक्ष की यात्रा करता हुआ व्यक्त किया गया है।[3] ऋग्वेद में नभचारी नौकाओं को 'अन्तरिक्षप्रुट्' की संज्ञा दी गयी है1[4]

तैत्तिरीय आरण्यक में भी इन्हें 'अन्तरिक्षप्रुट्' कहा गया है।

इसी प्रकार अथर्ववेद में भी 'देवयान' शब्द का प्रयोग अन्तरिक्ष पथ हेतु किया गया है।[5]

वेदों में विमानों के विविध उल्लेख प्रदत्त हैं– जैसे– ऋग्वेद में कहा गया है कि त्रिकोणाकार, त्रि–आसनयुक्त तथा त्रिचक्रयुक्त दिव्य–रथ द्वारा अश्विनी कुमारों के आगमन का विवरण है।[6]

इत्थं ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में सर्वलोकगामी, सप्त चक्रमय, चतुर्दिक् में मुड़ सकने वाला, संकेत द्वारा सञ्चालित होने वाले तथा पञ्चरश्मिमय दिव्य–रथ (Plane) का वर्णन प्राप्त होता है।[7]

इत्थं ऋभु देवों के ऐसे दिव्य–रथ का उल्लेख मिलता है जिसमें न तो घोड़े हैं, न लगाम है तथा जो त्रिचक्रमय है एवं अन्तरिक्ष में सर्वत्र घूमता है।[8]

अन्य बहुविध प्रकार के उल्लेख भी वेदों में प्राप्त होते हैं–

'रथं ये चक्रुः सुकृतं – अविह्वरन्तरम्।'[9]

'त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो – त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः।'[10]

'ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं, सुखं रथं सुशदं भूरिवारम्।[11]

प्राञ्जल रूप से ऋग्वेद में अनेक विमानों का वर्णन देखने को मिल जाता है। विमानों को देवरथ अथवा देवयान के नाम से वर्णित किया गया है, ये विमान निश्चितरूपेण वर्तमानकालीन विमान–विज्ञान से अत्यधिक उन्नत हैं।

विमानों के निर्माता के रूप में 'ऋभु' नामक शिल्पी देव का उल्लेख मिलता है। विमान–निर्माण में कुशलता के कारण 'ऋभु देव' को 'देवता' की उपाधि प्राप्त हुई वरन् वे मूलतः शिल्पी ही थे।[12]

वेदों में प्राप्त होने वाले अनेक विमान जो वर्णित किये गये हैं वे इस प्रकार से हैं–

1. स्वचालित विमान (AUTOMATIC AIRCRAFT)–

इस प्रकार के विमान का वर्णन ऋग्वेद में किया गया है जो मरुत देवों का विमान है। यह विमान स्वचालित एवं अन्तरिक्षगामी विमान है जो अश्वों के बिना, बिना चालक के तथा अनवरत चलने वाला, लगाम रहित तथा 'रजस्तूः' अर्थात् नभ में उड्डयन करने वाला है।[13]

2. मनोवेग विमान (MIND VELOCITY AIRCRAFT)–

ऋग्वेद में बहुविध मन्त्रों में अश्विनीकुमारों के रथ का वर्णन है। इन्हें 'मनसो जवीयान्' अर्थात् मन से भी तेज़ गति से उड्डयन करने वाला तथा 'श्येनपत्वा' अर्थात् गरुड़ की भाँति उड्डयन करने वाला कहा गया है।[14]

3. मधुवाहन विमान (DELUXE AIRCRAFT)–

ये विमान विशिष्ट सुविधा से युक्त थे। इन विमानों के द्वारा अश्विनी कुमार तीन दिन–रात तक अनवरत यात्रा सम्पन्न कर सकते थे। इन विमानों में वज्र के सदृश 'तीन' दृढ़ 'पवि' थे अर्थात् इञ्जन थे।[15]

4. समुद्र तथा अन्तरिक्ष में चलने वाले विमान (SEA-SPACE CRAFT)–

समुद्र तथा अन्तरिक्ष में चलने वाला यान जो अश्विनीकुमारों के पास था। इस यान के द्वारा उन्होंने एक डूबते हुए व्यापारी को सुरक्षित किया था ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।[16]

5. समुद्र एवं आकाशचारी विमान (SEA-AIRCRAFT)–

अश्विनी देवों का रथ समुद्र तथा द्युलोक में भी चल सकता था। इस हेतु 'अमर्त्य' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है जो किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं हो सकता हो।[17]

ऋग्वेद के पश्चात् भी अन्य वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त 11वीं शताब्दी में महाराज भोज की रचना 'समराङ्गणसूत्रधार', महर्षि भरद्वाजकृत 'यन्त्रसर्वस्व' का वैमानिक प्रकरण, आचार्य नारायण की रचना 'विमानचन्द्रिका', महर्षि शौनककृत 'व्योम–यान तन्त्र', आचार्य गर्ग का 'यन्त्रकल्प', आचार्य वाचस्पति का 'यानबिन्दु', महर्षि चाक्रायणि की 'खेटयानप्रदीपिका', तथा आचार्य धुण्डिनाथ का 'व्योमयान प्रकाश' आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं जिनके अन्दर विमानों का निर्माण, उनके भेद, विमानों के विविध यन्त्रोपकरणादि का विवेचन, विमान चालन विधि आदि का सविस्तृत उल्लेख किया गया है।

इन्हीं ग्रन्थों के अन्तर्गत कतिपय ऐसे प्रकरण हैं जिनकी समानता आधुनिक रेडियो, वायरलेस, टेलीविज़न, टैलीपैथी आदि से की जा सकती है। महर्षि भरद्वाजकृत 'यन्त्र सर्वस्व' ग्रन्थ के वैमानिक–प्रकरण में पूर्ववर्ती वैदिक वैज्ञानिकों एवं उनकी विमानशास्त्रपरक रचनाओं का वर्णन किया गया है जिनकी संख्या 97 है।

वैमानिक प्रकरण को आचार्य ब्रह्ममुनि परिव्राजक ने 'बृहद् विमानशास्त्र' के रूप में प्रस्तुत किया। इसमें विमानों के विविध रूपों का वर्णन तथा रचना विधि आदि का भी उल्लेख किया गया है।

इस शास्त्र में विमानों के तीन प्रकार के भेद किये गये हैं–

1. मान्त्रिक।
2. तान्त्रिक तथा
3. यान्त्रिक।

1. **मान्त्रिक विमान** मन्त्रों के द्वारा चलते थे। जैसे– पुष्पक, भीष्म, शVर आदि 25 प्रकार के मान्त्रिक विमान थे।
2. **तान्त्रिक विमान** वे हैं जो तंत्रशक्ति अथवा रसायनों के प्रयोग से चलते हैं। इनमें भैरव, नन्दन, व्याघ्रमुख आदि 56 प्रकार बताए गए हैं।
3. **यान्त्रिक विमान** वे विमान होते हैं जो यन्त्रों के प्रयोग से बनाये जाते हैं।

इनमें रुक्म, शकुन, सुन्दर, त्रिपुर, मण्डल, पद्मक आदि 25 प्रकार बतलाये गये हैं।

अतः निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि वैदिकविमानविद्या आधुनिक विमानविद्या से कई गुणा अधिक उन्नत थी।

अतएव हम यह गर्व के साथ कह सकते हैं कि वेदों में पूर्ववर्ती मनीषियों, महर्षियों ने पूर्व से ही विमानों का वर्णन शास्त्रों में कर लिया था जो आज हम विमान देखते हैं यह उन्नीसवीं शताब्दी का आविष्कार है जबकि हमारे शास्त्र शाश्वत तथा सनातन हैं उनमें विमानों का उल्लेख पूर्व से ही प्राप्त हो जाता है।

अतः इस प्रकार से वैदिक विज्ञानविद्या का संक्षिप्त रूप से इस शोध–पत्र के माध्यम से उल्लेख प्रस्तुत किया गया जो आधुनिक–काल में सभी को विदित होना अत्यन्त अनिवार्य है जिससे हम अपने प्राचीन शास्त्रनिधि पर गर्व अनुभूत कर सकें। इसी के साथ सर्वकल्याण की मXलकामना के साथ मैं अपना शोध–पत्र समाप्त करता हूँ–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।"

'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॐ' ।

संदर्भ सूची–

1. रामचरितमानस, तुलसीदासकृत, मXलाचरण श्लोक।
2. बृहद् विमान शास्त्र, महर्षि भरद्वाजकृत, सम्पादक– स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक, 1959 ई॰, पृष्ठ संख्या–03
3. ऋग्वेद, 2.40.3
4. "राजा मेधाभिरीयते, अन्तरिक्षेण यातवे।"
5. नौभिः अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः। ऋग्वेद, 2.40.3
6. "ये पन्थानो बहवो देवयाना, अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति।"

ं ण त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन, त्रिचक्रेण सुवृतायातमर्वाक्। अथर्ववेद, 3.15.2 – अथर्ववेद– 1.118.2

7. अथर्ववेद, 2.40.3
8. 'अनवसो जातो अनभीशुरूक्थ्यो, रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः'।
9. वही – 4.36.2
10. वही – 8.58.1
11. अथर्ववेद – 8.58.1
12. अथर्ववेद – 1.111.1, "तक्षन् रथं सुवृतं विद्मानापसः – ऋभवः"।
13. 'अनवसों, अनभीशू रजस्तूः, विरोदसीपथ्यायाति साधन्।' वही – 6.66.7
14. वही – 8.73.13
15. 'त्रयः पवयो मधुवाहने रथे।' वही – 1.118.1

16. "अधि विष्टपि, यद् वां रथो विभिपतात्।" वही – 1.118.1
17. "उरू वां रथः परि रक्षति द्याम्, आ यत्।" वही – 4.43.5

सहायक ग्रन्थसूची–

1. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका– महर्षि दयानन्द सरस्वती, परोपकारिणी सभा, अजमेर।
2. ऋग्वेद संहिता, सम्पादक– पं॰ श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, नाग प्रकाशन।
3. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, सायणाचार्यविरचिता, डॉ॰ महाप्रभुलाल गोस्वामी– लेखक, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
4. वैदिक सम्पत्ति– पं॰ रघुनन्दन शर्मा, सम्पादक– परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, प्रकाशकः– आध्यात्मिक शोध संस्थान, 213– बी, अन्सारी रोड, नई दिल्ली–110002
5. वेदों में विज्ञान– डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर, भदोही।
6. वेद–विज्ञान, लेखक एवं सम्पादक– कर्पूरचन्द्र कुलिश, प्रकाशक– राजस्थान संस्कृत साहित्य अकादमी, जयपुर।
7. वेदविज्ञानविमर्श– आचार्य दयानन्द भार्गव, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर (राजस्थान)।
8. महर्षि भरद्वाजकृत– यन्त्रसर्वस्व, वैमानिक प्रकरण।
9. ऋग्वेद संहिता– स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द।
10. अथर्ववेद संहिता– वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं॰ श्रीराम शर्मा आचार्य, शांतिकु†ज, हरिद्वार।

सहायक शोध–पत्र/पत्रिकाएँ–

1. भारतीय विमानविद्या का विहंगम परिदृश्यः एक पर्यालोचन, आशुतोष पारीक, सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग, सम्राट् पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर (राजस्थान), भारत।
2. प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का एक विशिष्ट आयाम : विमानविद्या, डॉ॰ आशुतोष पारीक, सहायकाचार्य संस्कृत विभाग, सम्राट् पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर (राजस्थान), भारत।
3. High Technology in Ancient Sanskrit Manuscripts. By C.S.R. Prabhu, Deputy Director General, National Informatics Centre, A-Block, BRKR Buildings, Tank Bund Road, Hyderabad – 500063.

E-mail ID: khajurianaresh70@gmail.com **मो॰ नं॰– 8082871693**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 97-101
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजसमन्द का शिल्प सौन्दर्य व स्थापत्य कला विमर्श

शशि सिंघल, शोधार्थी
डॉ. भेषराज शर्मा, असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत,दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक

**"भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्||"1**

अर्थात् श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्री पार्वती जी और श्री शंकर जी की हम वंदना करते हैं, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तः करण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते|

शिल्पकला व स्थापत्यकला दोनों ही कला के भेद होते हैं लेकिन उनमें उद्देश्य, कार्य और समय के साथ जगह तथा व्यावहारिकता में अन्तर होता है| शिल्पकला प्राथमिकता पूर्वक कलात्मक वस्तु या प्रतिष्ठान के रूप में बनाई जाती है जिसका मुख्य ध्येय आकृतिगत अभिव्यक्ति होता है या किसी विशेष विचार या अवधारणा को प्रकट करना होता है| 'कथासरित्सागर' ग्रन्थ में कहा गया है कि शिल्प किसी कल्पना का निरूपण या अभिव्यक्ति कौशल है, यह अति उत्कृष्ट होने पर दैविक और सामान्य होने पर मानुष कहा जाता है -

**"ते तन्निरुप्य जगदुर्नेदृशो देव शक्यते
अपरः कर्तुमेतद्धिदिव्यं शिल्पं न मानुषम् ||"2**

स्थापत्य कला प्रायः इमारतों और संरचनाओं के डिजाइन और निर्माण से सम्बंधित होती है जो व्यावहारिक कार्यों की सेवा करने वाली इमारतों और संरचनाओं के बनाने में सक्रिय रहती है|

राजस्थानी स्थापत्यकला की प्रमुख विशेषता शिल्प-सौष्ठव, अलंकृत पद्धति एवं विषयों की विविधता है| यह हिन्दू स्थापत्यकला के रूप में जानी जाती है राजपूतों की वीरता के कारण राजस्थान के स्थापत्य में शौर्य की भावना स्पष्टतः दिखाई देती है| मध्यकाल में जब तुर्की के निरन्तर आक्रमण होने लगे तो राजस्थानी स्थापत्य में शौर्य के साथ-साथ सुरक्षा की भावना का समावेश भी किया गया तथा विशालकाय व सुदृढ़ दुर्ग बनवाने आरम्भ कर दिए गये| सुरक्षा की दृष्टि से राजपूत शासकों ने अपने निवास भी दुर्ग के भीतर बनाने शुरू किए तथा जल की समुचित व्यवस्था के लिए जलाशयों का निर्माण भी प्रारम्भ किया| राजपूत

शासकों की धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था ने दुर्ग के भीतर मंदिरों का निर्माण कार्य भी प्रारम्भ किया|

१७ वी. सदी में मुगलों के सम्पर्क से राजपूत एवं मुस्लिम कला का पारंपरिक मिलन हुआ जिससे हिन्दू एवं मुस्लिम स्थापत्य शैलियों में समन्वय हुआ| दोनों शैलियों के समन्वय से राजस्थानी स्थापत्य का रूप निखर कर आया|

कला के मूल में सृजन का भाव रहता है व्यक्ति सृजनधर्मी हो इसके लिए उसे कला की सीख दी जाती है कला मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भले ही नहीं करती हो, परतु अपने आदर्श कलाकारों के प्रतिबिम्ब को प्रस्तुत कर उसे प्रभावित एवं दिशानिर्देश देने का प्रयास अवश्य करती है| संस्कृत के प्रसिदद विद्वान 'भर्तृहरि' ने 'नीतिशतक' ग्रन्थ में कला के माहात्मय को व्यक्त करते हुआ कहा है कि साहित्य-संगीत और कला से विहीन मनुष्य साक्षात पशु के सामान है -

"साहित्यसंगीतकला विहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः |
तृणं न खादन्नपि जीवमानः
तद्भागधेयमं परमं पशूनाम् ||"3

"ललित कलाएँ मानव सभ्यता के पुष्प है- रस्किन की यह विचारधारा रही है कि कला के कई रूप हैं और लावण्य निर्माण की भूमिका उसमें देखी जा सकती है| कला का एक रूप पाषाण शिल्प भी है| चित्रकला एवं मूर्तिकला का समन्वय करती शिल्पकला स्थापत्यकला का आभरण है इन त्रिवेणी नौचौकी बाँध है जहाँ कलाकारों की आदर्श प्रस्तुति परिलक्षित होती है| जलाशय निर्माण की गणना लोककल्याणकारी एवं प्रशंसनीय कलात्मक कार्यों में की जाती है|"4

राजसमन्द निश्चित रूप से एक सुदूरदर्शी सोच का प्रतिबिम्ब है जिसकी पहचान सरोवर के रूप में विख्यात है| इस सरोवर का बाँध नौचौकी के नाम से ख्यातिलब्ध है| जल स्थापत्य के जिन आदर्शों की नींव मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने राखी वे इतिहास में अतुलनीय है| 'सदाशिव' ने अपने ग्रन्थ 'राजरत्नाकर' में इस नगरी का अलंकारिक वर्णन करते हुए कहा है कि विशाल सरोवर के तट पर स्थित नारायण, विष्णु व कृष्ण से युक्त यह नगरी समुद्र के तट पर सुहावनी बसावट वाली स्वर्णिम द्वारका नगरी के सामान शोभायमान दिखाई देती है जहाँ धनी जनों के रंग-बिरंगे द्वार वाले सुरम्य गवाक्षों की श्रेणियों से युक्त तथा अतीव धनसम्पन्न भवनों से युक्त यहमहराना राजसिंह की नगरी पृथ्वी के सामान सुशोभित होती हुई दिखाई देती है -

"श्री राजसिंह भवदीयपुरी समृद्धा
नारायणेन सरसो महतः प्रतीरे |
रत्नाकरोतटशोभितसन्निवेशा

द्वारावतीव तपनीयमयी विभाति ||"

"इयमृद्धवतां महाधनैर्भवनै रंजितरम्यतोरणैः

कमनीयगवाक्ष पंक्तिभिः क्षितिभूषेव विराजिता पुरी ||"5

"मेवाड़ में जलस्त्रोतों के निर्माण की परंपरा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है यहाँ पर प्राचीन प्राकृतिक नालों को बाँधकर जल का सदुपयोग करने की परंपरा बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है|"6 मेवाड़ में जलस्त्रोतों के निर्माण का प्रबल साक्ष्य शासक मानमोरी कृत 713 ई. का शिलालेख है जिसे जेमस्टॉड ने चित्तौड़ के पास पुठौली गाँव से खोजा था| "इस अभिलेख के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि सातवीं-आठवीं सदी में मेवाड़ में शासकों द्वारा जलाशयों का निर्माण अक्षय पुण्य प्रदायक कार्य मानकर करवाया जाने लगा था|"7

"महाराणा राजसिंह के राज्यकाल में शिल्प व स्थापत्य कला को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला उनके समय की निर्मित इमारतों में जनहित व सुरक्षा की भावना निहित थी|"8

"राजसमन्द वर्तमान राजस्थान के उदयपुर संभाग का उत्तरवर्ती जिला मुख्यालय है| वहीं पर इस नाम से झील बनी हुई है| मेवाड़ के शासक महाराणा राजसिंह ने 1661-1671 के बीच इस झील का निर्माण कार्य करवाया| गोमती, केलवा नदी एवं अन्य बरसाती नालों के प्रवाह क्षेत्र में बना इसका सेतु बहुत विशाल, सुदृढ़ और विशिष्ट रूप से कलात्मक है| 'राजप्रशस्ति' ग्रन्थ से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि महाराणा राजसिंह ने अकाल की पीड़ा को जानकार अपनी जनता को राहत देने के उद्देश्य से गोमती नदी को बाँधकर एक वृहत् जलस्त्रोत का निर्माण कार्य आरम्भ किया जो वि.स.1718 से प्रारम्भ होकर संवत् 1732 तक बनकर तैयार हुआ जिसे बाँध बन जाने के बाद राजसमन्द नाम दिया गया, सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपनी तरह का अनुपम एवं अनन्य बाँध है|"9

भारतीय संस्कृति में सरोवर का निर्माण कार्र्य बहुत पुण्यदायी माना गया है| जलदान की जो महिमा ऋग्वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक व्यवहार में है वह स्वर्णिम सांस्कृतिक सुख है और पौरुषेय पुण्य का हेतु है|

'प्रासादमंडन' ग्रन्थ में कहा गया है कि जलाशय के निर्माण से वृक्षों और जीव-जन्तुओं को जीवन मिलता है, इस कार्य की प्रेरणा तक मनुष्य को स्वर्ग और पृथ्वी का लाभ एवं सुख देने वाली है -

"जीवनं वृक्षजन्तूनां करोति यो जलाश्रयम्

दत्ते व स लभेत्सौख्यमुर्व्या स्वर्गे च मानवः ||"10

राजसमन्द कहने को एक झील है लेकिन वास्तव में यह कल्पनाओं का एक सागर है| राजसमन्द महाराणा राजसिंह की कला और स्थापत्य रूचि का रूपक तो है ही, उसके विशाल कल्पना कोश का कौतिकी प्राकट्य भी है| इसकी सुखद व सुरुचिपूर्ण जलराशि, पाल के पुष्करीय परिध, नौचौकी के सुन्दर सोपान, भारी भिहों, महोहर मंडपों तथा तीर पर तने तोरणों के जैसा कला-कौशल अन्यत्र नहीं मिलता| पुरे १४ वर्ष तक इसका निर्माण कार्य

निरन्तर रहा| इस झील का प्रतिष्ठा महोत्सव संवत् 1732 की माघ शुक्ल पूर्णिमा को धूमधाम से आयोजित हुआ|

"इस धनुषाकार झील का बाँध लगभग 5 किमी. लम्बा है| इसकी भराव क्षमता लगभग 220 लाख घन फीट है| राजप्रशस्ति ग्रन्थ में वर्णित 'नौचौकी' नामक बाँध सभी जनमानस के लिए 'नौकी' के नाम से जाना जाता है| इसका प्रमुख कारण यह है कि इसकी पाल पर जो तीन परिघ या कलात्मक चौकियाँ निर्मित है, वे सतह से लेकर ऊपर तक तीन स्थानों पर गणितीय नियमानुसार छोटे किए गये हैं जिससे तीनों चौकियों की संख्या नौ हो जाती है| प्रत्येक चौकी पर ऊपर से लेकर नीचे तक पहुँचने के लिए द्विस्तरीय जो सीढियां हैं, वे भी संख्या में नौ-नौ है| राजसमन्द झील के स्थापत्य की यह भी विशेषता है कि इन सीढियों की श्रृंखलाएँ भी नौ-नौ की गणना वाली है इसलिए लोकमानस का इस बाँध को नौचौकी संबोधन अतिश्योक्ति नहीं बल्कि सहजोक्ति है|"11

"नौचौकी बाँध पर तीन बड़े नक्काशीदार मंडप है जो प्रत्येक नीचे वाली चौकी पर स्थापित है| सोपानवत क्रम में यहाँ तीन-तीन चौकियाँ हैं जिनको मिलाकर संख्या नौ होती है| नौ सीढ़ियाँ, फिर एक चौकी और प्रत्येक सिढ़ी नौ इंच की बनी है, नौ का यह अंकात्मक स्वरुप शिल्पशास्त्रीय दृष्टि से बहुत महत्त्व प्राप्त किए हुए है| नौचौकी की शिल्पकला वहां की चतुष्कियों अथवा चौकियों, छोटे चबूतरों और कलात्मक मण्डपों से मंडित मिलती है| इस नौचौकी की बाँध पर कुल नौ चौकियाँ, बाईस छोटे चबूतरे, चार तोरणद्वार और तीन मण्डपों की रचना की गयी है| संख्यात्मक रूप से ये निर्मितियां ही इसकी निधि है |"12

<u>प्रथम तीन चौकियों</u> में से पूर्व दिशा से क्रमशः <u>प्रथम चौकी</u> के किनारे पर हंसाकृतियों की योजना देखने को मिलती है| पक्षियों में सबसे श्रेष्ठ और न्यायकारी गुणों से ओतप्रोत होने से हंस पंक्तियों को स्थापत्य कला में प्रमुख स्थान मिला है| इस चौकी की ताक पर छः शिलाएँ हैं जिन पर राजप्रशस्ति ग्रन्थ को उत्कीर्ण किया गया है| उसी के नीचे <u>दूसरी चौकी</u> के किनारों पर विशेष दृश्यालंकरण का अभाव है किन्तु कंगूरों की रचना की गयी है| सबसे नीचे वाली चौकी पर इस नौचौकी की <u>तृतीय चौकी</u> है जिस पर नयनाभिराम मंडप का विन्यास किया गया है| कहा जाता है कि इसको राजसमन्द झील में जल की उपलब्धता के परीक्षण के लिए बनाया गया है| इस मंडप में नौ वितानों की कौतुकी योजना देखी जा सकती है| नौ की संख्या का रहस्य यहीं से खुलता है -

"द्वार खंड रस नाड़िका निधि ग्रह नव परमानि
रायसींग सुतडाग की नव-चौकी पर जानि ||"

"<u>अन्य तीन चौकियों</u> में सबसे ऊपर वाली <u>चतुर्थ चौकी</u> के किनारे गजों का व अश्वों का अंकन किया गया है| यहीं पर एक पैनल पर भागवतोक्त गजेन्द्र मोक्ष प्रसंगों को मूर्तिमंत किया गया है तथा ईहामृग का अंकन भी दृष्टव्य है|"

मध्य में स्थित शिलालेख के दोनों ओर पंचम चौकी पर स्तंभों में बारीकी से तक्षण कार्य शिल्पियों के धैर्य तथा आत्मविश्वास की पराकाष्ठा को परिलक्षित करता है| तीसरे स्तर की षष्ठ चौकी पर नौ वितान और सोलह स्तंभों का मंडप बनाया गया है| इसी क्रम में विष्णु के दशावतारों का तक्षण ग्रन्थ चित्रित किया गया है| इस शिलालेख के दायें स्तम्भ पर भगवान कृष्ण का मुरलीधर स्वरुप तथा दूसरी तरफ नूपुर पहनती नायिका का चित्र उत्कीर्ण किया गया है|

शेष तीन अन्य चौकियों में (सप्तम,अष्टम,नवम) का विन्यास भी सोपानवत किया गया है| सबसे ऊपर वाली सप्तम चौकी के किनारे पर शिल्प शास्त्र सम्मत प्रमाणादि में मूर्तियों का अंकन है| इस चौकी के पूर्वी किनारे पर किन्नरों का आंकन भी मिलता है| मध्य शिला अष्टम चौकी के दोनों ओर स्थित स्तंभों पर सुन्दर अलंकरण तथा नीचे की ओर गजयुद्ध का दृश्य संयोजित है| तीसरे स्तर की अंतिम नवम चौकी पर ज्यामितीय व पुष्पीय अलंकरण है| जिसके दोनों तरफ वृक्षों को उखाड़ते हाथियों को दर्शाया गया है|

राजसमन्द झील के स्थापत्य के साथ ही उसका शिल्प सौन्दर्य सर्व दृष्टि से सुखावह व नयनरम्य है| नौचौकी बाँध का निर्माण मेवाड़ में जल स्थापत्य विन्यास की दृष्टि से निस्सन्देह अप्रत्याशित घटना मानी जा सकती है क्योंकि इसके शिलान्यास का जो स्वरुप है, उसने अगले कई दशकों तक जलाशयों के निर्माण की विशिष्ट कला ही विकसित कर दिया| निष्कर्षतः यह राजसमन्द जलाशय जलधि के तट पर जलशायी की लीलाओं के मंदिर के रूप में प्रकाशमान हुआ है|

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

१. श्रीरामचरितमानस,(वाल्मीकि रामायण)- प्रथम सोपान|
२. कथासरित्सागर,अध्याय-25,श्लोक-175
३. भर्तृहरि-नीतिशतक
४. जल स्त्रोतों का सांस्कृतिक इतिहास - साँचीहर, डॉ.मनीषा|
५. राजरत्नाकर-सर्ग -17, श्लोक-2-3, पृष्ठ सं.-320 |
६. हाड़ीरानी स्मारिका, वीरांगना हाड़ीरानीगौरव संस्थान,सलूम्बर,2011ई.,’जल धाराओं,खादानों से धनि सलूम्बर’ आलेख-पृष्ठ-41
७. एनाल्स एंड एन्टिक्विटिज ऑफ़ राजस्थान:कर्नल जेम्स टॉड,अनुवाद-पं.बलदेव मिश्र,श्री वैंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुंबई,1925 ई.-पृष्ठ-962 |
८. महाराणाराजसिंह:रामप्रसादव्यास,राजस्थानहिंदीग्रंथअकादमी,जयपुर,1974ई.,पृष्ठ-73
९. शिलोत्कीर्ण राजप्रशस्ति महाकाव्य,जुगनू,डॉ.श्रीकृष्ण |
१०.प्रासादमंडन:सूत्रधारमंडन,परिमलपब्लिकेशन्स,दिल्ली-2006,अध्याय8,श्लोक- 95 |
११. शिलोत्कीर्ण राजप्रशस्ति महाकाव्य- जुगनू, डॉ.श्रीकृष्ण
१२. जलस्त्रोतों का सांस्कृतिक इतिहास- साँचीहर, डॉ.मनीषा

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 102-105
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

System of Education in the Āśvalāyana Gṛhyasūtra period or Vedic period

Baturam Sarkar, Research Scholar,
Department of Sanskrit, Raiganj University.
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Alipurduar University,
Alipurduar-736122, W.B., India.

The system of Education is well organized and vast subject in the Vedic literature. It is so vast that we cannot explain the whole matter vividly. Yet, we shall try our level best to show the system so far our knowledge is concerned. A member of Indian Aryan family had to pass through four stages of life of which Brahmacarya (religious studentship) the first.[1] It was a part of the Vedic social discipline. "The Atharvaveda has in honour of Brahmacarin a hymn (XI.5) which gives all the characteristics of this stage of life."[2] In the field of education, learning and literature, the evidence of Astadhyayi is specially rich in mentioning different kinds of teachers and students, methods of learning and rules of studentship and Vedic schools known as the caranas. Ample light on the activities and constitution of the Vedic schools is forthcoming, e.g. the name of the carana was also the name of the students and teacher who constituted it; a carana was not a static institution, but subject to the laws of growth and expansion each school secured accession to its strength by fresh admission and branches (Tad-avetah, VI. 134) the intellectual ideal and high reputation of the caranas conferred on its members a sense of glorification (Slagha VI. 134). These Vedic schools were mostly organized on the basis of free and willing association of their members. Panini fully reflects the ideal of learning prevailing in that period, leading to the freedom of mind as a result of the methods of disputation, conference, and discourse. The art of book-making and the knowledge of writing were also a part of education. The words lipikara and libikara (III.2.21) denote a writer and Yavanani (IV. 1.49) a form of Greek writing.[3]

In the education system of the Vedic period or in the period of the AGS the four classes of literature are distinguished: First- drsta or revealed- which is known as saman literature, secondly, Prokta or taught, comprising the chanads and Brahmanas works, e.g. Sakha of Taittiriya, Vasratantu, Khandika, and Ukha, works of rsis like Kasyapa and Kausika, of Kath and caraka etc. These were developed under the auspices of the caranas which were also evolving special subjects of study like the Bhiksusutras propounded by Parasarya and Karmanda, as well as the Nata-stitras (treatises on dramaturgy), propounded by Silalin and Krsvasva; the third category is upajnata or

[1] RgV., X. 109.5; AV, VI. 108.2; 133.3; X.5.1. etc.
[2] AHV, Samskaras, pp 230-231
[3] TCHI, pp. 307-308

discovered, viz., works of such original authors as Panini and Apisali, and the fourth category is krta or ordinary composition like the books of stories (akhyanas). In IV.3.88, Panini refers to poetical and dramatic literature like the Sisukrandiya and the Yama-sabhiya. The growth of specialization before the time of Panini is demonstrated by his reference to the literature of commentaries (Vyakhyana, IV.366) on a variety of subjects, as rituals and sacrifices, methods of preparing purodasa[4] and sections of grammar like nouns, and Krt affixes etc.' The grammar is the main theme to learn any subject. The six Vedangas are another vital source to leaving to teaching of the courses.

The education of the Vedic period or in the period of the AGS was well organized that the Vedic culture and literature are found up till now. The Vedas were to systematically written in which we find the right educational matter as for example the Vedic period gives birth the systematic writings of the Vedas, we shall know the Vedas from Sayana's commentary, Veda is the some of Mantras and Brahmanas - Vedic and post Vedic literatures. Three periods of Vedic literatures - Sruti, and Smrti the Samhita period The fourfold Samhita corresponding to the four priests- Rgveda the most ancient and important chandas and Mantra samaveda Yajurveda Black and White Atharvaveda its historical importance. The Brahmana period The distinction between Mantra and Brahmana The Aiteraya Brahmana The Satapathga Brahmana- the literary estimate of the Brahmanas- Aranyakas, Upanisads- Vedanta the meaning of the word Upanisads the ten principal Upanisads- the sutra period their character and literacy estimate[5]- the six vedangas- siksha, pratisakhya, Sakha, carana, vyakaraṇa and parsad. The pratisakhya of saunaka chandas, vyakarana: Nirukta its contents Yaska prior to Panini two Yaskas. Kalpa, Srauta, Grhya and Samayacharika Sutras, Yyotish, anukarmanis and Paristas etc.

In the period of Kalpa Sutras the education system was so deep for the students or the society the people should observe the social bindings like important of good conduct, truth and righteousness, morality in sexual matters, respect for elders, the mode of salutation (Abhibadana), Honesty, Kindness, Charity, hospitality madhuparka, sacrifices, ideal conduct and etiquette, are prevailed. In the case of education there were many women genus like Gayatri, Atrei, Maitrai, Lopamudra and others.[6] The system of education in Vedic or Sutras period was benevolent and well organized one. Let us proceed to the well-organized system of education in which we find that in the Vedic period or in the Sutras period the education was obligatory for all. There is the famous statement in the Veda that every one should receive education (svadhyayoadhyotavyah). According to traditional interpretation, this meant that all children should study the entire Vedas. But in the course of time, men's capabilities diminished, and they confined their obligatory study to one Veda. And Veda meant the Samhita, the Brahmana and the Vedangas. The Kalpa Sutras formed a part of the Vedarigas, and Dharma- sutras were parts of the Kalpa-sutras. The Dharma sutras dealt with civic duties, as distinct from the rules relating to Srauta (scriptural) sacrifices and rituals dealt with in the Srauta Sutras and the domestic sacrifices and rituals dealt with in the Grhyasutras, Thus both religious and temporal laws formed part of Vedic study.[7]

The list of subjects which Narada enumerates to Sanatkumara in the Chandogya Upanisad (1.1.2) may be regarded as the normal equipment of an education man. There are indications to show that the students studied poetry also. They studied the text of the Vedas, and recited them

---

[4] Ibid, pp. 307-308
[5] IVKS, pp: 451-461
[6] IVKS, pp: 451-461-462
[7] TCHI, pp. 217-218, Ghate’s Lectures on RgV, p. 18.

with the proper accent and intonation. They studied grammar too, and were conversant with the general meaning of the texts.

This education was divided into an obligatory part and an optical part. After the obligatory education, there was the ceremonial both. Then students could continue in the asrama (retreat) of the teacher and prosecute further critical study.[8] They could perform the ceremonial both after that further study. Perhaps we can compare them with the school education and the university education of modern times. The former was compulsory, while the latter was only optional.

In the beginning, this education was common to all citizens, irrespective of their caste. As a matter of fact, the caste distinction came in only after they choose their avocation. It was not a hereditary privilege or a hereditary disability. But the Grha Sutras prescribe different ages for the initiation of the children belonging to the different castes. At that time therefore, hereditary must have made its appearance in the differentiation of castes.[9] The restriction of Vedic studies and performs and of sacrifices, to a particular caste must be latter day deterioration in the civic life of the Aryans. It is not an aspect of Vedic culture.

The aim of education was that of equipping the student to play his part as an honoured citizen. It is only later that the study of the Vedas was made a part of the sacrificial rites with svarga as the goal, or as a part of the study of the Vedanta to attain final release. That is how the Mimamsa sutras and the Vedanta Sutras interpret the Vedic passage in the Taittiriya Upanisad (1.1.1) throws considerable light on the educational policy of those times.[10] After the student has finished his education, the teacher exhorts the disciple who is going back home to "speak the truth" and to lead a virtuous life and further advices him as to his duties and obligations as a member of the society. In the course of this instruction, there is no indication of using what the student has studied either for the performance of sacrifices with Svarga as the goal or for the investigation into the problem of the Absolute with a view to attaining final release. The whole trend of the final instruction is that he should lead an honoured and useful life as a citizen. He should marry and continue the line of his family; he should give money to his teacher, when he has begun earning, He should pay attention to truth and virtue of life. He should ask the wise if he has any doubts, and he should try to follow in their footsteps if he has any uncertainties regarding conduct.[11]

In the period of the AGS, education was given free. King and rich men contributed freely to the establishment of the asramas where the children received their education. When students left the schools and began earning their livelihood, they were expected, but in no way compelled, to contribute their share, to the extent to which they were capable, for the maintenance of such asramas. A disciplined life and devotion to study were all that the teacher expected as the true return for the education they received. After all, the education system of the period of AGS period was benevolent and well organized.

BIBLIOGRAPHY

1. Aśvalāyana Gṛhyasūtram: Dr. Narendra Nath Sarma with Sanskrit commentary of Narayana, Englisih Translation, Introduction, M.P. Education Service, Govt. of College, Seoni, Madhya Pradesh.
2. Aśvalāyana Gṛhyasūtra with Narayana Nirnaya Sagar Press, edn (B.I. Series). 1894.

[8] Ibid, p. 218.
[9] Ibid
[10] Ibid
[11] Ibid

3. Chatterjee, S.K.: (Editor and Others), The Cultural Heritage of India, Vol. 1 (Institute of Culture), Ramkrisna Mission, Calcutta, Reprint, 1970.
4. Dr. C.P. Ramaswami: The Cultural Heritage of India, Vol. II, Itihasa, Dharma and Other Sūtras, Aiyur Published by Ramkrisna Misson, II Edt. 1962
5. RAM GOPAL., INDIA OF VEDIC KALPASŪTRAS, NATIONAL PUBLISHING HOUSE 06-DARYAGANJ. DELHI, 1959.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 106-112
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बिहार में कृषि अनुदान का कृषकों की स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन: भोजपुर जिला के विशेष संदर्भ में

Dr. Sarvjeet Kumar Singh
P. G. Department of Economics
Veer Kunwar Singh University, Ara

सारांश

इस लेख में सर्वप्रथम परिचय के अंतर्गत बिहार राज्य में कृषि अनुदान का कृषकों की स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव से जुड़े महत्वपूर्ण तथ्यों यथा अर्थ, विशेषता और मिलने वाले वस्तुओं के अंतर्गत उर्वरक, बीज और तकनीक इत्यादि का उल्लेख किया गया हैं। इस अध्ययन में कृषि उत्पादन और कृषकों की आय बढ़ाने के लिए कृषकों को मिलने वाले कृषि अनुदान से संबंधित विभिन्न प्रकार के द्वितीयक स्रोतों के मदद से साहित्य समीक्षा प्रस्तुत किया गया हैं। इस लेख में शोध विषय से संबंधित महत्व, शोध के उद्देश और परिकल्पनाओं का वर्णात्मक रूप में वर्णन किया गया हैं। इस लेख में शोध विषय से जुड़े प्रश्नावली से प्राप्त प्राथमिक आँकड़ो के विश्लेषण को आधार बनाकर शोध संबंधित परिकल्पनाओं की जाँच भी की गई हैं। इसके पश्चात् निष्कर्ष और सुझाव भी प्रस्तुत किया गया हैं।

विशिष्ट शब्द: - कृषि अनुदान, कृषि उत्पादन, उर्वरक, बीज और कृषक

परिचय

भारत देश के भांति ही बिहार भी शुरू से ही एक कृषि प्रधान राज्य रहा हैं। यहाँ निवास करने वाली एक बड़ी जनसंख्या अपने परिवार के आजीविका के लिए कृषि एवं कृषि संबंधित अन्य क्षेत्रों पर आश्रित रहती हैं। देश में प्राकृतिक आपदाओं यथा बाढ़ और सुखा से प्रभावित रहने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र बिहार राज्य हैं। कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 94.16 लाख हेक्टेयर में 71.1 प्रतिशत लाख हेक्टेयर बाढ़ प्रभावित क्षेत्र हैं। इन प्राकृतिक आपदाओं से कृषकों के कृषि उत्पादित फसलों के नुकसान की भरपाई हेतु राज्य सरकार ने सर्वप्रथम 5 मई 2000 से कृषि क्षेत्र में कृषि फसल बीमा योजना का शुभारंभ किया। भारत सरकार द्वारा कृषक और कृषकों के लिए कई योजनाएं चलाई जाती है परंतु वे सभी योजनाएं बिहार राज्य में लागू नहीं हैं। इस कारण राज्य सरकार ने वर्ष 2008 में एक नई बहु-वैकल्पिक योजना की शुरुआत की, जिसे

कृषि रोड मैप के नाम से भी जाना जाता हैं। इस योजना के तहत कृषि क्षेत्र में कार्यरत कृषकों को कृषि आधारित वस्तुओं को क्रय करने के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कृषि अनुदान देने का प्रावधान किया गया। इस मैप में कृषकों को उर्वरक, बीज, आधुनिक यंत्र पर नगद के रूप में और कीमतों में छूट देकर कृषि अनुदान मिलना प्रारंभ हुआ।

किसी भी देश व राज्य में सरकार या अन्य संस्थाओं के द्वारा कृषकों को कृषि आधारित वस्तुओं या सेवाओं पर नगद भुगतान या कर कटौती या फिर कीमतों में छूट के रूप में अनुदान का लाभ प्राप्त होता है, तो इस प्रकार के अनुदान को कृषि अनुदान कहते हैं। कृषि अनुदान के अंतर्गत कृषकों को मुख्य रूप से रासायनिक उर्वरकों में यूरिया और डाई, कीटनाशक दवाएं, अधिक उपज देने वाले उच्च किस्म के बीज, सिंचाई के लिए बिजली और डीजल, आधुनिक कृषि यंत्र इत्यादि को क्रय करने हेतु कृषि अनुदान मिलता हैं। इसके साथ ही कृषकों के कृषि में ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस योजना के तहत कृषि ब्याज अनुदान भी मिलता हैं।

कृषि अनुदान मुख्य रूप से छोटे या सीमांत जोत के निधन कृषकों के जीवन स्तर को सुधारने, कृषि क्षेत्र में इनके जीडीपी की हिस्सेदारी को बढ़ाने के साथ ही कृषि क्षेत्र के विकास करने और कृषि क्षेत्र में कृषकों के आय को बढ़ाने का कार्य करती हैं।

साहित्य समीक्षा

बिहार के भोजपुर जिले में कृषि अनुदान का कृषकों की स्थिति पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभाव का समीक्षात्मक अध्ययन निम्नलिखित है: -

सिंह, ए., और यादव. आर, (2020) ने अपने अध्ययन "इंपैक्ट ऑफ़ एग्रीकल्चरल सब्सिडीज ऑन फार्मर्स' इनकम इन भोजपुर डिस्ट्रिक्ट, बिहार" में बताया है कि बिहार के भोजपुर जिले में कृषिगत संसाधनों पर मिल रहे अनुदान से जिले के कृषकों की आय में वृद्धि होने के साथ ही कृषि की उत्पादन क्षमता में भी सुधार हो रहा हैं।

शर्मा, के. और वर्मा, पी. (2019) ने अपने लेख "एनहांसिंग एग्रीकल्चरल प्रोडक्टिविटी थ्रू सब्सिडीज: ए केस स्टडी ऑफ़ भोजपुर डिस्ट्रिक्ट, बिहार" में बताया है कि बिहार के भोजपुर जिले में विभिन्न वस्तुओं पर मिल रहे कृषि अनुदान से कृषि की उत्पादन क्षमता में सुधार हुआ हैं। यहाँ के कृषक को कृषिगत संसाधनों पर कृषि अनुदान मिलने से कृषि में उच्च कोटि के बीज, जैविक व रासायनिक उर्वरक और कृषि आधुनिक यंत्र के उपयोग में वृद्धि हुई हैं। इसी कारण इस क्षेत्र में फसलों के उत्पादन में वृद्धि दर्ज की गई हैं।

गुप्ता, एन., एंड सिंह, एम. (2021) ने अपने लेख "रोल ऑफ एग्रीकल्चरल सब्सिडीज इन प्रोमोटिंग टेक्नोलॉजिकल इन्नोवेशंस अमोंग फार्मर्स इन भोजपुर, बिहार" में पाया कि बिहार के भोजपुर जिले में कृषि अनुदान के कारण फसलों की जोताई, बुवाई और कटाई में कृषक नई आधुनिक तकनीक को अपनाने के लिए प्रेरित हुआ हैं। कृषकों द्वारा कृषि क्षेत्र में नई तकनीक को अपनाने के कारण श्रम और समय की बचत हुई है, इसके साथ ही कृषि की उत्पादकता क्षमता भी बढ़ी हैं।

पांडे, आर., एंड झा, एस. (2020) ने अपने लेख "रिड्यूसिंग फार्मर्स' डेप्ट बर्डन थ्रू एग्रीकल्चरल सब्सिडीज: अ स्टडी इन भोजपुर डिस्ट्रिक्ट, बिहार" के अध्ययन में पाया गया कि बिहार के भोजपुर जिले में कृषि ब्याज अनुदान ने कृषकों को कृषि हेतु मिलने वाले ऋण के भार को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। जिले में कृषि अनुदान मिलने से कृषिगत सामग्री की कीमत में कमी आ रही है, जिससे कृषक अधिक और महंगे ऋण देने वाले सूदखोरों से स्वयं को बचाने में कामयाब हो पा रहे है।

मिश्रा, ए., एंड पटेल, एच. (2021) ने अपने अध्ययन "इफैक्टिव यूटिलाइजेशन ऑफ़ वाटर रिसोर्सेज थ्रू एग्रीकल्चरल सब्सिडीज इन भोजपुर डिस्ट्रिक्ट, बिहार" में पाया कि बिहार के भोजपुर जिले में सिंचाई के क्षेत्र में मिलने वाले कृषि अनुदान ने कृषकों के जल संसाधनों के प्रभावी उपयोग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। जिले में कृषि अनुदान के तहत फसलों की सिंचाई करने के लिए नई तकनीक और उपकरणों को क्रय करने हेतु कीमतों पर छूट प्रदान की जाती है, जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि होती हैं।

शोध का महत्व

- मौसमी फसलों के उत्पादन में वृद्धि।
- उत्पादन बढ़ाने हेतु फसलों की कटाई और बुवाई के साथ ही खेतों की जुताई करने के लिए नई आधुनिक यंत्र के प्रयोग में वृद्धि।
- कृषकों की आय में वृद्धि।
- कृषकों के रहन-सहन में परिवर्तन।

शोध का उद्देश्य

- कृषि अनुदान का वास्तविक अध्ययन और विश्लेषण।
- कृषि अनुदान से उत्पादकता पर पड़े प्रभाव का पता लगाना।
- उत्पादकता वृद्धि हेतु यांत्रिक शक्ति के उपयोग का पता लगाना।
- यह पता लगाना की कृषि अनुदान से कृषकों के समय और श्रम की बचत हो रही हैं।

शोध की परिकल्पना

1. **वैकल्पिक परिकल्पना (H_1): -** वे कृषक जिन्हें कृषि ऋण प्राप्त हो रहा है, वह उसे कृषि कार्य में लगाते हैं।

   शून्य परिकल्पना (H_0): - वे कृषक जिन्हें कृषि ऋण प्राप्त हो रहा है, वे इसे कृषि कार्यों में नहीं लगाते हैं।

2. **वैकल्पिक परिकल्पना (H_1): -** भोजपुर जिले में फसल क्षति होने पर स-समय मुआवजा राशि मिलती हैं।

   शून्य परिकल्पना (H_0): - भोजपुर जिले में फसल क्षति होने पर स-समय मुआवजा राशि नहीं मिलती हैं।

शोध की कार्यप्रणाली

प्रतिदर्श: - बिहार के भोजपुर जिले के चार प्रखंडों यथा जगदीशपुर, शाहपुर, उदवंतनगर और आरा में कृषि अनुदान प्राप्त करने वाले कुल 300 सूचकों का चयन यादृच्छिक प्रतिदर्श के रूप में किया गया हैं।

प्रतिदर्श का चयन: - इस सर्वेक्षण में बहु-स्तरीय प्रतिदर्श पद्धति का प्रयोग किया गया हैं।

प्रतिदर्श का डिजाइन: - भोजपुर जिले के कुल 14 प्रखंडों में से चार प्रखंडों का उचित प्रतिनिधित्व करते हुए यादृच्छिक प्रतिदर्श के रूप में कुल 300 सूचकों का चयन किया गया हैं। इन चयनित चार प्रखंडों में से प्रत्येक प्रखंड से 5 ग्राम पंचायत का चयन किया गया हैं। प्रत्येक ग्राम पंचायत से 3 गाँव और प्रत्येक गाँव से 5 सूचकों का यादृच्छिक प्रतिदर्श के रूप में चयन किया गया हैं। इस प्रकार गणितीय रूप में, 5 सूचक x 3 गाँव x 5 ग्राम पंचायत x 4 प्रखंड = कुल 300 सूचक का चयन किया गया है।

चर्चा विश्लेषण

बिहार राज्य में कृषि उत्पादन व उत्पादकता को बढ़ाने के लिए कृषकों को कृषि आधारित वस्तुओं की कीमतों पर छूट के रूप में कृषि अनुदान देने का प्रावधान है परंतु राज्य के भोजपुर जिले में कुल 300 सूचकों में अधिकतम लगभग 40 प्रतिशत कृषकों के अनुसार, कृषिगत वस्तुओं पर मिलने वाले कृषि अनुदान का असमय वितरण होने के समस्या के कारण कृषि उत्पादन व उत्पादकता में किसी भी प्रकार की बढ़ोतरी दर्ज नहीं की गई।

बिहार राज्य में कृषकों की आय में वृद्धि करने के लिए कृषि अनुदान के तहत सस्ते दर पर बीज, उर्वरक और कृषि मशीनरी यंत्र के साथ ही आर्थिक रूप से कमजोर कृषक के लिए कृषि ब्याज अनुदान के तहत ऋण भी मुहैया कराई जाती है परंतु भोजपुर जिले में कुल 300 सूचकों में अधिकतम 43 प्रतिशत कृषकों के अनुसार, उर्वरक या बीज के लिए अधिक मूल्य की मांग और नगद राशि का समय पर न मिलने की समस्या के कारण कृषकों की आय में कोई सुधार नहीं हुआ हैं।

बिहार राज्य के अंतर्गत कृषि सुधार के लिए कृषि में नए आधुनिक कृषि यंत्रों के उपयोग के लिए कृषकों को आवश्यकता के अनुसार कृषि यंत्र सस्ते कीमत पर कृषि अनुदान के तहत उपलब्ध कराए जाते हैं। भोजपुर जिले में कुल 300 सूचकों में अधिकतम 51 प्रतिशत कृषकों के अनुसार, कृषि में कृषकों के द्वारा नई आधुनिक यंत्रों का प्रयोग खेतों की जुताई से लेकर बुवाई और कटाई में उपयोग में लाया जा रहा है, जिससे कृषि क्षेत्र में काफी सुधार होने के साथ ही कृषकों के समय और श्रम की बचत भी हो रही हैं।

मुख्य खोज

तालिका 1

सूचकों के द्वारा कृषि ऋण के उपयोग का वर्गीकरण

कृषि ऋण का उपयोग	सूचकों की संख्या	सूचकों की संख्या (प्रतिशत में)
उत्पादन पर	193	64.33

दैनिक खर्च पर	24	08
बच्चों की शिक्षा पर	42	14
शादी समारोह पर	26	8.67
स्वास्थ्य पर	15	05

स्रोत: - प्राथमिक आँकड़े

इस तालिका में यादृच्छिक रूप से चयनित 300 सूचकों को कृषि ऋण से प्राप्त राशि के उपयोग को दिखाया गया हैं। इसमें कृषि ऋण का उपयोग, केवल कृषि उत्पादन पर करने वाले सूचकों की संख्या अधिकतम लगभग 64 प्रतिशत है जबकि कृषि ऋण का उपयोग कृषि के अलावे अन्य कार्यों यथा दैनिक खर्च, बच्चों की शिक्षा पर खर्च, शादी समारोह और स्वास्थ्य पर खर्च करने वाले सूचकों की संख्या न्यूनतम लगभग 36 प्रतिशत हैं।

तालिका 2

सूचकों की फसल क्षति मुआवजा राशि का वर्गीकरण

फसल क्षति मुआवजा राशि	**सूचकों की संख्या**	**सूचकों की संख्या (प्रतिशत में)**
समय पर प्राप्त	73	24.33
असमय प्राप्त	237	75.67

स्रोत: - प्राथमिक आँकड़े

इस तालिका में यादृच्छिक रूप से चयनित 300 सूचकों को फसल क्षति पर मिलने वाले मुआवजा राशि को दर्शाया गया हैं। इसमें फसलों के क्षति होने पर मुआवजा राशि समय पर प्राप्त नहीं करने वाले सूचकों की संख्या अधिकतम लगभग 76 प्रतिशत है जबकि फसलों के क्षति होने पर मुआवजा राशि सही समय पर प्राप्त करने वाले सूचकों की संख्या न्यूनतम लगभग 24 प्रतिशत हैं।

परिणाम

प्रथम शोध परिकल्पना में कृषि ऋण स्वतंत्र चर और कृषक आश्रित चर हैं। तालिका 1 में प्राथमिक आंकड़ों से प्राप्त किए गए अध्ययनों में चयनित 300 लाभार्थी सूचकों में अधिकतम लगभग 64 प्रतिशत सूचकों द्वारा कृषि ऋण का उपयोग मुख्य रूप से कृषि कार्यों जैसे- फसलों की कटाई, बुवाई, पटवन और उत्पादन बढ़ाने इत्यादि के अन्य क्रियाओं पर व्यय किया जाता हैं। इस आधार पर **वैकल्पिक परिकल्पना (H_1)** सत्य सिद्ध होती हैं।

द्वितीयक शोध परिकल्पना में फसल क्षति स्वतंत्र चर और मुआवजा आश्रित चर हैं। तालिका 2 में प्राथमिक आंकड़ों से प्राप्त अध्ययनों में चयनित 300 लाभार्थी सूचकों में अधिकतम लगभग 76 प्रतिशत सूचकों के अनुसार जिले में प्राकृतिक आपदाओं यथा बाढ़ और सुखा से नष्ट हुई फसलों के लिए सरकार द्वारा कभी भी निश्चित समय पर फसल क्षति की मुआवजा राशि नहीं मिलती हैं। इन सूचकों के अनुसार मुआवजा राशि आने में 5 से 12 महीने लग जाते हैं। इस आधार पर **शून्य परिकल्पना (H_0)** सत्य सिद्ध होती हैं।

निष्कर्ष

कृषि क्षेत्र में कृषि अनुदान मिलने के बावजूद भी कृषि उत्पादन व उत्पादकता और कृषकों की आय स्थिर ही रही हैं। कृषकों को कृषि में कृषि अनुदान मिलने से आधुनिक कृषि यंत्रों के उपयोग में वृद्धि हुई है, जिससे कृषि क्षेत्र में काफी सुधार होने लगा हैं। कृषि में आधुनिक कृषि यंत्रों के उपयोग के वजह से कृषकों के समय और श्रम की बचत भी हो रही हैं। इस शोध की दोनों परिकल्पनाओं को स्वीकार कर लिया गया हैं। प्रथम परिकल्पना में वैकल्पिक परिकल्पना को स्वीकार किया गया हैं, अर्थात् ऐसे कृषक जिन्हें कृषि हेतु कृषि ऋण मिलता है, वह उस ऋण को कृषि कार्य में लगाते हैं। द्वितीय परिकल्पना में शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया गया हैं, अर्थात् कृषि उत्पादित फसलों के क्षति होने पर कृषकों को स-समय मुआवजा राशि नहीं मिलती हैं।

सुझाव

इस शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के उपरांत निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं: -

- कृषि अनुदान से संबंधित योजनाओं का लाभ केवल लघु एवं सीमांत कृषक को ही प्रदान की जानी चाहिए।
- कृषकों के कृषि उत्पादित फसलों के क्षति होने पर एक से तीन महीने के भीतर में मुआवजा राशि प्राप्त होनी चाहिए।
- कृषि अनुदान के तहत मिलने वाले उच्च कोटि के बीज की कीमतों पर छूट की राशि की मात्रा अधिक होनी चाहिए।
- कृषि अनुदान के तहत मिलने वाले बीज, उर्वरक और यंत्र की उपलब्धता फसलों के जोताई से पहले होनी चाहिए।
- कृषि अनुदान कार्यक्रम को स्थाई रूप से जरूरतमंद क्षेत्र में लागू करने के साथ ही वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा को बढ़ाने पर विचार करना चाहिए।

संदर्भ

- आर्थिक सर्वेक्षण. (2016-2017). बिहार सरकार.
- कृषि रोड मैप. 2012-2017. (एन. डी.). बिहार सरकार पृष्ठ संख्या. 6.
- आर्थिक सर्वेक्षण. (2008-2009). बिहार सरकार.
- **शर्मा, के., एंड वर्मा, पी.** *(2019). एनहांसिंग एग्रीकल्चरल प्रोडक्टिविटी थ्रू सब्सिडीज: ए केस स्टडी ऑफ़ भोजपुर डिस्ट्रिक्ट, बिहार. एग्रीकल्चरल प्रोडक्टिविटी जर्नल, 44(3), 210-225.*
- **पांडे, आर., एंड झा, एस.** (2020). रिड्यूसिंग फार्मर्स' डेप्ट बर्डन थ्रू एग्रीकल्चरल सब्सिडीज: अ स्टडी इन भोजपुर डिस्ट्रिक्ट, बिहार. *रूरल फाइनेंस जर्नल, 39(2), 400-415.*

- **सिंह, अ., एंड यादव, आर.** (2020). इंपैक्ट ऑफ़ एग्रीकल्चरल सब्सिडीज ऑन फार्मर्स' इनकम इन भोजपुर डिस्ट्रिक्ट, बिहार. *जरनल ऑफ रुरल इकोनॉमिक्स, 58(4), 321-326.*
- **गुप्ता, एन., एंड सिंह, एम.** (2021). रोल ऑफ एग्रीकल्चरल सब्सिडीज इन प्रोमोटिंग टेक्नोलॉजिकल इन्नोवेशंस अमोंग फार्मर्स इन भोजपुर, बिहार. *टेक्नोलॉजी एंड एग्रीकल्चर रिव्यू, 53(1), 300-315.*
- **मिश्रा, ए., एंड पटेल, एच.** (2021). इफैक्टिव यूटिलाइजेशन ऑफ़ वाटर रिसोर्सेज थ्रू एग्रीकल्चरल सब्सिडीज इन भोजपुर डिस्ट्रिक्ट, बिहार. *वॉटर मैनेजमेंट रिव्यू, 65(2), 180-195.*
- **सिंह, सर्वजीत. कुमार.** (2023). बिहार में कृषि अनुदान का कृषकों की स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन: भोजपुर जिला के विशेष संदर्भ में. *शोध प्रबंध,* वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय आरा.

7277105868

myid.niit@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 113-116
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रवास में वृद्धावस्था : समकालीन हिंदी कहानी के संदर्भ में

सोणी पी. सी, शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय कलाडी, केरल।

वृद्धावस्था स्वाभाविक और प्राकृतिक घटना है, हर एक व्यक्ति जीवन का अध्याय है जिससे हर किसी को गुजरना पड़ता है और व्यक्ति अपने आप से, शारीरिक एवं मानसिक रूप से कमज़ोर पड़ जाती है। परिवार, समाज, और देश को वृद्धों का अभिन्न है । वृधावस्था के संदर्भ में मधु संधु ने लिखा - "जीवन संध्या में व्यक्ति के अस्तित्व का संघर्ष कहीं तीव्र हो जाता है। यह वह अवस्था है, जहाँ व्यक्ति शारीरिक, आर्थिक रूप में परावलंबी हो जाता है। जिस परिवार को उसने ताउम्र संरक्षण दिया था, उसी से संरक्षण पाने की चाह रखने लगता है।"[1] वृद्ध स्त्री को प्रवास में बहुत कुछ सहना पड़ता है। सभी वृद्धों की स्थिति एक जैसी नहीं बल्कि अलग-अलग होती है। उनकी जीवन की विविध समस्याओं को प्रवासी साहित्यकार कहानी के माध्यम से प्रस्तुत करते है।

वृद्ध जनों के लिए भाषा एक बहुत समस्या है। वृद्धों के लिए विदेशी भाषा में अपनी बात कहना मुश्किल हो जाता है। बुजुर्ग अपने पोतों के देखभाल के लिए विदेश ले जाए जाते है, वहाँ उन्हें भाषिक समस्याएं होती है। विदेश में पले-बड़े भारतीय बच्चों को विदेशी भाषा के अलावा कुछ नहीं आता और वे भारतीय भाषा सीखना भी नहीं चाहते। सुषम बेदी की कहानी 'झाड़' में अन्विता अपने बेटे समीर से अपने नानी मिसेज सक्सेना से हिंदी में बात करने के लिए, हिंदी सीखने को कहती हैं, तब वह मना कर देता है:-

"अन्विता ने फिर से कहा - "नानी से हिंदी सीख ले।"
वह पलटकर बोला - " नो ! आई डोंट वांट टू लर्न हिंदी।"
"तुझे मालूम है हिंदी हमारी नेशनल लैंग्वेज है?"
"नॉट माइन। आई वाज़ बोर्न हेयर।"[2]

इससे स्पष्ट समझ आता है कि पशिचम देश में जन्मे बच्चे के लिए भारत कभी उनका अपना नहीं होता। उनके लिए जहाँ वे जन्म लेते है वह उनका जन्मदेश है और वहाँ की भाषा उनकी मातृभाषा होती है। अपने भारतीय नाम के बदले विदेशी स्टाइल से नाम सुनना चाहता है 'झाड़' कहानी का पात्र समीर। कहानी के एक संदर्भ से समझ में आता है विदेशी संस्कृति किस तरह से एक बच्चे को प्रभावित करती है। इस प्रकार है जब मिसेज़ सक्सेना

अपने पोते समीर को समीर नाम से पुकारा तो उसी क्षण नानी को न मानकर उसने जवाब दिया - "प्लीज कॉल मी सैम। माई नेम इज सैम।"[3]

पोते के इस तरह का व्यवहार से पीड़ित, दुखित नानी मिसेज़ सक्सेना की कहानी है 'झाड़'। आजकल के जमाने में वृद्धों की कुछ अहमियत नहीं। उन्हें घर के झाड़ की तरह सड़क या कहीं अनजान जगह पर उपेक्षित करते है। वृद्ध अपने इस बुढ़ापे में इस लिए विदेश जाते है कि वे इस अंतिम अवस्था के समय अपनों के साथ खासकर अपने पोतों के साथ रहना चाहता है। इस भूमंडलीकृत समय में उनके सारी उम्मीदें टूट जाते है। बच्चों को इंसानियत का अहसास नहीं है। उनके लिए केवल मशीनी चीज़ सबसे जरूरी है।

सुषम बेदी की 'नाते' कहानी में इस तरह बेबीसिटर का पैसा बचाने के लिए बेटे - बहु ने बच्चों से उन्हें विदेश बुलवा लिया। क्योंकि उन्हें पता है वृद्ध माँ की सबसे बड़ी कमजोरी अपना परिवार है, खासकर पोता - पोती। यह जानते हुए प्रवासी भारतीय वृद्ध माँ-बाप को विदेश बुलाते है। कहानी में आधुनिक बहु के स्वार्थ चिंतन को सुषम बेदी ने माला के माध्यम से सामने लाते हुए कहते है - "माला ने अर्जुन और अंजली के नन्हें - नन्हें हाथों से दादी को आने के अनुरोध की अंग्रेजी में आड़ी-तिरछी पंक्तियाँ लिखवायी थीं। फिर मम्मी रुक नहीं सकीं, जाने की ज़िद पकड़ ली।"[4]

नए - नए मशीनों के आगमन से मनुष्य का कायिक क्षमता कम हो गयी, वे आलसी बनके सब काम मशीनों की सहायता से कर लेते है। इस लिए मानव यांत्रिक हो गये। मनुष्य बढती आवश्यकता के कारण से छोटे-छोटे जरूरतों के लिए भी मशीन का सहारा लेते है। विदेश में ज्यादा मशीनीकरण है , तो प्रवासी भारतीय वहाँ जाकर उन लोगों की तरह मशीनों का अधिक उपयोग करते हैं। उनके अंदर के जो भारतीय प्रभाव कम होकर विदेशी जैसा सोचने लगते है। आजकल के मानवों को मशीन का आदत पड़ गयी है। इसके बिना उनका कुछ काम भी नहीं चल रहा है। लेकिन वृद्ध भारतियों को मशीनों का उपयोग सही ढंग से नहीं आता। इसलिए उन लोगों को विदेश में कठिनाइयाँ हो जाती है। सुषम बेदी की कहानी 'नाते' में माँ द्वारा विदेश में मशीनों का उपयोग ठीक से न करने के कारण बहु माला अपने सास से कटु व्यवहार किया। विदेश में बहुत कठिन समस्याओं से झुझने पर भी माँ भारत वापस आना नहीं चाहती । आज मानवीयता की कोई जगह नहीं। कहानी में मानव के प्रति हृदयहीन होता चेहरा सुषम बेदी मालती के रूप में दर्शाती है - "माई गॉड.....! यह किसने कर दिया? मैं तो कभी हिन्दुस्तानी कपड़े पहनती ही नहीं कौन जाने कब किसका रंग निकल जाये।"[5]और माला ने अपनी माँ की पेटीकोट किसी घिनौने मरे हुए जानवर की तरह उठकर मम्मी से कहा - "आपने मुझसे तो पूछ लिया होता कि क्या मशीन में जाता है, क्या नहीं ! अब सारे नये-नये बढ़िया कपड़ों का सत्यनाश हो गया।"[6]

वृद्ध माँ-बाप अपने बच्चों का भला चाहते हैं , चाहे वे उन्हें भला-बुरा कितना कुछ भी बोलते। वृद्ध माँ अपना दर्द को बच्चों के सामने कभी नहीं दिखाती है। क्योंकि वह अपनों के साथ इस वृद्धावस्था बिताना चाहती। इसलिए वह अपने बेटे-बहु के गलती को नजरअंदाज करती है। कहानी में - "रहने दो, वहाँ कौन बैठा है मेरा ! यहाँ घर के धंधों और बच्चों में फिर

भी मन लगा रहता है। फिर कुछ दिन रंजना और राकेश के यहाँ बिताऊंगी । ऐसी छोटी-मोटी बात भला किस घर में नहीं होती? माला तो भली है। कभी-कभार, स्वाभाव ज़रा तेज़ है न, सो बिना सोचे-समझे मुंह से निकाला देती है। मन की बुरी नहीं। आखिर उसका घर है। उसकी मर्ज़ी के मुताबिक बात न हो तो बुरा लगता ही है। वर्ना हमारी इज्जत-खातिर में कोई कमी छोड़ी है क्या।"[7]

वृद्धों को विदेश में अकेलापन होता रहता है। यह अकेलापन अपनों के साथ रहकर भी उन्हें महसूस हो जाता है। व्यक्ति जीवन के अनमोल अवस्था है वृद्धावस्था। इस अवस्था में बूढ़े माँ-बाप को अपने बच्चों की जरूरत होते है। आज भूमंडलीकरण में बेटा अपनी माँ को भी एक वस्तु के रूप में उपयोग करते है । इस संदर्भ में भीष्म सहनी का 'चीफ की दावत' कहानी जिक्र करना चाहती हूँ। बच्चे की इस व्यवहार से सबसे ज्यादा तकलीफ माँ-बाप को होता है। लेकिन कभी बच्चे उनकी यह कठिनाई को नहीं समझते है। विदेश में जानबूझकर छोड़ गयी वृद्ध माँ को बहुत कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ता है। सबसे पहले भाषागत समस्या । बुढ़ापे में सभी लोग एक जैसा कभी नहीं होता। कुछ लोग जल्दी विदेशी भाषा सीख जाते है और कुछ लोग हमेशा अपने मातृभाषा से बात करना चाहते है। सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'कमरा नम्बर 103' में इसतरह विदेश अस्पताल में अकेली गुज़रनेवाले मिसेज़ वर्मा की जिंदगी की कहानी है। कहानी कहती है "कई भारतीय और पाकिस्तानी अपने माँ-बाप को यहाँ बुला लेते है पर हेल्थ इंशोरेंस नहीं लेते। सब अच्छा कमाते हैं पर दाँतों से पैसा बचाते है। माँ-बाप में से अगर कोई बीमार पड़ जाता है तो उन्हें सिटी अस्पताल में बाहर ही छोड़ जाते है। दवा दारू के बिल उनके नाम ना पड़ जाएँ।"[8] प्रवासी भारतीय अपने पैसे बचाने की चक्कर में विदेश में वृद्ध माँ को इसतरह छोड देते है। इनके लिए वृद्धाश्रम, अस्पताल अपने बोझिल चीज़ उतारने का जगह है। क्योंकि वहां छोड़े तो पैसा देने का जरूरत भी नहीं।

जब प्रवासी वृद्ध माँ-बाप बीमार हो जाता है तो तब वह अपने देश वापस जाना चाहते हैं। लेकिन 'कमरा नंबर 103' कहानी के मिसेज़ वर्मा अस्पताल से चाहकर भी अपने देश भारत वापस जा नहीं सकती। वृद्धों को कभी विदेश में अपनापन महसूस नहीं होता, हमेशा पराया ही लगता है। कहानी में लेखिका इस प्रकार लिखती है - "साउथ एशियन्स अपने बुजुर्गों को बुढ़ापे में अपने देश क्यों नहीं भेज देते....... यह देश उन्हें अपना नहीं लग सकता।"[9]
वृद्धावस्था में वृद्ध बच्चे जैसा है। उनकी देखभाल के लिए कोई तो साथ में चाहिए। इसलिए अधिकतर माँ-बाप यह सोचकर विदेश चले जाते है। रोग छोटा हो या बड़ा सबसे पहले मन का शांति के लिए मनपसन्द माहौल, साथियां चाहिए अगर नहीं हो तो किसी भी दवाई का असर शरीर नहीं होता है। इसका सशक्त उदाहरण 'कमरा नंबर 103' कहानी में सुधा जी प्रस्तुत किया है " पता नहीं ये ऐसे कितने दिन जिंदा रह पाती है। कमरा नंबर 107 वाला रॉबर्ट तो जल्दी चला गया।"[10] रॉबर्ट की टेस्ट में कोमा था, लेकिन मिसेज़ वर्मा के टेस्ट में कोमा नहीं दिखा रहा है। मिसेज़ वर्मा का शारीरिक लक्षण अर्ध कोमा बता रहा है। क्योंकि उनका शारीर विदेश में और मन अपना जन्मदेश भारत में है। इस की वजह से वह ठीक नही होता है।

भूमंडलीकरण के कारण व्यक्ति मन का मानवीय मूल्य आजकल कम हो रहा है। आजकल लोग पैसे के पीछे भागते है। इसलिए उनके पास अपनों को देने या बिताने के लिए समय भी नहीं। मानवीय मूल्य न होने के कारण व्यक्ति अपने माँ को रोगावस्था में छोड़ते है, पैसा बचाने के लिए घर का पूरा काम करवाते है, और उनको अनदेखा करना आदि इस तरह का अमानवीय व्यवहार करते है। 'कमरा नंबर 103' में इसका स्पष्ट चित्रण करते हुए लेखिका कहते है - "माँ मेरी नौकरी नहीं है। घर की सफ़ाई करनेवाली हटा डी है, कुछ खर्चा बन जायेगा। आप घर में खाली बैंठ तंग आ जाते है, घर के काम-काज क्यों नहीं संभाल लेते।"[11] अमेरिका जैसे बड़े महानगरीय देशों में रहने के लिए, दैनिक आवश्यकता और इसके अलावा डे केयर, बेबी सिटर का भी अलग पैसा है। इस लिए प्रवासी भारतीय कम से कम डे केयर, बेबी सिटर, घर का नौकर आदि के पैसा बचाने को अपने वृद्ध माँ को विदेश बुलाते है। इस कहानी विदेश में जी रहे प्रवासी भारतीयों का स्वार्थी मनोभाव का सशक्त उदाहरण है।

जब भारतीय स्त्री अपने देश में अकेले रहते है तब उन्हें इतना अकेलापन महसूस नहीं होता जितना अनजान देश या विदेश में अकेले हो जाने से होता है। भारत में और विदेशी अकेलापन में बहुत फर्क है। क्योंकि भारत का अकेलापन में आसपास अपने रिश्तेदार, पड़ोसी सब है, लेकिन विदेश में ऐसा कोई नहीं। विदेश में किसी को दूसरों के लिए बिताने का समय भी नहीं। इस प्रकार वृद्धों को होनेवाले मानसिक एवं शारीरिक संघर्ष को प्रवासी कहानी में कहानीकार व्यक्त करते है।

वृद्धों को इस इक्कीसवीं शती में भी ओल्ड - एज - होम जाना पड़ रहा है । वृद्धावस्था में विदेशी वातावरण में बीमारी, भाषा, भोजन,संस्कृति आदि से परेशान होकर जी रहे विविध प्रवासी वृद्ध स्त्रियों को प्रवासी साहित्य में देख सकते है। सुषम बेदी की 'नाते', 'झाड़' और सुधा ओम ढींगरा की 'कमरा नंबर 103' कहानी में अलग-अलग प्रवासी वृद्ध स्त्रियों को दिखाती है और इन स्त्रियों के जीवन की संवेदना को व्यक्त करती हैं।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. मधु संधु, 'हिंदी का भारतीय एवं प्रवासी महिला काथा लेखन', पृ. 118
2. सुषम बेदी, 'झाड़', चिड़िया और चील - कहानी संग्रह, पृ. 95
3. वही
4. सुषम बेदी, 'नाते', पृ. 31
5. सुषम बेदी, 'नाते', पृ. 33
6. वहीं, पृ. 33
7. सुषम बेदी, 'नाते', पृ. 33,34
8. वही
9. वही
10. सुधा ओम ढींगरा, 'कमरा नंबर 103', पृ.25
11. सुधा ओम ढींगरा,'कमरा नंबर 103', पृ. 30

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 117-120
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विष्णु नागर की कविता : भय का समाजशास्त्र

अनुपमा सामतं, शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय कलाडी, केरल।

मानव जीवन में भय एक नकारात्मक शब्द है। मनोविज्ञान कहता है भय मनोविकार है। मानसिक रूप से भय का उत्पन्न अकेलापन, अवसाद, अनिश्चयता के कारण होता है। हर व्यक्ति अपनी जीवन में वैयक्तिक हो या सामाजिक दोनों स्तर में ही डर का अनुभव किया है।गांधीजी के शब्दों में : "घृणा को हम शत्रु मानते है लेकिन हमारा सबसे बड़ा शत्रु भय ही है।"[1] गांधीजी ने डर को जीवन के आंतरिक शत्रु माना है। समय और परिस्थिति के अनुसार भय के कारण में भी बदलाव आता रहता है। इस संसार में जो कुछ भी है वह हमारा नहीं है, फिर भी हमारे हृदय में धन, परिवार, शारीर आदि को केंद्रकर भय बना रहता है। मन में आनेवाले कुछ खतरनाक और घातक घटनाओं के बारे में सोचकर हमें डर लगता है। बहिरागत और आंतरिक दोनों ही घटक भय के कारण है। भय वर्तमान या भविष्य के खतरे के अहसास हो सकता है। व्यवस्था, बाज़ार, धर्म के नाम पर भी लोगों में डर भर दिया जाता है। आचार्य प्रशांत कहता है : "व्यवस्था डंडा दिखाती है / तुम चल देते हो
समाज डंडा दिखाता है / तुम चल देते हो
टीवी मीडिया लालच दिखाते है / तुम चल देते हो
पढ़ते भी इन्हीं वजह से हो / कि डर है बेरोज़गारी का..
कोई और दुश्मन है ही नहीं तुम्हारा / तुमने खुद अपनी हालत कर रखी है
कि 'मेरा तो एक ही इंजन है, डर ! / मैं तो उसी से चलता हूँ'।"[2]
समाज, समाजिक व्यवस्था के साथ-साथ व्यक्ति स्वयं डर के मुख्य प्रकरण है।

समकालीन हिंदी कवियों में अपनी तरह के अलग कवि हैं विष्णु नागर जी। अपने समाज के हर स्पंदन को अनुभव कर, कविताओं के माध्यम से उसे सामने लाने का प्रयास किया है। उनके कविता में डर जैसे अनुभूति के अनेक पक्ष दृष्टिगोचर होती है। अपने समय के सामाजिक, लोकतांत्रिक, राजनीतिक हलचल से रुबारु उनकी कविता तमाम कलात्मक प्रलेप के बिना सामने आया है।

कहते है जिसप्रकार पक्षियों को आभास हो जाता है कि प्राकृतिक आपदा आनेवाली है, उसी प्रकार एक सृजनकर्मी अपने समाज की धडकनों को महसूसता है।

'ऐसे लोगों से ज्यादा मिलता हूँ' : इस कविता में डरने और डरनेवाले समाज के दो वर्ग के लोगों को चित्रण किया है। डर एक तरह मनुष्य संस्कृति का एक अंग बन गया हैं। मनुष्य दो क्षेमों में बाटा हुआ है। एक जो डरता है, दूसरा जो डरता है। डरने और डराने का कोई आयाम हो सकता है: जैसे पूंजी, राजनीतिक, ज्ञान, शक्ति, कुर्सी, अधिकार, बाज़ार आदि। डरने और डरनेवालों के योग सही समाज बनते है। लेकिन विडंबना यह है कि इन दोनों के बीच सहजता की स्थिति निरंतर जीवन से गायब होती जा रही है। हार डरनेवाला आज डर से मुक्त होने से स्थान पर डरनेवाला बनना चाहता है। कविता कहता है : “ऐसे लोगों से ज्यादा मिलता हूँ / जो मुझसे डरते हैं / या ऐसे लोगों से जिनसे डरता हूँ / बाक़ी से मिलकर भी नहीं मिलता / घुलकर भी नहीं घुलता/ उनसे मिलते हुए भी सोचता रहता हूँ / इनसे डरना ठीक रहेगा / या इन्हें डरना?”[3] कहीं पर ये कविता सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की 'भेड़िया' कविता की याद दिलाता है।

विष्णु नागर जी की एक अन्य कविता है 'डरना'

कविता इसप्रकार :

" लोगों को कई बार पता नहीं होता / कि वे क्यों डर रहे है /
किससे डर रहे है/ लेकिन डरते रहते है
डरते डरते /डरना इतना सुविधाजनक लगने लगते है
कि इस तरह मर रहे है / इसका पता ही नहीं चलता। "[4]

आठ पंक्तियों की ये कविता की विस्तार इतनी है कि इसे वर्तमान समाज के किसी भी संदर्भ से जोड़कर पढ़ा जा सकता है। यहाँ डर मनुष्य के जीवन के अनिवार्य पहलु के रूप में दिख पड़ता है। किस बात से डर रहे है इसका पता न होना जीवन में की जानेवाली कंडीशनिंग से जुड़ा हुआ है। हम देखते है कि बचपन से वृद्ध अवस्ता तक व्यक्ति की कंडीशनिंग डर के माध्यम से की जाती है। इसका कोई कार्यकारक संबंध नहीं है। यहाँ ईश्वर, राजनीति, वर्णव्यवस्था, अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का समीकरण डर के माध्यम से मनुष्य को अनुकुलन कर देते है। डर का ये हथियार इतना प्रबल होता है कि व्यक्ति उस डर को जहाँ स्वाभाविक और अनिवार्य मानता है वही सुविधा के रूप में भी महसूस करने लगते है।

मनोविज्ञान कहता है मेढक को पानी में रखकर आप पानी को धीरे धीरे गरम कर तो खेलते पानी में भी आराम से रह जाते है।

बाज़ार के डर को व्यक्त करती कविता है 'बाज़ार'। बाजारवाद के समय में व्यक्ति के डरने का प्रमुख कारण ये है कि उसकी निजता और निजीपन कभी भी कोई भी छीन सकता है। अस्मिता के साथ अस्तित्व को भी छीन जाने का डर लोगों के भीतर गहरा व्याप्त हो रहा है। मनोविज्ञान इसे 'loss of freedom' या 'अस्तित्व, अस्मिता, व्यक्तिगत कुछ चीज़ खो जाने का डर कहता है। अपने किसी प्रिय व्यक्ति या वस्तु के खो जाने के सोच से ही इंसान भयग्रस्त हो जाता है। ब्रिटिश मनाशास्त्री रिचर्ड गार्नेट अपने ग्रन्थ 'साइकोलॉजी ऑफ़ फियर'में लिखते है : “शारीरिक भय स्नायुग अभिक्रिया है किन्तु मानसिक भय तब उत्पन्न होता है जब

व्यक्ति का किसी वस्तु से गहनतम तादम्य हो जाता है, ऐसे स्तिथि में वस्तु से उसकी निकटता उसका लगाव शान्ति और संतोषदायक होता है, क्योंकि तब वह उस व्यक्ति या वस्तु से भयभीत रहता है। जो उन वस्तुओं को उससे अलग कर सकते है। वे कहते है की जब मनोवैज्ञानिक रूप से संचित अनुभवों में कोई बाधा नहीं पड़ती, वे मनोवैज्ञानिक कष्ट को रोकते है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि व्यक्ति इन समारहों की अनुभवों की एक गठरी है और यह किसी गंभीर विक्षोभ पैदा करती है। इस तरह आदमी ज्ञात से भय पीड़ित रहता है। वह शारीरिक अथवा मानसिक रूप से संचित उन अनुभवों से डरता रहता है, जिन्हें उसने भय अथवा कष्ट से बचने केलिए एकत्रित किया है। इस प्रकार वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचते है कि यह ज्ञान कष्ट को दूर करने का साधन मात्र है, भय मुक्ति का उपाय नहीं।“[5]

व्यक्तिगत से व्यक्तिगत space में भी बाज़ार यानि लाभेच्छा प्रवेश कर सकती है। संवेदनशील व्यक्ति के भीतर छीन जाने की इस डर के व्याप्ति को हम ‘बाज़ार’ कविता में देख सकते है। कविता कहती है :

“ तुम मेरे हंसी खरीद लोगे / इस डर से मैं ने उदास दिखना शुरू कर दिया ।“[6]

फिर कविता कहती है :

“तुम मेरे बच्चों के भोलेपन का विज्ञापन करने लगोगे /इसलिए मैं ने माँ तक बनना शिकार नहीं किया।“[7]

कैब्रीज डिकशनरी के अनुसार - “An unpleasant emotion or thought that you have when you are frightened or worried by something dangerous, painful or bad that is happening or might happen”[8]

किसी विपत्ती, वेदना, चिंता या संकट सूचक संभावना से उत्पन्न अप्रिय विकार या मानसिक स्थिति भय कहलाता है।

कविता ‘डरता हूँ सिर्फ इस बात से’ विष्णु नागर जी कहता है :

“मैं डरता हूँ / तो सिर्फ इस बात से

कि दूसरों से तो बहुत डरता हूँ / ख़ुद से कभी क्यूँ नहीं डरता?”[9]

ये वर्तमान समाज के संवेदनशील व्यक्ति का भय है जो उसके जीवन की उस लय को नष्ट कर रहा है, जो जीवन जीने के योग्य बनाती है।

मनोविज्ञान के अनुसार rejection का डर जीवन में गहरा प्रभाव डालता है। इसी डर को व्यक्त करती कविता है ‘तोप’। व्यक्तिगत एवं व्यवसायी जीवन में यह डर निरंतर बना रहता है। rejection के डर से कई लोग आगे बढ़ नही पाते, मन के भाव व्यक्त नही कर पाते, आत्मविश्वास खो बैठते है। कविता इस प्रकार :

“ माना है कि आप बहुत बड़ी तोप है / बल्कि इस देश की सबसे बड़ी तोप है / लेकिन किसी ने बनाया है तभी तो आप तोप है / किसी ने बारूद भरी, तभी तो आप तोप है..... / और तोप है तो भूल गए क्या / कि मशीनगनों और बोमों के ज़माने में तोप है ! “[10]

पुराने समय के सान और शौकत हो सकता है और आत्मविश्वास भी हो सकता है। परन्तु अपने गौरव, क्षमता या आत्मविश्वास छीन जाने की आशंका से आज हर आदमी डरा हुआ है। आज विशेषकर भूमण्डलीकरण के समय में या भूमण्डलीकृत साईवर विश्व में विकास, औधोगिक और तकनीकी विकास की गति इतनी तीव्र है कि किसी के भी जीवन का ग्राफ समय के किसी भी बिन्दु पर बलखाकर नीचे गिर सकता है। यहाँ इतिहास, परंपरा, अनुभव, प्रतिबन्धता कुछ भी आप बचा नही सकते। लगातार तेज़ी से बदलते हुए हालत में इन सबका होना केवल उतना ही माइने रखता है जैसे मशीनगान और बमों के ज़माने में तोप का होना।

टूटते आत्मविश्वास और आहत गौरव के साथ नि:सहाय होने और स्वयं किसी आयोगहीन पूरा वस्तु के रूप में परिवर्तित हो जाने का ये जो डर है ये किसी एक व्यक्ति का डर नहीं है : विकसित साम्राज्यवादी देश के सामने तीसरी दुनिया का डर है। अर्थहीनता के बावजूद तोप होने के दावा संभवतः इसी डर को छुपाने का निरर्थक प्रयास है।

जिसके पास शक्ति है वही मालिक है, बात उस युग की जब ईश्वर भी रजा से डरकर भागते फिर रहा था। व्यंग्यात्मक सृजनकर्म की उपदेयता उनका व्यक्तित्व है। विष्णु नागर की कविता हमारे समय के व्यापक डर के प्रति हमें जागरूक करती सफल कविताएँ है।

संदर्भ सूची :

1. http://www.quora.com
2. आचार्य प्रशांत 'डर', PrashantAdvait Foundation,21 september 2021
3. विष्णु नागर, 'जीवन भी कविता हो सकता है', पृ.58
4. वही, पृ.55
5. R.W - http://opensiuc.lib.siu.edu
6. विष्णु नागर, 'जीवन भी कविता हो सकता है', पृ. 73
7. वही, पृ. 73
8. https://dictionary.cambridge.org
9. विष्णु नागर, 'जीवन भी कविता हो सकता है', पृ. 56
10. हिन्दवी - hindiwi.org

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 121-126
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦਾ ਨਾਵਲ 'ਆਹਣ': ਸਮਾਜਚਾਰੇ ਦੀਆਂ ਹਕੀਕਤਾਂ ਦਾ ਦਸਤਾਵੇਜ਼

ਐਸੋਸੀਏਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ ਅਤੇ ਮੁਖੀ, ਪੋਸਟ-ਗ੍ਰੈਜੂਏਟ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਭਾਗ,
ਡੀ. ਏ. ਵੀ. ਕਾਲਜ, ਅਬੋਹਰ-152116 (ਪੰਜਾਬ)

ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਮੂਲ ਵਿਸ਼ਾ ਮਨੁੱਖੀ ਵਰਤਾਰਾ ਹੈ। ਸਮੇਂ ਅਤੇ ਸਥਾਨ ਦੇ ਅੰਤਰ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖ ਵਰਤਾਰੇ ਅੰਦਰ ਜੋ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਆਉਂਦੀਆਂ ਹਨ, ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਰਚਨਾ ਵਸਤੂ ਦਾ ਆਧਾਰ ਬਣਦੀਆਂ ਹਨ। ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਅਤੇ ਸੰਸਥਾਈ ਵਰਤਾਰੇ ਇਸਦੇ ਸਰੂਪ ਨੂੰ ਧੀਮੀ ਜਾਂ ਤੇਜ਼ ਰਫਤਾਰ ਨਾਲ ਬਦਲਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਸੰਕ੍ਰਾਂਤੀ ਕਾਲ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਬਾਕੀ ਸਮਾਂ ਸਮਾਜ ਵਿਚਲਾ ਇਹ ਬਦਲਾਵ ਧੀਮੀ ਗਤੀ ਵਿਚ ਹੀ ਵਾਪਰਦਾ ਹੈ। ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਦਰਪੇਸ਼ ਮਸਲੇ ਅਤੇ ਵਰਤਾਰਿਆਂ ਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਨਾਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਗੱਲ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਇਸਦਾ ਸੰਬੰਧ ਵਿਅਕਤੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਜਾਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਸਮੂਹ ਦੇ ਬਦਲਾਵ ਨਾਲ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਸਮਾਜਿਕ ਸਮੂਹ ਦੇ ਸਮੁੱਚੇ ਮੈਂਬਰਾਂ ਦੇ ਵਰਤੋਂ ਵਿਵਹਾਰ, ਸੰਬੰਧਾਂ, ਵਿਚਾਰਾਂ ਅਤੇ ਸਵੀਕ੍ਰਿਤੀ ਵਿਚਲੇ ਬਦਲਾਵ ਨਾਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਹਨਾਂ ਕਾਰਨਾਂ ਕਰਕੇ ਹੀ ਕਿਸੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਮੂਹ ਦੇ ਮੈਂਬਰਾਂ ਦੀ ਸਮਾਜਿਕ ਸਥਿਤੀ ਮੁਕਾਬਲਤਨ ਚੰਗੀ ਜਾਂ ਮਾੜੀ ਦੇਖੀ ਜਾਂ ਸਮਝੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਮਿਸਾਲ ਵੱਜੋਂ ਭਾਰਤੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਬਾਹਰੀ ਦਿਖਦੇ ਵਰਤਾਰੇ ਦੇ ਅੰਦਰ, ਮੂਲ ਪਰੰਪਰਾਗਤ ਵਰਤਾਰੇ ਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਅੰਦਰ ਸਦੀਆਂ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਵੀ ਕੋਈ ਵੱਡੀ (ਜ਼ਾਹਰ ਤੌਰ ਤੇ ਦਿਖਦੀ) ਤਬਦੀਲੀ ਨਹੀਂ ਆਈ। ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਪਰੰਪਰਾਵਾਂ, ਸੱਭਿਆਚਾਰ, ਇਤਿਹਾਸ ਤੱਕ ਦਾ ਵੀ ਦਹਾਕਿਆਂ ਤੱਕ ਮੂਲ ਰੂਪ ਨਹੀਂ ਬਦਲਦਾ। ਦੋ-ਢਾਈ ਹਜ਼ਾਰ ਸਾਲਾਂ ਦਾ ਜਾਤੀਵਾਦ ਭਾਰਤੀ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਅੱਜ ਤੱਕ ਵੀ ਬਦਲਵੇਂ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਕਾਇਮ ਹੈ। ਜਾਗੀਰਦਾਰੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਅੱਜ ਵੀ ਦੇਖੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਆਜ਼ਾਦੀ ਤੋਂ ਸੱਠ ਸਾਲਾਂ ਬਾਅਦ ਵੀ ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਦਾ ਵਿਕਾਸ ਉਸ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਿਆ, ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪਿਛਲੀਆਂ ਕੁਝ ਸਦੀਆਂ ਵਿੱਚ ਯੂਰਪ ਦੇ ਸਮਾਜਾਂ ਵਿੱਚ ਦੇਖਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਮੇਂ ਤੇ ਸਥਾਨ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਮੂਲ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਆਈਆਂ ਮੂਲ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਨਾਲ ਤਾਂ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਪਰ ਸਿਰਫ ਕੁੱਝ ਵਕਤੀ ਤੌਰ ਤੇ ਹੋਈਆਂ ਸਾਧਾਰਨ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਨਾਲ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ। ਸਦੀਵੀਂ ਬਦਲਾਵ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਬਦਲਦੀਆਂ ਭੌਤਿਕ ਹਾਲਤਾਂ ਕਾਰਨ ਮਾਨਸਿਕ ਵਰਤਾਰੇ ਵਿੱਚ ਆਈ ਤਬਦੀਲੀ ਕਾਰਨ ਬਦਲੀ ਹੋਈ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਕਾਰਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਬਦਲੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਸਾਹਿਤਿਕ ਕਿਰਤ ਦੇ ਅੰਤਰੀਵ ਹਵਾਲਿਆਂ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਵੱਧ ਦਰੁਸਤ ਸਮਝਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।

ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੇ ਨਾਵਲਾਂ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸਕ ਕਾਲ ਵੀਹਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਤੀਜੇ ਦਹਾਕੇ ਤੋਂ ਨੌਵੇਂ ਦਹਾਕੇ ਤੱਕ ਫੈਲਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਹੁਣ ਤੱਕ ਦੇ ਉਸਦੇ ਸਭ ਤੋਂ ਆਖਰੀ ਨਾਵਲ **ਆਹਣ** (2009) ਦਾ ਇਤਿਹਾਸਕ ਕਾਲ ਉਨੀ ਸੌ ਤੀਹ-ਚਾਲੀ ਦੇ ਦਰਮਿਆਨ ਦਾ ਸਮਾਂ ਹੈ, ਜਦੋਂ ਕਿ **ਮੜ੍ਹੀ ਦਾ ਦੀਵਾ, ਅਣਹੋਏ, ਰੇਤੇ ਦੀ ਇੱਕ ਮੁੱਠੀ, ਅੱਧ ਚਾਨਣੀ ਰਾਤ, ਕੁਵੇਲਾ, ਆਥਣ-ਉੱਗਣ, ਅੰਨ੍ਹੇ ਘੋੜੇ ਦਾ ਦਾਨ** ਅਤੇ **ਪਰਸਾ** ਦਾ ਸਮਾਂ ਉਨੀ ਸੌ ਪੰਜਾਹ ਤੋਂ ਅੱਸੀ ਦੇ ਲਗਭੱਗ ਦਾ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਅਣਹੋਏ ਦਾ ਕੁੱਝ ਭਾਗ ਉਨੀ ਸੌ ਸੰਤਾਲੀ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਦਾ ਅਤੇ ਦੇਸ਼ਵੰਡ ਦਾ ਵੀ ਹੈ। ਦੇਸ਼ਵੰਡ ਦੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਇਸ ਨਾਵਲ ਵਿੱਚ ਵਿਸਥਾਰ ਨਹੀਂ ਲੈ ਸਕੇ। ਪਹੁ ਫੁਟਾਲੇ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਦਾ ਸਮਾਂ ਉਨੀ ਸੌ ਪੰਤਾਲੀ-ਛਿਆਲੀ ਦਾ ਹੈ। ਘਟਨਾਵਾਂ ਦੇ ਚਿਤਰਨ ਪੱਖੋਂ ਇਹ ਇਤਿਹਾਸਕ ਨਾਵਲ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਬੱਚਿਆਂ ਲਈ ਲਿਖਿਆ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਵਿਸਥਾਰ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਜਾਂਦਾ। ਇਹਨਾਂ ਸਾਰੇ ਨਾਵਲਾਂ ਦਾ ਵਾਪਰਨ ਸਥਾਨ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਮਾਲਵਾ ਖੇਤਰ ਹੈ, ਇਸ ਲਈ 'ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਅਕਸਰ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਮਾਲਵਾ ਪੱਟੀ ਦਾ ਗਲਪਕਾਰ ਸਮਝਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕੁਝ ਹਾਲਤਾਂ ਵਿੱਚ ਉਸਦੇ ਨਾਵਲਾਂ ਦੇ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਵੀ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹਨ, ਇਸ ਖੇਤਰ ਨਾਲ ਹੀ ਸਬੰਧਤ ਹਨ। ਇਸਦਾ ਸਿੱਟਾ ਕੁਝ ਵਿਦਵਾਨਾਂ ਨੇ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ......ਇਸਦਾ ਆਂਚਲਿਕ ਨਾਵਲਕਾਰ ਮੰਨਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਜੋ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਨਜ਼ਰ ਵਿੱਚ ਸਿਰਫ ਇੱਕ ਉਪ-ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਚਿਤਰਦਾ ਹੈ।"[1] ਪਰ ਇਹ ਦਰੁਸਤ ਧਾਰਨਾ ਨਹੀਂ।

ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਨੇ ਪੇਂਡੂ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਨੇੜਿਓਂ ਦੇਖਿਆ, ਪਛਾਣਿਆ ਅਤੇ ਉਸ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਅਧਾਰ ਬਣਾਇਆ ਹੈ। ਪਰ ਉਸਨੂੰ ਆਂਚਲਿਕ ਨਾਵਲਕਾਰ ਨਹੀਂ ਕਿਹਾ ਜਾਣਾ ਚਾਹੀਦਾ। ਕਿਉਂਕਿ ਪਿੰਡਾਂ ਦਾ ਚਿਤਰਨ ਉਹਨਾਂ ਦਾ ਉਦੇਸ਼ ਨਹੀਂ, ਸਾਧਨ ਮਾਤਰ ਸੀ। ਆਂਚਲਿਕ ਨਾਵਲਾਂ ਵਿੱਚ ਆਂਚਲ ਦਾ ਚਿਤਰਨ ਸਾਧਨ ਨਾ ਹੋ ਕੇ ਉਦੇਸ਼ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਰਚਿਤ ਨਾਵਲਾਂ ਵਿੱਚ ਬਾਹਰੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਤੋਂ ਆਂਚਲਿਕਤਾ ਭਾਵੇਂ ਮਹਿਸੂਸ ਹੋਵੇ, ਪਰ ਇਹਨਾਂ ਦੀ ਰਚਨਾ ਦੀ ਆਤਮਾ ਆਂਚਲਿਕ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਉਸਦੇ ਨਾਵਲਾਂ ਵਿੱਚ ਇਸ ਦਾ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਥਾ ਵਿੱਚ ਭਰੋਸੇਯੋਗਤਾ ਅਤੇ ਮਾਨਵੀ ਰੰਗ ਲਿਆਉਣ ਲਈ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। 'ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਦੇ ਯਥਾਰਥਵਾਦੀ ਨਾਵਲ ਦੀ ਕੀਮਤ ਮੁੱਖ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਕਾਲ ਅਤੇ ਦੇਸ਼ ਵਿੱਚੋਂ ਗੁਜ਼ਰਦੀ ਸਮਾਜਕ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਦਸਤਾਵੇਜ਼ ਹੋਣ ਵਿੱਚ ਹੈ। ਇਸਦੀ ਸਮਾਜਕ ਅਤੇ ਵਿਚਾਰ-ਵਸਤੂ ਜ਼ਰਾ ਪਤਲੀ ਹੈ ਅਤੇ ਬਿਰਤਾਂਤ ਦੇ ਤਾਣੇ-ਬਾਣੇ ਵਿੱਚ ਬਰਾਬਰ ਕਾਇਮ ਵੀ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦੀ। ਇਸਦੀ ਅਹਿਮੀਅਤ ਇਤਿਹਾਸਕ ਵਧੇਰੇ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਇਹ ਕਿਰਦਾਰ-ਨਵੀਸੀ ਵਿੱਚ ਜਾਂ ਬਿਰਤਾਂਤ ਦੀ ਬਣਤਰ ਵਿੱਚ ਸੰਭਵ ਜਾਂ ਸੰਭਾਵੀ ਦੀ ਸੀਮਾ ਦਾ ਉਲੰਘਣ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੇ ਨਾਵਲ ਪਿੰਡਾਂ ਵਿੱਚ ਵਸਦੇ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਮਾਜਚਾਰੇ ਦੀਆਂ ਸਿਰਫ ਦਿਸਦੀਆਂ ਹਕੀਕਤਾਂ ਦੇ ਦਸਤਾਵੇਜ਼ ਨਹੀਂ ਹਨ। ਉਹ ਇਨ੍ਹਾਂ ਹਕੀਕਤਾਂ ਦੀ ਤਹਿ ਵਿੱਚ ਪਏ ਸਮਾਜਕ ਤੇ ਨਫਸਿਆਤੀ ਇਸਰਾਰਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਖੋਲ੍ਹਦੇ ਹਨ।[2] ਵਿਗਿਆਨਕ ਤਰੱਕੀ ਅਤੇ ਉਦਯੋਗੀਕਰਨ ਨੇ ਪਿੰਡ ਦੀ ਪਰੰਪਰਾਗਤ ਪੱਧਤੀ ਨੂੰ ਤੋੜ ਦਿੱਤਾ, ਉਥੋਂ ਦੀਆਂ ਰੂੜ੍ਹ ਪਰੰਪਰਾਵਾਂ ਜੇ ਖਤਮ ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਢਿੱਲੀਆਂ ਜਰੂਰ ਹੋ ਗਈਆਂ। ਪੇਂਡੂ ਪਰਿਵੇਸ਼ ਵਿੱਚ ਸੰਘਰਸ਼ ਕਰਦੇ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸਹੀ ਤਸਵੀਰਕਸ਼ੀ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੇ ਨਾਵਲਾਂ ਦਾ ਮੂਲ ਵਿਸ਼ਾ ਖੇਤਰ ਹੈ ਤੇ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਵੀ। ਉਸ ਦੀ ਯਥਾਰਥ ਚੇਤਨਾ ਕੇਵਲ ਸ਼੍ਰੇਣੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਦੇ ਸਰਾਪਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਉਜਾਗਰ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ, ਪਿੰਡ ਦੀਆਂ ਆਸਾਂ, ਇਛਾਵਾਂ ਅਤੇ ਕਲਪਨਾ ਨੂੰ ਵੀ ਆਂਕਦੀ ਹੈ। ਦੁਪਾਸੀ ਹਿੱਤਾਂ ਦਾ ਉਹ ਸਜੀਵ ਵਾਤਾਵਰਨ ਚਿਤਰਨ ਵਿੱਚ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਫਲ ਹੈ। ਮਾਲਵਾ ਆਂਚਲ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸੰਪੂਰਨ ਪੇਂਡੂ ਪਰਿਵੇਸ਼ ਆਪਣੇ ਸਮੁੱਚੇ ਪਰਿਪੇਖ ਵਿੱਚ ਉਹਨਾਂ ਦੀਆਂ ਰਚਨਾਵਾਂ ਵਿੱਚ ਸਾਕਾਰ ਹੋ ਉਠਿਆ ਹੈ। ਉਸਦੇ ਨਾਵਲਾਂ ਵਿੱਚ ਪੇਂਡੂ ਪਰਿਵੇਸ਼ ਵਿੱਚ ਬਦਲਾਵ ਆ ਰਹੇ ਹਨ, ਪਰੰਤੂ ਅਜਿਹੀਆਂ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਇਸ ਪੱਛੜੇ ਹੋਏ ਖਿੱਤੇ ਵਿੱਚ ਜੋ ਅਸਤਿਤਵੀ ਮਸਲੇ ਦਰਪੇਸ਼ ਹਨ, ਉਹ

ਸਿਰਫ ਇਕ ਖਿੱਤੇ ਤਕ ਸੀਮਤ ਵਰਤਾਰਾ ਨਹੀਂ ਹਨ। ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਹੋਰਨਾਂ ਖਿੱਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਇਹ ਬਦਲਾਵ ਕੁਝ ਇਸੇ ਭਾਂਤ ਹੀ ਪੈਦਾ ਹੋ ਰਹੇ ਵੇਖੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ।

ਆਹਣ ਦਾ ਸਮਾਂ ਉਨੀਂ ਸੌ ਤੀਹਾ-ਚਾਲੀ ਦੇ ਵਿਚਕਾਰ ਦਾ ਸਮਾਂ ਹੈ। ਪੇਂਡੂ ਸਮਾਜ ਤੇ ਰਾਜਸੱਤਾ ਦਾ ਟਕਰਾਅ ਇਸਦੀ ਮੂਲ ਸੰਰਚਨਾ ਹੈ, ਜੋ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਅਜੇ ਵੀ ਭਾਰੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਅੰਦਰ ਵਿਆਪਤ ਹੈ। ਰਾਜ ਸੱਤਾ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਰੱਖਣ ਵਾਸਤੇ ਅੱਜ ਵੀ ਪੇਂਡੂ ਸਮਾਜ ਉੱਤੇ ਅਜਿਹੀਆਂ ਜ਼ਿਆਦਤੀਆਂ ਅਤੇ ਧੱਕੇਸ਼ਾਹੀਆਂ ਕਰਦੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ, ਪਰ ਪੇਂਡੂ ਜਾਂ ਸਮੁੱਚਾ ਪੰਜਾਬੀ/ਭਾਰਤੀ ਸਮਾਜ ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ ਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਗੌਰਵ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਰੱਖਣ ਵਾਸਤੇ ਹਮੇਸ਼ਾ ਰਾਜ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਉਸਦੀ ਸਜ਼ਾ ਵੀ ਭੁਗਤਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਘਟਨਾਵਾਂ ਅਨੇਕਾਂ ਰੂਪਾਂ ਵਿੱਚ ਵਰਤਮਾਨ ਸਮੇਂ ਅੰਦਰ ਵੀ ਵਾਪਰ ਰਹੀਆਂ ਹਨ (ਰੇਲ-ਰਸਤਾ ਰੋਕੋ ਅਤੇ ਕਿਸਾਨ ਅੰਦੋਲਨ ਦੇ ਹੋਰ ਰੂਪ) ਤੇ ਜਦੋਂ ਤੱਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਭਾਰਤ ਸਮਾਜ ਅੰਦਰ ਵੱਡੀਆਂ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਨਹੀਂ ਆਉਂਦੀਆਂ, ਜਿਸ ਕਾਰਨ ਪੇਂਡੂ ਸਮਾਜ ਜਾਂ ਹੇਠਲਾ ਵਰਗ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਮਨੁੱਖੀ ਗੌਰਵ ਨਾਲ ਜਿਉਣ ਜਾਂ ਰਾਜਸੱਤਾ ਉਹਨਾਂ ਤੇ ਨਾਜਾਇਜ਼ ਧੱਕੇ ਜਾਂ ਜ਼ੁਲਮ ਨਾ ਕਰ ਸਕੇ। ਉਦੋਂ ਤੱਕ ਇਹਨਾਂ ਦੋਹਾਂ ਵਿਰੋਧੀ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਦਾ ਟਾਕਰਾ ਜਾਰੀ ਰਹਿਣਾ ਹੈ, ਇਸਦਾ ਰੂਪ ਭਾਵੇਂ ਕੋਈ ਵੀ ਹੋਵੇ, ਪਾਤਰ ਸਥਿਤੀ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਭਾਵੇਂ ਕੋਈ ਵੀ ਹੋਵੇ। ਇਸ ਨਾਵਲ ਦਾ ਵਾਪਰਨ-ਸਥਾਨ ਭਾਵੇਂ ਰਿਆਸਤ ਨਾਭਾ ਦੀ ਇਕ ਮੰਡੀ ਦੇ ਆਲੇ-ਦੁਆਲੇ ਦਾ ਇਲਾਕਾ ਹੈ। ਨਾਵਲਕਾਰ ਨੇ ਇਹ ਟਕਰਾਉ ਕਰਮਗੜ੍ਹ ਨਾਂ ਦੇ ਇੱਕ ਕਲਪਿਤ ਪਿੰਡ (ਕੋਈ ਹੋਰ ਨਾਂ ਵੀ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ) ਵਿਚ ਵਾਪਰਦਾ ਵਿਖਾਇਆ ਹੈ ਪਰ 'ਇਸ ਦੀ ਬਿਰਤਾਂਤਕਾਰੀ ਦੀ ਵਿਧੀ ਨੇ ਇਸ ਟਕਰਾਉ ਨੂੰ ਬਰਤਾਨਵੀ ਸਾਮਰਾਜ ਅਤੇ ਕਰਮਗੜ੍ਹ ਦੀ ਕਿਸਾਨੀ ਦੇ ਵਿਰੋਧ-ਜੁੱਟ ਦੇ ਗਲਪੀ ਬਿੰਬ ਰਾਹੀਂ ਤਤਕਾਲ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਦਾ ਪ੍ਰਤਿਨਿਧ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਆਪਣੇ ਸਾਮਰਾਜੀ ਹਿੱਤਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਬਰਤਾਨਵੀ ਹਕੂਮਤ ਨੇ ਕਿਸਾਨੀ ਨੂੰ ਜ਼ਮੀਨ ਦੀ ਨਿਜੀ ਮਾਲਕੀ ਦੇ ਹਕੂਕ ਦੇ ਦਿੱਤੇ ਸਨ ਪਰ ਮਾਮਲਾ ਆਬਿਆਨਾ ਅਤੇ ਚੌਂਕੀਦਾਰਾ ਜ਼ਮੀਨੀ ਉਪਜ ਦੇ ਆਧਾਰ 'ਤੇ ਵਸੂਲ ਕਰਨ ਦੀ ਬਜਾਏ ਜ਼ਮੀਨ ਦੀ ਮਿਣਤੀ ਅਨੁਸਾਰ ਨਕਦੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਉਗਰਾਹੇ ਜਾਣ ਦਾ ਕਾਨੂੰਨ ਵੀ ਲਾਗੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ। ਸਿੱਟੇ ਵੱਜੋਂ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਕਰੋਪੀ ਕਾਰਨ ਫਸਲਾਂ ਦੀ ਤਬਾਹੀ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਇਹ ਟੈਕਸ ਕਿਸਾਨੀ ਤੋਂ ਜਬਰੀ ਵਸੂਲ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਸਨ। ਇਸ ਵਰਤਾਰੇ ਦੇ ਅਮਲੀ ਪ੍ਰਬੰਧ ਲਈ ਹਕੂਮਤ ਨੇ ਮਹਿਕਮਾ ਮਾਲ ਕਾਇਮ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ। ਜਿਹੜਾ ਪੁਲਿਸ ਦੀ ਮਦਦ ਨਾਲ ਕਿਸਾਨੀ ਤੋਂ ਉਸ ਸੂਰਤ ਵਿੱਚ ਵੀ ਟੈਕਸ ਵਸੂਲ ਕਰਨਾ ਆਪਣਾ ਫਰਜ਼ ਸਮਝਦਾ ਸੀ ਜਦੋਂ ਕਿਸਾਨੀ ਫਸਲਾਂ ਦੇ ਉਜਾੜ ਕਾਰਨ ਅਦਾ ਕਰਨ ਦੇ ਕਾਬਿਲ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦੀ ਸੀ। ਮਹਿਕਮਾ ਮਾਲ ਦੇ ਮੁਲਾਜ਼ਮ ਦੋ ਕੁ ਵਾਰ ਪਿੰਡ ਦਾ 'ਕੱਠ' ਕਰ ਕੇ ਕਿਸਾਨਾਂ ਨੂੰ ਮਾਮਲਾ ਤਾਰਨ ਦੀ ਹੁਕਮ ਵਰਗੀ ਸਲਾਹ ਦੇ ਕੇ ਅਗਾਂਹ ਨਿਕਲ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਸਮੱਸਿਆ ਉਵੇਂ ਦੀ ਉਵੇਂ ਬਣੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ। ਮਾਮਲੇ ਦੀ ਉਗਰਾਹੀ ਵਿੱਚ ਨਰਮਾਈ ਵਰਤਣ ਨਾਲ ਹਕੂਮਤ ਦਾ ਵਕਾਰ ਘਟਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਮਾਮਲਾ ਤਾਰਨ ਜੋਗੀ ਜੋਖੋਂ ਕਿਸਾਨੀ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਹੈ।"[3] ਧਿਆਨ ਦੇਣ ਯੋਗ ਤੱਥ ਹੈ ਕਿ ਸਰਕਾਰ ਕਿਸਾਨੀ ਦੀ ਜ਼ਮੀਨ ਅਤੇ ਘਰ, ਪਸ਼ੂ ਅਤੇ ਉਪਜ ਜ਼ਬਤ ਕਰ ਕੇ ਵੀ ਮਾਮਲਾ ਵਸੂਲ ਕਰ ਸਕਦੀ ਸੀ ਜਿਹਾ ਕਿ ਉਹ ਪਹਿਲਾਂ ਵੀ ਥੁੜ-ਟੁੱਟ ਕਿਸਾਨਾਂ ਤੋਂ ਕਰਦੀ ਆਈ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਤਾਂ ਪੁਲਿਸ ਅਤੇ ਫੌਜ ਨੂੰ ਪਿੰਡ ਦੇ ਉਜਾੜ ਦਾ ਹੁਕਮ ਦੇ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਨਾਵਲੀ ਬਿਰਤਾਂਤ ਅਨੁਸਾਰ ਇਸ ਦਾ ਕਾਰਨ ਆਰਥਿਕ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਸਿਆਸੀ ਹੈ। ਜਿਸ ਪਿੰਡ ਵਿੱਚ ਇਹ ਘਟਨਾ ਵਾਪਰਦੀ ਹੈ, ਉਹ ਰਿਆਸਤ ਨਾਭਾ ਦਾ ਪਿੰਡ ਹੈ ਜਿਸ ਦੇ ਰਾਜ ਨੂੰ ਅੰਗਰੇਜ਼ਾਂ ਨੇ ਦੇਸ਼-ਨਿਕਾਲਾ ਦੇ ਕੇ ਰਿਆਸਤ ਉੱਤੇ ਕਬਜ਼ਾ ਕਰ ਲਿਆ ਸੀ। ਪਿੰਡ ਦੇ ਨਾਲ ਦੀ ਮੰਡੀ ਵਿਚਲਾ ਅਕਾਲੀ ਮੋਰਚਾ ਵੀ ਸਿਆਸੀ ਬਗਾਵਤ ਦਾ ਪ੍ਰਤੀਕ ਸੀ ਅਤੇ ਮੰਡੀ ਵਿੱਚ ਫੈਲ ਰਹੀ ਪਰਜਾ ਮੰਡਲ ਦੀ ਲਹਿਰ ਤਾਂ ਸਪਸ਼ਟ ਹੀ ਸਾਮਰਾਜ-ਵਿਰੋਧੀ ਸੀ।

ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਪਿੰਡ ਦੇ ਡੇਰੇ ਦਾ ਸੰਤ ਸਿਆਸੀ ਕਾਰਕੁਨ ਰਿਹਾ ਸੀ ਜਿਸ ਦੀ ਸਰਕਾਰ ਨੂੰ ਸੂਹ ਸੀ। ਉਹ ਵੀ ਪੇਂਡੂ ਵੱਸੋਂ ਨੂੰ ਹਕੂਮਤ ਖਿਲਾਫ ਭੜਕਾ ਰਿਹਾ ਸੀ ਆਦਿ ਹਵਾਲਿਆਂ ਦੀ ਰੋਸ਼ਨੀ ਵਿੱਚ ਇਸ ਨਾਵਲ ਦੇ ਅਰਥ ਨਾ ਸਿਰਫ ਸਥਾਨਕ ਸਮੱਸਿਆ ਪ੍ਰਤੀ ਸਰਕਾਰ- ਦਰਬਾਰ ਦਾ ਰੁਖ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੇ ਹਨ ਸਗੋਂ ਸਮੇਂ ਸਥਾਨ ਤੋਂ ਪਾਰ ਹਕੂਮਤ ਦੇ ਸਿਆਸੀ ਰਵੱਈਏ ਦੀ ਵੀ ਗਵਾਹੀ ਬਣਦੇ ਹਨ। ਨਾਵਲ ਦੇ ਇਹ ਹਵਾਲੇ ਸਰਕਾਰ ਦੀ ਸਿਆਸੀ ਨੀਅਤ ਦਾ ਪਾਜ ਖੋਲ੍ਹਦੇ ਹਨ।

ਇਸਦਾ ਦੂਸਰਾ ਪੱਖ ਬਰਤਾਨਵੀ ਹਕੂਮਤ ਦੇ ਭਾਵੇਂ ਆਪਣੇ ਹਿੱਤਾਂ ਕਰਕੇ ਹੀ ਪਰ ਮੰਡੀ ਦੀ ਸਥਾਪਤੀ ਹੋ ਰਹੀ ਸੀ। ਸਿੱਟੇ ਵਜੋਂ ਮੰਡੀ ਦਾ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਵੀ ਹੋਣ ਲੱਗ ਪਿਆ ਸੀ। ਕਿਸਾਨ ਆਪਣੀ ਵਾਧੂ ਉਪਜ ਮੰਡੀ ਵਿਚ ਵੇਚਣ ਲਈ ਲੈ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਉਪਜ ਦੀ ਵੱਟਤ ਨਾਲ ਘਰੇਲੂ ਲੋੜਾਂ ਦੀਆਂ ਚੀਜ਼ਾਂ ਖਰੀਦ ਲਿਆਉਂਦੇ ਹਨ। ਕਈਆਂ ਨੇ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਹੀ ਹੱਟੀਆਂ ਪਾ ਲਈਆਂ ਹਨ ਜਿਹੜੇ ਲੋੜਵੰਦਾਂ ਨੂੰ ਉਧਾਰ-ਸੁਧਾਰ ਵੀ ਦੇ ਦਿੰਦੇ ਹਨ। ਇਹ ਵਰਤਾਰੇ ਪਿੰਡ ਦੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਨਵੇਂ ਸਮਾਜੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨੂੰ ਜਨਮ ਦੇ ਰਹੇ ਹਨ। ਪੈਸੇ ਨਾਲ ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣ ਵਾਲੇ ਇਹਨਾਂ ਲੋਕਾਂ ਨੇ ਆੜ੍ਹਤ, ਵੇਚ-ਵੱਟ ਅਤੇ ਸੂਦਖੋਰੀ ਜਿਹੇ ਕੰਮ ਸਾਂਭ ਲਏ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚੋਂ ਇਹਨਾਂ ਨੂੰ ਕੁਝ ਆਮਦਨੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਸਿੱਟੇ ਵਜੋਂ ਕਿਸਾਨ, ਕਾਰੀਗਰ ਇਥੋਂ ਤਕ ਕਿ ਕਰਮਚਾਰੀ ਵੀ ਨਿੱਤ-ਦਿਹਾੜੀ ਦੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਪੂਰੀਆਂ ਕਰਨ ਲਈ ਹੱਟ-ਬਾਣੀਆਂ ’ਤੇ ਨਿਰਭਰ ਹੋ ਗਏ ਹਨ, ਜਿਸਦੇ ਸਿੱਟੇ ਵਜੋਂ ਪਿੰਡ ਮੰਡੀ 'ਚ ਤੇ ਮੰਡੀ ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਢਾਂਚੇ ਵਿਚ ਢਲਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਨਵੀਂ ਵਿਵਸਥਾ ਅਨੁਸਾਰ ਪੜ੍ਹਾਈ ਲਈ ਸਕੂਲ ਵੀ ਖੁੱਲ੍ਹ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਉਂ ਇਹ ਭਾਰਤੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਦੀ ਲਹਿਰ ਵਿਚ ਵੀ ਹਿੱਸਾ ਲੈਣ ਲੱਗ ਵੀ ਪਏ ਹਨ ਜੋ ਕਿ ਪਰਜਾ ਮੰਡਲ ਦੀ ਲਹਿਰ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਮਾਲਵੇ ਦੀਆਂ ਰਿਆਸਤਾਂ ਵਿਚ ਆਪਣੇ ਪੈਰ ਪਸਾਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਸਾਮਰਾਜ-ਵਿਰੋਧੀ ਇਸ ਲਹਿਰ ਨੂੰ ਪਿੰਡ ਦੀ ਕਿਸਾਨੀ ਦਾ ਵੱਡਾ ਹਿੱਸਾ ਭਾਵੇਂ ਇਸਨੂੰ ਬਾਣੀਆਂ ਦੀ ਲਹਿਰ ਹੀ ਖਿਆਲਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਇਹ ਲਹਿਰ ਕਿਸਾਨੀ ਨੂੰ ਆਪਣਾ ਪੈਰੋਕਾਰ ਬਣਾਉਣ ਵਿਚ ਅਸਮਰਥ ਰਹੀ ਹੈ। ਜੇ ਗਹੁ ਨਾਲ ਵਿਚਾਰੀਏ ਤਾਂ ਇਹ ਨਾਵਲ ਤੀਹਵਿਆਂ ਦੀਆਂ ਆਰਥਿਕ-ਸਿਆਸੀ ਹਾਲਤਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗਾਂ ਵਿਚ ਰਿਆਸਤ ਮਾਲਵੇ ਦੀ ਧਰਤੀ, ਜਾਤ- ਪਾਤ ਅਤੇ ਜਮਾਤੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਬਾਰੀਕ ਨੀਝ ਅਤੇ ਸੋਚਵਾਨ ਨਜ਼ਰੀਏ ਨਾਲ ਰੂਪਮਾਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਕਿਸਾਨੀ ਅਤੇ ਬਰਤਾਨਵੀ ਹਕੂਮਤ ਅੰਦਰਲਾ ਤਨਾਓ/ਟਕਰਾਓ ਥੋੜ੍ਹੇ ਬਹੁਤੇ ਫਰਕ ਨਾਲ ਸਮੁੱਚੇ ਪੰਜਾਬ ਹੀ ਨਹੀਂ ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਚੱਲ ਰਿਹਾ ਸੀ ਤੇ ਇਸ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿੱਚ ਹੀ ਇਸਦੇ ਅਰਥ ਲਏ ਜਾਣੇ ਚਾਹੀਦੇ ਹਨ।

ਸੁਤੰਤਰਤਾ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਉਪਰੰਤ ਭਾਰਤੀ ਪਿੰਡਾਂ ਵਿੱਚ ਹੋਏ ਬਦਲਾਵਾਂ ਨੂੰ ਯਥਾਰਥਕ ਪੱਧਰ ਤੇ ਉਜਾਗਰ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਨਾਵਲਾਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਹੋਈ ਹੈ। ਪੇਂਡੂ ਸਥਿਤੀ ਦੀ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਕਾਫੀ ਪਛਾਣ ਹੈ। ਨਾਵਲਕਾਰ ਦੀ ਅਜਿਹੀ ਧਾਰਨਾ ਹੈ ਕਿ ਜਨ-ਜੀਵਨ ਹੀ ਲੇਖਕ ਦੇ ਅਨੁਭਵਾਂ ਦਾ ਅਧਾਰ ਬਣ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਲੇਖਕ ਦੀ ਰਚਨਾਤਮਕ ਸ਼ਕਤੀ ਉਨੀਂ ਹੀ ਪ੍ਰਬਲ ਅਤੇ ਸਾਰਥਕ ਹੁੰਦੀ ਹੈ, ਜਿੰਨੀ ਗਹਿਰੀ ਅਤੇ ਤੇਜ਼ ਕਿਸੇ ਨਾਵਲ ਦੀ ਨਵੀਨਤਾ ਇਸ ਗੱਲ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ ਕਿ ਉਹ ਕਿਸੇ ਖਿੱਤੇ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਖਾਸੀਅਤ ਦਾ ਉਲੇਖ ਕਰੇ ਬਲਕਿ ਉਸਦੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਇਸ ਗੱਲ ਵਿੱਚ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਉਸ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਸਮਾਜਿਕ ਪਰਿਵਰਤਨ ਦੇ ਜੋ ਲੱਛਣ ਉਭਰ ਰਹੇ ਹਨ ਅਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਨਤੀਜੇ ਵੱਜੋਂ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਜੋ ਨਵੀਆਂ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਉਜਾਗਰ ਹੋ ਰਹੀਆਂ ਹਨ, ਉਸਦੀ ਮੁਕੰਮਲ ਤਸਵੀਰ ਅਤੇ ਮੁਲਾਂਕਨ ਹੋਵੇ। ਨਵੀਨਤਾ ਇਸ ਗੱਲ ਵਿੱਚ ਵੀ ਹੈ ਕਿ ਜੋ ਅਨਦੇਖਿਆ ਪੱਖ (ਇਤਿਹਾਸ ਤੋਂ ਵੀ) ਰਿਹਾ ਹੈ, ਉਸਦਾ ਚਿਤਰਨ ਉਘੜਵੇਂ ਅਤੇ ਕਲਾਤਮਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇ। ਨਾਵਲ ਵਿੱਚ ਸਮਾਜਿਕ ਜੀਵਨ ਦੀਆਂ ਨਵੀਆਂ ਅਸਲੀਅਤਾਂ ਨੂੰ ਪੂਰੇ ਸੰਦਰਭ ਨਾਲ ਚਿਤਰਣ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਮੂਲ ਪ੍ਰਸ਼ਨ ਕਿਸੇ ਖਾਸ ਖਿੱਤੇ ਦਾ ਨਹੀਂ, ਬਲਕਿ ਨਵੀਂ ਗ੍ਰਹਿਣਸ਼ੀਲਤਾ ਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਸੁਤੰਤਰਤਾ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਦੇ ਕਾਲ ਵਿੱਚ ਭਾਰਤੀ ਪਿੰਡਾ ਵਿੱਚ ਹੋਏ ਬਦਲਾਅ ਨੂੰ ਉਹਨਾਂ

ਨੇ ਯਥਾਰਥਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਤੋਂ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਿਤ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਪੇਂਡੂ ਜੀਵਨ ਦੀ ਹਰ ਤਬਦੀਲੀ ਅਤੇ ਬਦਲਾਵ ਦੀ ਧੜਕਣ ਨੂੰ ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਬਾਖੂਬੀ ਪਛਾਣਿਆ ਹੈ। ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪਿੰਡਾਂ ਵਿੱਚ ਵਸਦੇ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਮਾਜਚਾਰੇ ਦੀਆਂ ਗੁੰਝਲਾਂ ਨਾਲ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੋ-ਚਾਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਇਸ ਨਾਲ ਬੰਦੇ ਦੀ ਮਨੋਵਿਗਿਆਨਕ ਤੇ ਸਮਾਜ-ਸਾਂਸਕ੍ਰਿਤਿਕ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਦੇ ਪਿੰਜਰ ਵਿੱਚ ਫੜਫੜਾਹਟ ਨੂੰ ਸਾਕਾਰ ਕਰਨ ਦੀਆਂ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦਾ ਇੱਕ ਬੇਕਿਨਾਰ ਸਿਲਸਿਲਾ ਖੁਲ੍ਹਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਕਿਸਮ ਦੀ ਅੱਕਾਸੀ ਪਹਿਲਾਂ ਦੀ ਗਲਪ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦੀ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਨਾਵਲਾਂ ਨੂੰ ਜਦੋਂ ਕਾਲ-ਕ੍ਰਮਕ ਤਰਤੀਬ ਵਿੱਚ ਵੇਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਇਹ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਪਿੰਡਾਂ ਦੇ ਸਮਾਜਚਾਰੇ ਵਿੱਚ ਵਰਤ ਰਹੀਆਂ ਬੇਚੈਨ ਕਰ ਦੇਣ ਵਾਲੀਆਂ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਦੀ ਸਮਾਜ-ਸ਼ਾਸਤ੍ਰੀ ਇਤਿਹਾਸ-ਰੇਖਾ ਹੋ ਨਿਬੜਦੇ ਹਨ।[4]

ਸਮੁੱਚੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੀ ਰਚਨਾ ਦਾ ਕੇਂਦਰ ਪੇਂਡੂ ਜੀਵਨ ਦੇ ਬੁਨਿਆਦੀ ਆਰਥਿਕ-ਸਮਾਜਕ ਸੰਬੰਧਾਂ ਨੂੰ ਚਿਰਤਨ ਉਤੇ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਉਹ ਕਿਸੇ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਪ੍ਰਦੇਸ਼ ਜਾਂ ਆਂਚਲ ਦਾ ਨਾਵਲਕਾਰ ਨਾ ਹੋ ਕੇ ਸਮੁੱਚੇ ਭਾਰਤੀ ਪੇਂਡੂ ਜੀਵਨ ਤੇ ਕਿਰਤੀ ਵਰਗ ਦਾ ਚਿਤੇਰਾ ਪ੍ਰਵਾਨਿਤ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਇਸਦੀ ਤਾਜ਼ਾ ਮਿਸਾਲ ਉਸਦੇ ਲਗਭਗ ਸਾਰੇ ਨਾਵਲ ਹਿੰਦੀ ਵਿਚ ਅਨੁਵਾਦ ਹੋ ਕੇ ਹਿੰਦੀ ਸਾਹਿਤ-ਜਗਤ ਵਿਚ ਉਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਵਾਨ ਹੋਏ ਹਨ ਜਿਵੇਂ ਉਹ ਕਿਸੇ ਹਿੰਦੀ-ਭਾਸ਼ੀ ਖੇਤਰ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਹੋਣ। ਅੰਗਰੇਜ਼ੀ ਅਨੁਵਾਦ ਬਾਰੇ ਵੀ ਸਾਡੀ ਧਾਰਨਾ ਇਹੋ ਹੀ ਹੈ। 'ਹਰ ਪ੍ਰਬੰਧ ਆਪਣੀ ਪ੍ਰਧਾਨਤਾ ਦੇ ਸਮੇਂ ਦੇ ਵਡੇਰੇ ਭਾਗ ਵਿਚ ਸਮਾਜਕ ਸੰਤੁਲਨ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਨ ਦੇ ਸਮਰੱਥ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰਬੰਧ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਦਾ ਪਤਨ ਆਰੰਭ ਹੋਣ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਉਸ ਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਵਾਣਿਤ ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਸਥਿਰਤਾ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੋ ਚੁੱਕੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਸਿੱਟੇ ਵੱਜੋਂ ਸਮਾਜਕ ਗਤੀ ਨੂੰ ਮੁਕਾਬਲਤਨ ਘੱਟ ਹਿਚਕੋਲਿਆਂ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਕਰਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ, ਪਰ ਜਦੋਂ ਇਕ ਨਵਾਂ ਪ੍ਰਬੰਧ ਪਹਿਲੇ ਪ੍ਰਬੰਧ ਨੂੰ ਹਿਲਾ ਕੇ ਉਸਦੀ ਥਾਂ ਲੈ ਰਿਹਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਵਿਭਿੰਨ ਸਮਾਜੀ ਸੰਬੰਧਾਂ ਵਿਚ ਪਹਿਲਾਂ ਵੇਖਣ ਵਿਚ ਆਇਆ ਸੰਤੁਲਨ ਕਾਇਮ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦਾ, ਤੇ ਇਹ ਸੰਤੁਲਨ ਮੁੜ ਉਦੋਂ ਤੱਕ ਪ੍ਰਾਪਤ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ ਜਦੋਂ ਤੱਕ ਨਵਾਂ ਆਉਣ ਵਾਲਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਪਹਿਲੇ ਪ੍ਰਬੰਧ ਨੂੰ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਖਤਮ ਕਰਕੇ ਸਥਾਪਿਤ ਨਹੀਂ ਹੋ ਜਾਂਦਾ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੇ ਨਾਵਲਾਂ ਵਿੱਚ ਅਜਿਹੇ ਸੰਕ੍ਰਾਂਤੀ ਕਾਲ ਦਾ ਹੀ ਚਿਤਰਨ ਹੈ। ਅਜਿਹੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਨਾ ਤਾਂ ਸਾਮੰਤਵਾਦੀ ਸੰਬੰਧ ਆਪਣੀ ਪਹਿਲਾਂ ਵਰਗੀ ਪਰਿਪੂਰਨਤਾ ਵਿਚ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹਨ ਤੇ ਨਾ ਹੀ ਨਵੇਂ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਸੰਬੰਧ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਥਾਪਿਤ ਹੋਏ ਹਨ।"[5] ਨਾਵਲਕਾਰ ਕੋਲ ਇਸ ਵਰਤਾਰੇ ਦੀ ਸਮਝ ਵੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਵਰਤਾਰੇ ਵਿਚੋਂ ਪੈਦਾ ਹੋਣ ਵਾਲੇ ਮਾਨਵ ਵਿਰੋਧੀ ਅਤੇ ਗੈਰ-ਮਾਨਵੀ ਸਬੰਧ ਦੀ ਕਲਾਤਮਕ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਦਾ ਹੁਨਰ ਵੀ। ਸਮਾਜ-ਸ਼ਾਸਤਰੀ ਸੋਝੀ ਅਤੇ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਸਮਝ ਦੇ ਸੁਮੇਲ ਸਦਕਾ ਹੀ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਸ਼੍ਰੋਮਣੀ ਅਤੇ ਸੂਝਵਾਨ ਨਾਵਲਕਾਰ ਪ੍ਰਵਾਨ ਹੋਇਆ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿਪਣੀਆਂ :

1. In community concerns, Gurdial Singh is generally believed to be a fiction writer of the Malwa region of the Punjab and its ethos. The regionis sometimes further reduced to the territory arond Jaito Mandi in the district of Fardikot where Gurdial Singh resides in his ancestral house. Most of his characters, which include the protagonists in his novels too, belong to the area so delimited. The large number of fiction-writers emerging from the Malwa regionand producing powe erful novels and short stores inspired by Gurdial Singh's writings generated a kind of literay movement which made Malwai, the langauge of the Malwa region, a major dialect of Punjabi langauge. All these factors bestowed upon Gurdial Singh the image of a predominant literary figure in the category of regional novel tied to the depiction of a sub-culture. It is for this reason that it has come to be a fashion among young researchers to study Gurdial Singh's realism primarily in the

framework of regional novel. Dr. J.S. Rahi, S.S. Khahra, **Re-Readings of Gurdial Singh's Fiction**, p-18

2. The realistic novel before Gurdial Singh is significant mainly for its documentation of socio-historical aspects of life. Their socio-psychic content is thin and not quite sustained in the fabric of the narrative. Their significance is primarily historical in the sense that in characters or narrative structuring, they do not transgress the limits of the possible or the probable the way it so frequently happens in the novel of the religious, reformist and progressive movements. Ibid, p-17.
3. ਡਾ. ਟੀ. ਆਰ. ਵਿਨੋਦ, **ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਵਲ ਵਿਹਾਰਕ ਪਰਿਪੇਖ**, ਪੰਨਾ- 276.
4. But the way Gurdial Singh handles the tangles of community life in the rural Punjab unfolds the possibilities not confined to the documentation of the externalities of the varied aspects of community life in the rural Punjab. The also unravel the socio-psychic mysteries operating behind him. Dr. J.S. Rahi, S.S. Khahra, **Re-Readings of Gurdial Singh's Fiction**, p-17
5. ਰਘਵੀਰ ਸਿੰਘ, 'ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੀ ਗਲਪ ਰਚਨਾ - ਇਕ ਅਧਿਐਨ', **ਨਾਵਲਕਾਰ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ : ਇਕ ਅਧਿਐਨ**, ਪੰਨਾ- 174.

ਸਹਾਇਕ ਪੁਸਤਕ ਸੂਚੀ :

1. ਕਿਸ਼ਨ ਸਿੰਘ (ਪ੍ਰੋ.), ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੀ ਨਾਵਲ ਚੇਤਨਾ, ਲੋਕਗੀਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ, 2007
2. ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ, ਲੇਖਕ ਦੇ ਅਨੁਭਵ ਦੀ ਪਰਕਿਰਿਆ, ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 1995
3. ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਰਚਨਾਵਲੀ, ਭਾਗ- ਇਕ, ਦੋ, ਤਿੰਨ, ਚਾਰ, ਲੋਕਗੀਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ, 2011
4. ਤਰਸੇਮ, ਅਮਰ (ਡਾ.), ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਵਲ : ਸ਼੍ਰੇਣੀ ਸ਼ਾਸਤਰੀ ਪਰਿਪੇਖ, ਰਵੀ ਸਾਹਿਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 2006
5. ਬੇਦੀ, ਪੁਨਦਮਨ ਸਿੰਘ (ਸੰਪਾ.), ਨਾਵਲਕਾਰ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ : ਇਕ ਅਧਿਐਨ, ਸਾਹਿਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਲੁਧਿਆਣਾ,1988
6. ਵਿਨੋਦ, ਟੀ. ਆਰ. (ਡਾ.), ਗਲਪਕਾਰ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ, ਨਾਨਕ ਸਿੰਘ ਪੁਸਤਕਮਾਲਾ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 2000
7. ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਵਲ ਵਿਹਾਰਿਕ ਪਰਿਪੇਖ, ਰਵੀ ਸਾਹਿਤ, ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 2011
8. Tarsem, Amar (Dr.), Kumar Sushil (Ed.), Re-Readings of Gurdial Singh's Fiction, Unistar Books Pvt. Ltd., Chandigarh, 2006

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 127-132
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण संरक्षण में जनहित याचिका की भूमिका

डॉ0 शैलेश पाण्डेय
शकुंतला कुंज कॉलोनी, चक मुंडेरा, जनपद-प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

सारांश:-
पर्यावरण जल, वायु, मिट्टी आदि की तरह पृथ्वी पर जीवन का स्रोत है, तथा यह मानवता और उसकी सभी गतिविधियों की उपस्थिति, विकास और सुधार को निर्धारित करता है। 20वीं सदी के अंतिम दशकों में पर्यावरण संबंधी मुद्दे दुनिया भर में मानव जाति के अस्तित्व और कल्याण के लिए एक प्रमुख चिंता का विषय बन गए हैं। अब समय आ गया है कि हम सभी जीवों को "जीवन की स्थिरता" प्रदान करने के लिए एक अनुकूल वातावरण बनाएं, चाहे हमारी गतिविधियाँ कुछ भी हों। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उन्नति और औद्योगीकरण ने कई लाभ प्रदान किए हैं, साथ ही साथ प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ है और इसके साथ ही वायु, जल और भूमि के प्रदूषण की समस्या भी आई हैं। इस प्रस्तुत आलेख में पर्यावरण से संबंधित विभिन्न भारतीय विधानों को संक्षेप में रेखांकित करने का प्रयास किया गया है, जो मुख्य रूप से भारत में पर्यावरण की रक्षा और सुधार के लिए अधिक प्रासंगिक हैं।

मुख्य शब्द :-
पर्यावरण, जनहित याचिका, प्रदूषण, प्रकृति,न्यायपालिका, संविधान, आदि।

परिचय :-

तेजी से आगे बढ़ती प्रौद्योगिकी और तेजी से बढ़ती आर्थिक प्रणाली से लैस आधुनिक सभ्यता वायु, जल और मिट्टी के प्रदूषण का कारण बनने वाली अपनी ही गतिविधियों से बढ़ते खतरे में है। प्राचीन भारत में, पहाड़ों, नदियों, पेड़ों आदि को महत्व और श्रद्धा दी जाती थी और भारतीय पौराणिक कथाओं, लोककथाओं, कला और संस्कृति आदि में निहित आस्था का मूल आधार प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और संवर्धन की अवधारणा थी। भारतीय संस्कृति और विरासत हमें यह समझने में मदद करती है कि प्राचीन भारतीय जातियाँ प्रकृति का सम्मान करती थीं और प्रकृति की अखंडता को नुकसान पहुँचाए बिना मानव लाभ की संभावनाओं को बढ़ाती थीं।

पर्यावरण जनहित याचिका का उद्देश्य आम जनता को पर्यावरण के मुद्दों पर अपनी शिकायत व्यक्त करने में सहायता करना है। पर्यावरण पर इस नए दृष्टिकोण का उपयोग जनता, स्वयंसेवकों, निजी क्षेत्रों और अन्य हितधारकों को भाग लेने और अपने पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधनों को प्रदूषण और पारिस्थितिकी तंत्र के विनाश से बचाने के बारे में निर्णय लेने में सक्षम बनाने के लिए किया जाता है। जनहित याचिकाओं का मूल उद्देश्य गरीबों और हाशिए पर पड़े लोगों को न्याय सुलभ कराना है। यह उन लोगों तक मानवाधिकार पहुंचाने का एक महत्वपूर्ण साधन है, जिन्हें अधिकारों से वंचित रखा गया है। समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों द्वारा जनहित याचिका के माध्यम से पर्यावरण के मुद्दे को न्यायालयों के समक्ष उठाया गया है। वकीलों, वकीलों के संघों, पर्यावरणविदों, पर्यावरण संरक्षण और वन संरक्षण के लिए समर्पित समूहों और केन्द्रों, कल्याण मंचों, उपभोक्ता अनुसंधान केन्द्रों ने न्यायालयों के समक्ष पर्यावरण के मुद्दों को सफलतापूर्वक उठाया है। जनहित याचिका ने भारत में अदालतों को इस महान कार्य के लिए जो कुछ भी वे कर सकते हैं, करने के लिए सशक्त बनाकर पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एमसी मेहता बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता की आवश्यकता पर जोर दिया।

वेदों, उपनिषदों, शिल्पियों और अन्य साहित्यों में यह दर्शाया गया है कि मनुष्य किस तरह प्रकृति के साथ पूर्ण सामंजस्य में रहता था। हमारे पूर्वजों ने मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच के बंधन के महत्व को समझा था। वेदों को सभी प्रकार के ज्ञान का स्रोत माना जाता है। सामवेद में ईश्वरीय प्रेम की बांसुरी का उल्लेख करते हुए कहा गया है: "पृथ्वी, समुद्र, आकाश, तारे सभी ईश्वरीय संगीत की कोमल धुनों से एक साथ बुने हुए हैं। इसकी जीवंत प्रतिध्वनि आकाश की अंतहीन छत्रछाया में समय के गलियारों में गूंजती है।" पर्यावरण संरक्षण के बारे में संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी आज की आवश्यकता है, ताकि अधिक से अधिक जन भागीदारी, पर्यावरण जागरूकता, पर्यावरण शिक्षा और लोगों को पारिस्थितिकी और पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए संवेदनशील बनाया जा सके।

प्राचीन शास्त्रों में पृथ्वी को हमेशा "देवी माँ" के रूप में माना जाता रहा है और इस पर रहने वाले सभी प्राणियों सहित मनुष्यों को संरक्षित करने, उनकी रक्षा करने और उन्हें बनाए रखने की इसकी अपार क्षमता के लिए इसका सम्मान किया जाता है। पारिस्थितिकी और पर्यावरण के कानूनी संरक्षण का विचार कौटिल्य के अर्थशास्त्र और अशोक द्वारा अपनाई गई शासन प्रणाली के बारे में लेखन में भी पाया जाता है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा औद्योगीकरण की उन्नति ने निःसन्देह अनेक लाभ प्रदान किए हैं। उन्नति और विकास प्रत्येक अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है, साथ ही यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक है कि पारिस्थितिकी तंत्र को कोई अपूरणीय क्षति न हो। अच्छा पर्यावरण सर्वांगीण

विकास में सहायक होता है तथा खराब पर्यावरण इसके विकास को बाधित करता है, यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जीवों को प्रभावित करता है। अतः इस विचार ने "सतत विकास" के दृष्टिकोण के लिए मार्ग प्रशस्त किया, ताकि औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं को व्यापार के विरुद्ध संतुलित किया जा सके।

भारतीय संविधान के निर्माता इस संबंध में चिंतित नहीं थे, ताकि प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण और सुरक्षा के लिए संवैधानिक आदेश दिया जा सके। पर्यावरण पर वैश्विक स्तर पर हो रहे आंदोलनों ने भारत पर बहुत प्रभाव डाला है। इसलिए, 1972 में स्टॉकहोम, स्वीडन में आयोजित मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के बाद, 42वें संविधान संशोधन द्वारा भारत के संविधान में संशोधन किया गया तथा पारिस्थितिकी और पर्यावरण विषय को अनुच्छेद 48-A और 51-A (g) के माध्यम से पहली बार शामिल किया गया। संविधान के भाग IV में अनुच्छेद 48-A को शामिल करके जिसमें राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत शामिल हैं, राज्य को पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने तथा देश के वन और वन्यजीवों की सुरक्षा करने का संवैधानिक जनादेश दिया गया है। 42वें संविधान संशोधन ने पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने के संवैधानिक दायित्व को केवल राज्य के हाथों में सीमित नहीं किया, बल्कि मौलिक कर्तव्यों के नए शुरू किए गए भाग IV- A में अनुच्छेद 51 A(g) को शामिल करके दायित्व को नागरिकों के स्तर तक भी लाया। इस संशोधन को एक क्रांति माना जाता है, क्योंकि यह न केवल संवैधानिक इतिहास में अपनी तरह का पहला संशोधन था, बल्कि पर्यावरण और उसके संरक्षण के लिए संविधान में बौद्ध और गांधीवादी पर्यावरण नैतिकता को भी मान्यता दी गई है, क्योंकि अनुच्छेद 51-A(g) के तहत भारत के सभी नागरिकों के लिए न केवल प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और सुधार करना बल्कि सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया रखना भी एक मौलिक कर्तव्य बनाया गया है। अनुच्छेद 48-A और 51-A(g) का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि राज्य और उसके नागरिक न केवल पर्यावरण की रक्षा करेंगे बल्कि उसमें सुधार भी करेंगे।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद २१ एक ऐसा मौलिक अधिकार प्रदान करता है जो जीवन के अधिकार की गारंटी देता है। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जीवन के अधिकार में जीवन का अर्थ केवल भौतिक अस्तित्व नहीं बल्कि गुणवत्तापूर्ण जीवन शामिल है। एक स्वास्थ्यकर और स्वच्छ वातावरण स्वस्थ जीवन के अधिकार का एक अभिन्न तत्व है। स्वस्थ वातावरण के बिना मानवीय गरिमा के साथ रहना असंभव है। राज्य सरकार और नगरपालिकाओं का यह संवैधानिक कर्तव्य है, की वो न केवल एक उचित वातावरण सुनिश्चित और सुरक्षित करने के, बल्कि मानव निर्मित और प्राकृतिक पर्यावरण दोनों को बढ़ावा देने और उसके सुरक्षा और सुधार के लिए भी पर्याप्त उपाय करें। जीवन के अधिकार में शामिल हैं: अप्रदूषित हवा का आनंद लेने का अधिकार;पौष्टिक और शुद्ध पेयजल का अधिकार;स्वास्थ्य का रखरखाव, स्वच्छता और पर्यावरण की देखभाल का

संरक्षण; ध्वनि प्रदूषण से मुक्ति का अधिकार; पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए सूचना और सामुदायिक भागीदारी का अधिकार।

42वें संशोधन के द्वारा भारत का संविधान दुनिया के उन बहुत कम संविधानों में से एक बन गया है, जिसमें पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए प्रतिबद्धता को शामिल किया गया है। पर्यावरण के संरक्षण और सुधार को संवैधानिक कानून का दर्जा देकर, "तीसरी पीढ़ी" के मानवाधिकारों को, जो न केवल व्यक्तिगत दृष्टिकोण से बल्कि समुदाय के दृष्टिकोण से भी बहुत महत्वपूर्ण है, भारत के राष्ट्रीय चार्टर में उचित स्थान मिला है। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों और नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों दोनों के तहत इस तीसरी पीढ़ी के मानवाधिकार को शामिल करके, राज्य और उसके नागरिकों पर इस अधिकार को लागू करना अनिवार्य बना दिया गया है। सतत विकास को प्राप्त करने के लिए 1992 में रियो-घोषणा या पृथ्वी चार्टर एक अन्य वैश्विक कदम है। जून, 1992 में रियो-डी-जेनेरियो में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीईडी) आयोजित किया गया। पृथ्वी शिखर सम्मेलन ने निम्नलिखित ठोस उद्देश्यों के साथ प्रमुख पर्यावरणीय रणनीतियों और चुनौतियों की पहचान की।

i) रियो-घोषणा: यह 27 सामान्य सिद्धांतों का एक गैर-कानूनी रूप से बाध्यकारी कथन है। यह पर्यावरण और विकास के लिए सरकारों और अन्य संगठनों और व्यक्तियों की मौलिक जिम्मेदारियों और कार्यों को स्थापित करता है।

ii) एजेंडा-21: यह एक व्यापक कार्य योजना है जो पर्यावरण की रक्षा और दीर्घकालिक सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए सरकार, अंतर्राष्ट्रीय संगठन और अन्य को उठाए जाने वाले कदमों को निर्धारित करती है और इसमें वित्तीय सहायता, प्रौद्योगिकी सहयोग और संस्थागत सुधारों की व्यवस्था शामिल है।

iii) रियो-शिखर सम्मेलन ने दो महत्वपूर्ण वैश्विक समस्याओं को संबोधित करने के लिए दो महत्वपूर्ण सम्मेलनों को अपनाया। एक जलवायु परिवर्तन पर और दूसरा जैविक विविधता पर है।

iv) वन सिद्धांत: शिखर सम्मेलन ने दुनिया के वनों के संरक्षण और उपयोग के लिए सिद्धांतों का एक कथन भी अपनाया।

पर्यावरण के विभिन्न घटकों के बीच घनिष्ठ और जटिल अंतःक्रिया होती है जो प्रकृति की योजना में किसी प्रकार का संतुलन पैदा करती है जिसे आमतौर पर पारिस्थितिक संतुलन कहा जाता है। पारिस्थितिक संतुलन में परिवर्तन प्राकृतिक प्रक्रिया और मुख्य गतिविधियों के माध्यम से लगातार होते रहते हैं लेकिन सिस्टम में खुद को फिर से संतुलित करने की एक निश्चित सीमा तक उल्लेखनीय प्रवृत्ति होनी चाहिए। यह प्रणाली समग्र रूप से मनुष्य के लिए उपयोगी है। शायद यह इस उपयोगिता के कारण है कि अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, मनुष्य पूरी तरह से पर्यावरण पर निर्भर है।

जीवन के अधिकार में पर्यावरण का अधिकार शामिल हैं (भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक निर्णय):

क्षेत्रीय प्रदूषण मुक्ति संघर्ष समिति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,

सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य,एम.सी. मेहता बनाम कमलनाथ,इन री नॉइज पॉल्यूशन,दिल्ली जल बोर्ड बनाम नेशनल कैंपेन फॉर डिग्निटी एंड राइट्स ऑफ़ सीवरज एंड अलाइड वर्कर्स,स्टेट ऑफ उत्तरांचल बनाम बलवंत सिंह चौफाल,एम.सी. मेहता बनाम कमलनाथ,सुशीथा बनाम राज्य तमिलनाडु,त्रिपुरा डाइंग फैक्ट्री ओनर्स एसोसिएशन बनाम नोय्याल रिवर आयकूटर्ड्स प्रोटेक्शन एसोसिएशन,वेल्लोर सिटिजन वेलफेयर फोरम बनाम यूनियन ऑफ इंडिया,एपी प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम प्रो. एम वी नायडू, नर्मदा बचाओ आंदोलन बनाम भारत संघ,एम्. सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया (गंगा प्रदूषण टेनरीज केस के रूप में लोकप्रिय,एम्. सी. मेहता (सार्वजनिक कार्यों के लिए प्रसिद्ध एक सक्रिय नागरिक) द्वारा चर्मशोधनशालाओं के खिलाफ जब तक कि वो जल प्रदूषण को रोकने के लिए आवश्यक उपचार संयंत्र स्थापित नहीं कर लेते उन्हें पवित्र नदी गंगा में अपने व्यापार अपशिष्टों को छोड़ने से रोकने हेतु एक जनहित याचिका दायर की गई थी। चर्मशोधनशालाओं को कई वर्षों से उनके अनुपचारित अपशिष्ट जल के नदी में प्रवाहित होने से पहले उपचारित करने के लिए प्राथमिक उपचार संयंत्र स्थापित करने की दिशा में आवश्यक कदम उठाने के लिए कहा गया था। नदी में बहाए जाने वाले घरेलू सीवेज के पानी की तुलना में चर्मशोधनशालाओं से निकलने वाले अपशिष्ट को दस गुना अधिक हानिकारक माना गया है। अदालत ने उन चर्मशोधनशालाओं को बंद करने का आदेश दिया जो प्राथमिक उपचार संयंत्रों को स्थापित करने की दिशा में कदम उठाने में विफल रहे क्योंकि इससे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार का उल्लंघन होता है।

पर्यावरण संरक्षण के लिए भारत में उपलब्ध उपायों में दंडात्मक और वैधानिक कानूनी उपाय शामिल हैं। जैसे, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 19 के अंतर्गत लाई गई गतिविधि, क्षेत्र 133, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अंतर्गत एक गतिविधि,और भारतीय दंड संहिता, 1860 के तहत खुले तौर पर उत्तेजित करने के लिए धारा 268 के तहत लाई गई गतिविधि, इसके अलावा भारत के सर्वोच्च न्यायालय में अनुच्छेद 32 के तहत या उच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका दायर की जा सकती है।

न्यायालयों की भूमिका पर्यावरण संरक्षण के लिहाज से अति महत्वपूर्ण हैं और न्यायिक अवधारणाओं को आधार में रखते हुए पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में हमारे लिए न्यायालयों का महत्व अति महत्वपूर्ण है। सरकारी प्रयासों को न्याय क्षेत्र का छात्र अन्यत्र संकटों से बचाता है, और लोकतन्त्र के एक महत्वपूर्ण स्तम्भ की भूमिका को सार्थक सिद्ध किया। भारत संसार के उन थोडे से देशों

में से एक है जिनके संविधानों में पर्यावरण का विशेष उल्लेख है। भारत ने पर्यावरणीय कानूनों का व्यापक निर्माण किया है तथा हमारी नीतियाँ पर्यावरण संरक्षण में भारत की पहल दर्शाती हैं।

निष्कर्ष :-

सर्वोच्च न्यायालय वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण के लिए विभिन्न कानूनी प्रावधानों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहा है। इस तरह, न्यायपालिका उन कमियों को भरने की कोशिश करती है जहाँ कानून में कमी है। न्यायिक सक्रियता द्वारा भारत में किए गए ये नए नवाचार और विकास देश की मदद करने के लिए कई रास्ते खोलते हैं। भारत में, अदालतें पर्यावरण अधिकारों की विशेष प्रकृति के बारे में बेहद सजग और सतर्क हैं, यह मानते हुए कि प्राकृतिक संसाधनों के नुकसान को फिर से नहीं बढ़ाया जा सकता है। कुछ सिफारिशें हैं जिन पर विचार करने की आवश्यकता है। पर्यावरण संबंधी समस्याओं के अभिनव समाधान की तलाश में भारतीय न्यायपालिका ने जनहित याचिका के माध्यम से पारिस्थितिकी और पर्यावरण की रक्षा के लिए कई निर्देश जारी किए हैं। यह अधिकार क्षेत्र न्यायिक रचनात्मकता और शिल्प कौशल द्वारा बनाया और तैयार किया गया है। ये उपाय पर्यावरणीय शिकायतों के निवारण के लिए शक्तिशाली और त्वरित उपकरण साबित हुए हैं क्योंकि वे उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय तक सीधी पहुंच प्रदान करते हैं और सामान्य अपीलों के खर्च और देरी को खत्म करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. पी.एस.एन. प्रसाद, "पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण कानून भारतीय परिदृश्य का अवलोकन" एआईआर 1999 वॉल्यूम। 26 जर्नल सेक्शन पी. 121.
2. डॉ. एन. महेश्वर स्वामी, "पर्यावरण प्रदूषण से धरती माता का रक्षक सर्वोच्च न्यायालय: न्यायिक सक्रियता के माध्यम से इसके संदेश का सारांश" आंध्र लॉ टाइम्स 1999 जर्नल पी. 13.
3. एच.एम. सीरवाई, भारत का संवैधानिक कानून: एक आलोचनात्मक टिप्पणी 2019 (1993).
4. एस. शांताकुमार, पर्यावरण कानून एक परिचय, पीपी 122, 123, चेन्नई: सूर्या प्रकाशन, (2001).
5. डॉ. जय जय राम उपाध्याय, पर्यावरण कानून, इलाहाबाद: केंद्रीय विधि एजेंसी, (2005).
6. सुमितमलिक, *पर्यावरण कानून* , ईस्टर्न बुक कंपनी लखनऊ.
7. गुरदीप सिंह, भारत में पर्यावरण कानून, मैकमिलन, भारत, 2005.

shaileshrspl.sp@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 133-136
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मूर्ति कला का विकास

विक्रम सिंह यादव, असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास,
राजकीय कन्या महाविद्यालय भिवाड़ी खैरथल -तिजारा।

मूर्ति कला की पृष्ठभूमि

मूर्ति कला एक ऐसा त्रि-आयामी टुकड़ा है जो मूर्ति कला की विभिन्न घटकों का योगात्मक व घटाओ तकनीकी का उपयोग से बनाया जाता है। इनमें मिलने वाली वस्तुएं लकड़ी, मिट्टी, पत्थर व अन्य धातुओं का उपयोग किया जाता है। मूर्ति कला मिट्टी प्लास्टर व मोम फाइबर ग्लास की धातुओं का आदि उपयोग किया जाता है। अक्सर इनका उपयोग सार्वजनिक व निजी स्थानो को सुंदर बनाने के लिए किया जाता है और अपनी आध्यात्मिकता को मूर्ति से जोड़कर अपना आदर्श समझा जाता है। सर्वप्रथम मूर्ति कला का उद्धभव जर्मनी में हुआ था जो लोवेनमेन्श मूर्ति और होले फेल्स की वीनस की मूर्ति विश्व की सबसे पुरानी मूर्तियां है जो 35000 से 40000 वर्ष पुरानी है सबसे पुरानी ज्ञात आदमकद मूर्ति तुर्की में पाई जाती है जो उर्फा मैंन की थी जो 9000 ईसा पूर्व के इतिहास की मूर्ति है।

मूर्ति कला के प्रकार व तत्व

मूर्ति कला के मूल तत्व चार प्रकार के होते हैं जिसमें रिलीफ मूर्ति कला, व योगात्मक मूर्ति कला, व घटावात्मक मूर्ति कला और कास्टिग मूर्ति कला के नाम से जाना जाता है। जिसमें मूर्ति कला में आयतन, सतह, छापा, रस, और प्रकाश आदि सहायक तत्व माने जाते हैं। मूर्ति कला का भारतीय इतिहास की दृष्टि से मानव मूर्ति कला नवपाषाण काल से प्रारंभ माना जा सकता है जो मात्र पत्थर की मूर्ति बनाई जाती थी।

भारतीय कला में मूर्ति कला का उद्धभव

भारतीय लोग अपनी पारलोकिक इच्छा शक्ति को मूर्ति के माध्यम से प्राप्त करने की चेष्टा रखते थे। सुनिश्चित रूप से हमारे यह मूर्ति कला सिंधु सभ्यता में मूर्ति कला की शुरुआत हुई जो 2500 से 1800 ईसा पूर्व सिंधु घाटी सभ्यता का विकास के क्रम में ज्ञात है। यहां ज्यादातर मूर्ति टेरा कोटा की बनी हुई थी मूर्तियां देवी व प्राकृतिक शक्ति जैसे सूर्य, चंद्रमा, पीपल, स्वास्तिक चिन्ह, आदि मूर्ति की शुरुआत मानी जाती है। कुछ मूर्ति तांबे व कास्य की

भी मिली है, कला के क्षेत्र में मूर्ति कला एक निश्चित क्रम जो मोरी युग में भी यक्ष - यक्षिणी की मूर्तियां पर्याप्त मात्रा में बनी थी। भारतीय इतिहास में विशाल मात्रा में मूर्ति का निर्माण हुआ जो कुषाण युग से मानी जाती है इस युग में नई शैली की शुरुआत हुई थी ।

मूर्ति कला की शैली के प्रकार

भारतीय इतिहास में मूर्ति कला की शैली के तीन प्रकार बताए गए हैं जिसमे गांधार , मथुरा व अमरावती शैली प्रमुख मानी जाती है।

गांधार मूर्ति कला शैली

गांधार कला का नाम उत्तर पश्चिमी भारत का भाग गंधार प्रदेश के कारण जाना जाता है। बुद्ध की मूर्ति सुंदर मूर्ति इस काल में बनी थी जो प्राचीन भारतीय कला में उल्लेख हुआ है तथा वैदिक व संस्कृत साहित्य में भी मिलता है। गांधार कला की मूर्ति प्रथम सदी से चौथी सदी के मध्य गांधार कला की विषय-वस्तुएं हिंदुस्तान की है तथा कला शैली का विकास यूनानी और रोमन का प्रभाव था वस्तुत: इसे ग्रीको -रोमन कला शैली भी कहा जाता है। इस कला में सफेद में काले पत्थर का प्रयोग किया गया है। गांधार कला को बौद्ध धर्म की महायान शाखा में प्रोत्साहन दिया । इनकी मूर्तियों में मांसपेशियां स्पष्ट दिखाई देती है और आकर्षक वस्त्रो की बनावट व सलवटे भी एकदम दर्पण की तरह दिखाई पड़ती है। शिल्पियों ने वास्तविकता पर कम ध्यान दिया है तथा सौंदर्य को मूर्त रूप अधिक देने का प्रयासरत किया है । यह मूर्तियां यूनानी देव अपोलो की जैसी प्रतीत होती है गांधार कला में मूर्ति में आभूषण, अलंकारिकता का सुंदर मिश्रण शिल्पकार द्वारा किया गया है। सिर के बाल भी पीछे की ओर मोड़ गए हैं एक जुड़ा बना दिया है जिससे मूर्तिया संजीव व भव्य लगती है कुषाण युग के कनिष्क का काल में इस शैली का स्वर्ण काल था । तक्षशिला गांधार कला का प्रमुख केंद्र था तथा तक्षशिला को भद्राशिला भी कहते थे यह सिंधु नदी के पूर्व में गांधार प्रदेश था । इस कला के काले स्लेटी पत्थर की मूर्ति के लिए प्रसिद्ध हुआ इस मूर्ति कला गांधार का नाम अर्थवेद, ऐतरेय व शतपथ ब्राह्मण में गांधार प्रदेश का नाम है इस कारण इसे गांधार कला के नाम से आज भी हम जानते हैं। वस्तुत: गांधार मूर्ति कला में निर्जीविता भी ज्ञात है उनमें कलाकार की सच्चाई का भाव दृष्टिगोचर का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। डॉक्टर निहार रंजन के अनुसार ऐसा मालूम होता है कि किसी सिद्ध हस्तकला विशेषज्ञ द्वारा निर्मित न होकर मशीनों के द्वारा तैयार किया हो ।

मथुरा की मूर्ति कला

मथुरा मूर्ति कला जैन धर्म का प्राचीन कला केंद्र था । यह मूर्ति कला तीसरी सदी ईसा पूर्व से 12वीं सदी ईसा पूर्व के मध्य डेढ़ हजार वर्षों तक मथुरा कला का विकास होता रहा है । भारतीय इतिहास में मथुरा स्थान का महत्व है । कुषाण युग में मथुरा विद्यालय कला के क्षेत्र में स्वर्ण काल था सबसे प्रमुख कार्य इस युग में बुद्ध को मानक प्रतीक के रूप में पहचान हुई थी मथुरा के शिल्पकार व मूर्तिकार के कलाकार भी गांधार कला से प्रभावित थे । जैन तीर्थ करो

और हिंदू चित्रों के अभिलेख भी मथुरा कला के प्रमुख अंग हैं । इतिहास की दृष्टि से यह ज्ञात है की मधु नामक दैत्य हुआ था उसने मथुरा का निर्माण किया और यह नगरी बहुत ही सुंदर व भव्य थी इस कला को लोक कला शैली के रूप में भी ज्ञात है । उनकी मूर्ति कला आभूषण चिपका कर लगाए गए थे मौर्य कालीन मिट्टी की मूर्ति का अलंकरण भी ज्ञात है । मथुरा में लाल पत्थरो की मूर्ति का निर्माण हुआ जो बोद्धिसत्व की मूर्ति भी ज्ञात है तथा महावीर स्वामी की मूर्ति भी पहली बार मथुरा कला में ही श्री गणेश हुआ था यक्ष-यक्षिणी तथा कुबेर की मूर्तियां भी मथुरा मूर्ति कला से ज्ञात है । रौलिन्सन के अनुसार उसी समय कला का एक विशुद्ध व देशी सम्प्रदाय जिसका सांची व भरहुत से उत्पत्ति हुई थी मथुरा, बेसनगर व भीटा भी अन्य केंद्र के रूप में ज्ञात है ।

अमरावती मूर्ति कला

यह मूर्ति कला शैली की जन्म भूमि कृष्णा व गोदावरी नदी के मुहाने पर अमरावती के गंटूर जिला में इस मूर्ति कला शैली का उद्धभव ज्ञात है । अमरावती मूर्ति कला शैली गांधार व मथुरा मूर्ति कला शैली को जोड़ने तथा पल्लव व गुप्त की मूर्ति कला के बीच का संबंध दिखाई पड़ता है । इस मूर्ति कला शैली में धर्म व त्याग की भावना का प्रभाव कम है । किन्तु कलाकारों ने कला के लिए कला को आदर्श प्रस्तुत किया है । अमरावती मूर्ति कला में भाव भंगिमा को जोड़ने में असफल है तथा मूर्ति कला में आभूषण की भरमार व अधिकता दिखाई देती है तथा वैराग्य और भक्ति का भाव भी प्रदर्शित होता है । बुद्ध की मूर्ति के समक्ष नतमस्तक, उपासक व उपासिकाओ का दृश्य बहुत सुंदर प्रतीत होता है यह स्वदेश शैली है जो सफेद संगमरमर से मूर्तियों को बनाने का कार्य हुआ था । गतिशील आकृति पर बल दिया गया था मूर्तियों में त्रिभंग आसन का अत्यधिक उपयोग हुआ है । इस मूर्ति कला के तत्वों में स्थानीयता का प्रभाव मिलता है ।

निष्कर्ष

जिस वस्तु का हमें ज्ञान हो जाता है उसकी रचना भी हो जाती है । उन सबको मूर्ति कहते हैं । जो मूर्ति का ध्यान मनुष्य के मन - भावन के लिए अत्यंत आवश्यक है, बिना मूर्ति से हमारा मन क्षण भर भी एक जगह नहीं रह सकता है। मूर्ति कला विश्व की कलाओं में सबसे श्रेष्ठ बताई है जिसमें चित में अंकित मूर्ति को चितमूर्ति कहते हैं । शिल्पकार के मन के भाव व मानसी दृष्टि ज्ञात होती है । कला का एक मूर्त रूप जो एक प्रतीक व संकेत मात्र होता है जिससे देश व काल की परिधि से विजडित नहीं होता है जो अमृत व रसवान है । मूर्ति से ध्यान करने वाला योगी ध्यान करता है वास्तु कला के समान मूर्ति कला भी अपनी अलग-अलग पहचान रखती है जिसमें उस जनप्रदेश की भावना संस्कृति व सूक्ष्म दर्शी ज्ञान का प्रार्दुभाव दिखाई पड़ता है मूर्तिकला के सौंदर्य से ज्ञात होता है कि उस समय मानव सौंदर्य का महत्व को भी जानते थे । वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार सर्वप्रथम मथुरा कला में मूर्ति का निर्माण

हुआ जो बौद्ध मूर्तियां थी । जिनका आधार धार्मिक था और मूर्ति तब तक नहीं बनाई जाती जब तक उसका कोई धार्मिक मांग ना हो । मूर्ति कल्पना व धार्मिक भावना की तुष्टि के लिए बनाई जाती है इसलिए भारतीय संस्कृति को आध्यात्मिक भावना की खुराक हमें मूर्ति से मिलती है जो सनातन धर्म का एक स्पष्ट गुण बताया है । जिससे हमारी आत्मा को मूर्ति के द्वारा आध्यात्मिक भोजन की प्राप्ति भी ज्ञात है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. **भारतीय कला** :- **वासुदेव - शरण अग्रवाल**, पृथवी प्रकाशन वाराणसी पृष्ठ संख्या 8 ,224, 225 ,274, 276
2. **भारतीय संस्कृति के मूल आधार :- शर्मा और व्यास** प्रकाशक पंचशील प्रकाशन जयपुर पृष्ठ संख्या 229, 230, 231
3. **प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति** :- **के सी श्रीवास्तव** प्रकाशन यूनाइटेड बुक डिपो 21 यूनिवर्सिटी रोड इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 353 ,356, 433
4. **भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास :- डॉ कृष्ण गोपाल शर्मा व डॉक्टर हुकम चंद जैन** प्रकाशक राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर पृष्ठ संख्या 57 ,246, 318
5. डिजिटल मीडिया विकिपीडिया आदि

MOB.- 9950711372

Mail.- vikramsinghyadav89@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 137-143
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नाथपन्थीय साहित्य में सामाजिक समरसता

सुनील कुमार पाण्डेय शोध छात्र, संस्कृत
डॉ0 राममनोहरलोहिया अवध विश्वविद्याल, अयोध्या (उ0प्र0)

शोध सारांश–

चौरासी सिद्धों की सूची में कुछ नाथों के नाम भी मिलते हैं। इसीलिए नाथों का संबंध इन बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों से माना जाता है। हालाँकि सिद्ध कवि देश के पूर्वी हिस्से में रह रहे थे, जबकि नाथों का निवास स्थान देश के पश्चिमोत्तर हिस्से मे (राजपूताना और पंजाब) में बताया जाता है। नाथ पंथ या सम्प्रदाय को ''सिद्धमत'', ''सिद्धमार्ग'', ''योगमार्ग'', ''योग सम्प्रदाय'' तथा ''अवधूत मत'' भी कहा गया है। डॉ0 रामकुमार वर्मा के अनुसार– ''सिद्धों की विचारधारा और उनके रूप को लेकर ही नाथ वर्ग ने उनमें नवीन विचारों की प्रतिष्ठा की और उनकी व्यंजना में उनके तत्त्वों का सम्मिश्रण किया।''

नाथों की संख्या नौ मानी जाती है। इन्हें 'नवनाथ' के नाम से जाना जाता है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं–आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ। नाथपंथी अपनी गुरू परंपरा शंकर (शिव) से आरंभ करते हैं। शंकर इस प्रकार आदिनाथ कहलाए। एक जनश्रुति के अनुसार शंकर ने सर्वप्रथम पार्वती को योग का रहस्य बतलाया था। मत्सेन्द्रनाथ या मच्छंदरनाथ ने नदी की मछली का रूप धारण कर यह संवाद सुन लिया। इस कारण शंकर ने उन्हें इन्द्रिय–सुख में बँध जाने का श्राप दे दिया। बाद में मत्स्येन्द्रनाथ के ही शिष्य गोरखनाथ ने अपने गुरू का उद्धार किया। वास्तव में इस जनश्रुति से हमें गोरखनाथ द्वारा अश्लील तांत्रिकता का विरोध कर उसके स्थान पर ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय संयम पर आधारित योगमार्ग को प्रतिष्ठित करने का संकेत मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आदिनाथ शिव से शुरू हुई परम्परा को मत्स्येन्द्रनाथ ने आगे बढ़ाया और उनके शिष्य गोरखनाथ ने इसे एक सम्प्रदाय या पंथ के रूप में प्रतिष्ठित किया।

कुंजी शब्द : प्रस्तावना, नाथ सम्प्रदाय, आदिकालीन नाथ साहित्य, वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु, भाषा–शैली, प्रमुख नाथ कवि, परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, निष्कर्ष।

प्रस्तावना–

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता पाठ एवं आलोचना से संबंधित यह तीसरी इकाई है। इसके पहले की दो इकाइयों में आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं एवं उनके साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। नाथ पंथ या सम्प्रदाय को सिद्धों की परम्परा का ही संशोधित रूप माना जाता है। प्रस्तुत इकाई में नाथों की साधना पद्धति और मान्यताओं का परिचय देते हुए आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं और प्रमुख नाथ कवियों का परिचय दिया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं से नाथ सम्प्रदाय की भिन्नता, नाथ साहित्य की प्रवृत्तिगत एवं भाषागत विशेषताओं तथा परवर्ती हिन्दी साहित्य पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को जानेंगें।

नाथ सम्प्रदाय

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के नाम सिद्धों की सूची में भी मिलते हैं। लेकिन गोरखनाथ सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान साधना पद्धति के विरोधी थे। नाथ सम्प्रदाय दार्शनिकता की दृष्टि से शैवमत के अंतग्रत है और व्यावहारिकता की दृष्टि से पतंजलि के योग से संबंधित है। गोरखनाथ ने इनके मेल से हठयोग रूपी साधना–पद्धति का प्रवतन किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, शारीरिक–मानसिक पवित्रता

को अपनाने तथा मांस–मदिरा का त्याग करने की शिक्षा दी। उनका मानना था– **''जोई–जोई पिंडे सोई ब्रहमांडे'',** अर्थात जो शरीर में है वहीं ब्रहमांड है। इस प्रकार गोरखनाथ नाथ मत या सम्प्रदाय के प्राणदाता कहे जा सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी क अनुसार– ''शकरार्चा के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित व्यक्तित्व भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने–कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आंदोन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।''

नाथ सम्प्रदाय ने सिद्ध सम्प्रदाय की रूढ़ियों का खंडन करते हुए ही अपनी साधना पद्धति विकसित की। नाथों ने सदाचार का आश्रय लेकर काया (शरीर) में ही तीर्थ की अनुभूति की। गोरखनाथ ने पाखंडों का खंडन किया और मंत्रों को व्यर्थ बताया। योग द्वारा शरीर का कायाकल्प करना नाथों की साधना का आवश्यक अंग रहा है। क्योंकि जब तक शरीर चैतन्य और तेजयुक्त नहीं होगा, तब तक अविरत साधना नहीं हो सकती है। नाथ का अर्थ मुक्तिदान करने वाला माना गया है। जो स्वयं मुक्त होगा वही मुक्ति का दान कर पाएगा। इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में संसार के बंधनों से मुक्त होने की विधि बताई गई है। संसार के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषयों से तभी मुक्ति मिल सकती है, जब मन में वैराग्य की भावना स्थिर हो। यह वैराग्य–भाव गुरू की सहायता से ही उत्पन्न हो सकता है। इसके बाद योगी इन्द्रिय–निग्रह, प्राण–साधना और मन–साधना की ओर अग्रसर होता है। गोरखनाथ ने इन्द्रियों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण नारी को बताया और अपने अनुयायियों के लिए नारी से दूर रहने का कड़ा नियम बनाया। इसके बाद प्राण–साधना का स्थान है, अर्थात प्राण–वायु के नियमित संचालन का अभ्यास। मन–साधना का अर्थ है संसार के विभिन्न आकर्षणों की ओर से मन को खींचकर अपने अन्तःकरण की ओर उन्मुख कर लेना। इन सब की सिद्धि के बाद योगी में नाड़ी–संचालन और कुडलिनी–जागरण की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों और नाथों में अंतर था। सिद्ध निरीश्वरवादी थे, जबकि नाथ ईश्वरवादी थे। हालांकि नाथों के ईश्वर सगुण न होकर निर्गुण निरंजन थे। नाथों ने जाति–पांति का भेद नहीं माना। गोरखनाथ स्वयं ब्राह्मण थे, लेकिन उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को नहीं माना। मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना होने पर हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। ऐसे जाति– परिवर्तित गरीब मुसलमानों में बहुत से लोगों ने नाथ पंथ को अपना लिया। इस तरह नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की नई और अनोखी जाति बन गई जिसके सदस्य न तो हिन्दू थे, न ही मुसलमान। इस युगीन प्रक्रिया ने धार्मिक सामाजिक भेदभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नाथों ने वर्णगत ऊँच–नीच, जातिगत भेदभाव और धर्मगत विभेद को अस्वीकार किया।

नाथ मत के व्यापक प्रचार–प्रसार होगने का कारण यह भी था कि नाथों ने वज्रयानी सिद्धों के तंत्र में मौजूद वीभत्स आचारों को नहीं अपनाया। उन्होंने तंत्र जन्य वीभत्स चमत्कारों से विचलित जनता को ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास रूपी नए विकल्प दिए। इसके अलावा, नाथों के ईश्वर भले ही निर्गुण या निरंजन थे, लेकिन उनमें एक सर्वोच्च सत्ता के प्रति आस्था थी। इस कारण भी देश के पारंपरिक रूप से आस्थावान लोगों का झुकाव नाथ सम्प्रदाय की ओर हुआ। नाथ ईश्वर की स्थिति घट (शरीर) में मानते थे। वे भक्ति विरोधी थे। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा– **''गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।''** लेकिन कबीरदास ने गोरखनाथ के प्रति आदर व्यक्त किया है। इससे पता चता है कि नाथों की मान्यताओं की विरासत आगे चलकर कबीर आदि निर्गुण संतों के पास गई। डॉ0 रामकुमार वर्मा ने नाथ मत के प्रचार–प्रसार में गोरखनाथ की भूमिका के विषय में लिखा है–''गोरखनाथ ने नाथ–सम्प्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारण उपस्थित की गई वहाँ दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर कठोर आघात भी किया गया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।'' नाथ पंथ या सम्प्रदाय के अनुयायी 'कनफटे' कहलाते हैं, क्योंकि ये अपने कानों के मध्य भाग को फाड़कर उसमें बड़ा छेद कर लेते हैं। वे इसमें स्फटिक का कुंडल धारण करते हैं। नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की दो शाखाएँ हैं। उत्तर–पूर्वी भारत में रहने वाले अनुयायी गोरखनाथ को अपना गुरू मानते हैं और पश्चिमी भारत में रहने वाले अनुयायी स्वयं को गोरखनाथ के ही शिष्य धर्मनाथ की परम्परा में मानते हैं।

नाथ सम्प्रदाय के उपदेशों का प्रभाव हिंदुओं के साथ–साथ मुसलमानों पर भी पड़ा था। नाथपंथ के इस प्रभाव की निरंतरता के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है– ''अब भी इस प्रदेश में बहुत से मुसलमान जोगी गेरूआ वस्त्र पहने, गुदड़ी की लंबी झोली लटकाऐं, सारंगी बाजा बजाकर 'कलि में अमर राजा भरथरी' के गीत गाते फिरते हैं और पूछने पर गोरखनाथ को अपना आदि गुरू बताते हैं। ये राजा गोपीचंद के भी गीत गाते हैं जो बंगाल में प्रसिद्ध है।

आदिकालीन नाथ साहित्य

आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप से परिचित होने के लिए इसे जानना आवश्यक है। इस खंड में नाथ साहित्य के वर्ण्य विषयों या काव्यवस्तु, भाषा–शैली तथा प्रमुख नाथ कवियों का परिचय दिया गया है।

वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु

आदिकालीन नाथ साहित्य में मुख्यतः इस पंथ या सम्प्रदाय के सैद्धांतिक मतों का परिचय मिलता है। यह स्वाभाविक है कि योग साधना में रत् नाथ योगियों के लिए शुद्ध साहित्य या साहित्य संस्कार का कोई मतलब नहीं था। इसीलिए उनके साहित्य को इस दृष्टि से देखना उचित नहीं।

नाथों ने तीन बातों पर जोर दिया है– 1– योगमार्ग, 2– गरू महिमा, 3– पिंड ब्रह्मांडवाद। बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की साधना लोकबाह्य और अमांगलिक है, जबकि नाथ योगियों का हठयोग आंतरिक है। गुरू के बिना हठयोग की जटिल प्रक्रिया संभव नहीं, इसलिए नाथ साहित्य में गुरू की महिमा गायी गई है। नाथ साहित्य में गुरू महिमा, इंद्रिय–निग्रह, प्राण–साधना, वैराग्य, मन–साधना, कुंडलिनी जागरण, शूनय समाधि आदि की चर्चा मिलती है। इसमें ईश्वरोपासना के बाहरी तौर–तरीकों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है और घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। मन और आचरण की शुद्धता अर्जित करके शून्य–समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार करना नाथों का परम लक्ष्य था। गोरखनाथ के अनुसार योगी का चित्त विकार के साधन होने पर भी विकृत नहीं होता–

नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।

नाथ साहित्य में साधना–पद्धति के निरूपण के अलावा उन सभी रूढ़ियों का खंडन भी है जो सिद्धों के यहाँ पाया जाता है। नाथों की कविता में किसी एक सम्प्रदाय या धर्म और जाति की जगह मानव–मात्र की बात की गई है। साथ ही, इसमें वेद–शास्त्र आदि के अध्ययन को व्यर्थ तथा तीर्थाटन आदि को निष्फल बताया गया है। नाथ साहित्य की इन विभिन्न प्रवृत्तियों का परिचय देने वाले पाठों का अध्ययन किया गया है।

भाषा–शैली

नाथ पंथ का अधिक प्रचार–प्रसार देश के पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् राजपूताना और पंजाब की ओर अधिक हुआ। इसीलिए जब मत के प्रचार के लिए देशी भाषा में रचनाएँ की गई तो उस क्षेत्र में प्रचलित भाषा का ही व्यवहार किया गया। साथ ही, नाथ कवि अपनी बात कहने के क्रम में मुसलमानों को भी ध्यान में रखते थे जिनकी बोली दिल्ली के आसपास प्रचलित खड़ी बोली थी। इसके कारण नाथ कवियों की बानी पर इस बोली का भी असर मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में लिखा है– ''इस प्रकार नाथपंथ के इन जोगियों ने परंपरा साहित्य की भाषा या काव्यभाषा से, जिसका ढ़ाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था, अलग एक ''सधुक्कड़ी'' भाषा का सहारा लिया जिसका ढ़ांचा कुछ खड़ी बोली लिए राजस्थानी था।'' यहाँ 'सधुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा नहीं है, बल्कि मिश्रित भाषा है। आप जानते हैं कि साधु–संत प्रायः भ्रमण करते रहते हैं। इसीलिए उनकी भाषा पर विभिन्न क्षेत्रों या प्रदेशों की भाषा की रंगत चढ़ जाती है। इसी कारण ऐसी भाषा को ''सधुक्कड़ी'' भाषा कहते हैं। आगे चलकर कबीर की भाषा का स्वरूप भी कुछ ऐसा ही मिलता है। इसके अलावा, नाथपंथी योगी तथा अनुयायी जहाँ–जहाँ गए वहाँ के लोगों के बीच नाथ गुरूओं के उपदेशों का प्रचार करने के क्रम में उन्होंने स्थानीय शब्दों और भाषिक प्रयोगों का भी सहारा लिया। डॉ0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने बताया है कि गोरखनाथ की रचनाएँ आज जिस रूप में मिलती हैं उनमें इसी कारण गुजराती, मराठी जैसी अन्य भाषाओं के भी प्रभाव मौजूद हैं।

नाथ कवियों ने प्रायः दोहा छन्द में अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त किया है। उन्होंने राग–आधारित गेय पद भी रचे, जिन्हें ''शब्द'' या ''सबदी'' कहा जाता है। सैद्धांतिक निरूपण के लिए नाथों की कविता में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। नाथ कवियों ने अपनी अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए अचरज और विसंगतियों से युक्त कथन–शैली अर्थात् उलटबाँसी का भी प्रयोग किया। जो कुछ लोग या जनसामान्य में विश्वसनीय ढंग से कहा जाता है, उसे उलटकर कहना ही उलटबाँसी है। उलटबाँसियों में असामान्य प्रतीकों का प्रयोग होता है, जिनका अर्थ खुलने पर ही ये समझी जा सकती है।

प्रमुख नाथ कवि

गोरखनाथ ही नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक माने गए हैं। नाथ सम्पदाय के अन्य कवियों का भी साहित्य मिलता है, लेकिन उनमें ज्यादातर गोरखनाथ की बातों का ही दुहराव मिलता है। गोरखनाथ के अलावा कुछ अन्य नाथ कवियों के नाम हैं– मत्स्येन्द्रनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचंदनाथ आदि। यहां कुछ कवियों का परिचय दिया गया है–

मत्स्येन्द्रनाथ–

मत्स्येन्द्रनाथ को मीननाथ और मछंदरनाथ भी कहा गया है। इन्होंने योग की शिक्षा आदिनाथ (शिव) से प्राप्त की थी। कहा जाता है कि शिवजी योग–विद्या का रहस्य पार्वती को सुना रहे थे तो इन्होंने मछली का रूप धारण करके इसे सुन लिया। इसी कारण उनका यह नामकरण हुआ। ये गोरखनाथ के गुरू थे। यह भी कहा जाता है कि चोरी से योग–विद्या का रहस्य जान लेने के कारण शिवजी ने इन्हें मोहपाश में बंध जाने का शाप दिया था, जिससे इनके शिष्य गोरखनाथ ने ही उन्हें मुक्त किया। गोरखनाथ ने श्रद्धा और आस्था से अपने गुरू की भक्ति की थी, इसलिए गुरू ने उन्हें योग के प्रथम अधिकारी और आचार्य माने जाने का आशीर्वाद दिया था। इनकी कविता का उदाहरण है–

यों स्वारथ को जीवड़ो, स्वारथ छाड़ि न जाय।
जब गोरख किरपा करी, म्हारो मनवो समझायो आय।।
जोगी सोई जोगी रे, जुगत रहै उदास।
तात नीरं जण पाइया, यो कहे मत्स्येन्द्रनाथ।।

गोरखनाथ –

गोरखनाथ की जन्मतिथि और जन्मस्थान के विषय में विद्वानों की अलग–अलग राय है। राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय 845 ई0 माना है और हजारी प्रसाद द्विवेदी भी इन्हें नवीं सदी का ही मानते हैं। डॉ0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ को ग्यारहवीं सदी के मध्य का माना है। डॉ0 रामकुमार वर्मा का भी मानना है कि गोरखनाथ तेरहवीं सदी के मध्य में हुए। इसी प्रकार कुछ विद्वान गोरख को दक्षिण देश का निवासी बताते हैं, कुछ नेपाल का और कुछ पंजाब का। सामान्यतः उन्हें कांगड़ा–निवासी माना जाता है, जहाँ पर उनके प्रभाव अब भी मौजूद हैं।

डॉ0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार गोरखनाथ का उत्तराखंड से भी संबंध रहा है। उन्होंने दक्षिण गढ़वाल के 'घौलया उढ़यारी' (धवल गुहा) नामक गुफा में तपस्या कर सिद्धि प्राप्त की थी। इसलिए गढ़वाल के मंत्र–साहित्य पर भी गुरू गोरखनाथ का काफी प्रभाव रहा है। प्राचीन जनश्रुतियों में गोरखनाथ को सर्वशक्तिशाली मानते हुए उनमें देवत्व की स्थापना की गई है। उन्हें गोरखा राज्य का संरक्षण भी माना जाता है।

गोगरखनाथ ने सिद्धों की पूर्वप्रचलित भोगप्रधान साधना पद्धति का विरोध कर संयम पर आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्धति को प्रतिष्ठित किया था। उस युग के साधु–संतों में भ्रमण या देशाटन की प्रवृत्ति रही थी। गोरखनाथ ने भी पंजाब, गुजरात, कठियावाड़, उत्तर प्रदेश, नेपाल, असम, उड़ीसा आदि की यात्रा करके अपने मत का प्रचार–प्रसार किया। उन्होंने यात्राएँ ही नहीं की, बल्कि विभिन्न मतों के विद्वानों–आचार्यों से शास्त्रार्थ भी किया। उस युग में उत्तर भारत की स्थिति विषम थी। यह पूरा क्षेत्र राजनीतिक रूप से तो कई टुकड़ों में बंटा ही था, धार्मिक दृष्टि से भी अनेक मत–सम्प्रदायों में विभक्त था। इन मतभेदों के परिदृश्य में गोरखनाथ ने अपने सम्प्रदाय के माध्यम से धार्मिक एकसूत्रता लाने का प्रयास किया। इसलिए यह स्वाभावित था कि वे एक लोकप्रिय धार्मिक नेता हो सके। गोरखनाथ नाथ साहित्य के सर्वप्रमुख रचनाकार हैं। उन्होंने संस्कृत और देशभाषा (हिंदी) दोनों में रचनाएँ कीं। मिश्र बंधुओ के अनुसार गोरखनाथ के नौ संस्कृत ग्रंथ है, जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अट्ठाईस पुस्तकों का उल्लेख किया है। उनकी कई संस्कृत रचनाएँ आज उपलब्ध है, लेकिन उनमें से कुछ भी प्रामाणिकता

संदिग्ध है। गोरख की कुछ संस्कृत रचनाओं के नाम हैं– 'सिद्ध सिद्धांत पद्धति', 'गोरक्ष संहिता', 'अमरौध–शासनम', 'विवेकमार्तण्ड', 'निरंजन पुराण', 'वैराट पुराण', 'योगचिंतामणि', 'चतुरशीत्यासन'। इनकी देश भाषा की रचनाएँ भी मिलती है। डॉ0 पीतांबर दत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ की इन रचनाओं का संकलन और संपादन करके 'गोरखबानी' शीर्षक से प्रकाशित करवाया है। उन्होंने निम्नलिखित रचनाओं को प्रामाणिक माना है– 'सबदी', 'पद', 'सिष्या दरसन', 'प्राण संकली', 'नरवै बोध', 'अभैमात्रा जोग', 'आतम बोध', 'पन्द्रह तिथि', 'सप्तवार', 'मछीन्द्र गोरखबोध', 'रोमावली', 'ग्यानतिलक', 'ग्यान चौंतीसा एवं 'पंचमात्रा'।

विद्वानों ने गोरख द्वारा रचित बताई जाने वाली कुछ अन्य पुस्तकों को उनके शिष्यों द्वारा रचित बताया है, जैसे कि 'गोरखनाथ जी के पद' और 'दत्तगोरख संवाद'। इसके अलावा कुछ रचनाएं उनक ही संस्कृत रचनाओं का अनुवाद है। उदाहरण के लिए, 'विराट पुराण' को स्वयं गोरख की ही संस्कृत रचना 'वैराट पुराण' का अनुवाद माना जाता है। गोरखनाथ के विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने संस्कृत में सिद्धांत गंथों की रचना करने के साथ–साथ अपने मत के व्यापक प्रचार के लिए जनसमुदाय की भाषा को अपनाया।

इनकी कविता का उदाहरण है–

यंद्री का लड़बड़ा, जिम्भा का फूहड़ा।
गोरस कहै ते परतसि चूहड़ा।।
काछ का जती मुख का सती।
सो सत पुरूष उतमो कथी।।

बालानाथ :–

पंजाब में इनके नाम पर 'बालानाथ का टीला' प्रसिद्ध रहा था। जायसी ने भी उसका उल्लेख किया है। इससे यह पता चता है कि बालानाथ अपने समय के महत्वपूर्ण योगी रहे होंगे। इनकी कविता का उदाहरण है–

पहलै पहरै सब कोई जागै, दूजै पहरै भोगी।
तीजै पहरै तसकरि जागै, चौथे पहरै जोगी।।

चर्पटनाथ :–

ये कहीं गोरखनाथ के और कहीं बालानाथ के शिष्य बताए गए हैं। ये राजपूताना के रहने वाले थे। इन्हें संस्कृत ग्रंथ 'चर्पटमंजरी' का लेखक भी बताया जाता है। इनकी कविता का उदाहरण है–

किसका बेटा किसी बहू,
आप सवारंथ मिलिया सहू।।
जेता पूला तेती आल,
चटपट कहै सब आल जंजाल।।

चौरंगीनाथ :–

चौरंगीनाथ 'पूरन भगत' के नाम से भी प्रसिद्ध रहे थे। ये गोरखनाथ के शिष्य थे। इनके विषय में यह किंवदन्ति है कि अपनी विमाता के प्रणय की अवहेलना करने के कारण इनकी आँखं फोड़ दी गईं और हाथ–पैर काटकर कुएँ में डाल दिया गया। बाद में गोरखनाथ ने उन्हें सुंदर शरीर से सम्पन्न (चौरंगी) बनाकर किसी कुँवारी की बटी हुई रस्सी के सहारे कुएँ से बाहर निकाला।

इनकी कविता का उदाहरण है–

मारिवा तौ मन मीर मारिवा, लूटिबा पवन भंडारं।
साधबा तौ पंच तत सधिबा, सेइबा तौ निरंजन निराकारं।।

इन कवियो के अलावा भी कई नाथ कवियों के नाम से रचनाएँ मिलती हैं। भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ राजा होते हुए भी योगी बन गए थे। भर्तृनाथ ही भर्तृहरि या भरथरी के नाम से पसिद्ध हुए। भरथरी और गोपीचंद के नाम से आज भी कई लोकगीत प्रचलित हैं।

परवर्ती हिन्दी साहित्य का प्रभाव :

आदिकालीन नाथ साहित्य का प्रभाव बाद के भक्तिकालीन संत साहित्य पर देखा जा सकता है। नाथ साहित्य ने परवर्ती ज्ञानमार्गी संतकाव्य को विषयतत्व के साथ–साथ काव्यशिल्प या काव्यपद्धति की दृष्टि से भी प्रभावित किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–''यदि कबीर आदि निर्गुणमतवादी संतों की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह संपूर्णतः भारतीय है और बौद्ध धर्म के अंतिम सिद्धां और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबंध है। वे

ही पद, वे ही राग– रागिनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि ने व्यवहार की हैं, जो उक्त मत के मानने वाले उनके पूर्ववती संतों ने की थीं। क्या भाव, क्या भाषा, कया अलंकार, क्या छंद, क्या पारिभाषिक शब्द, सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्गदर्शक हैं।''

नाथ सम्प्रदाय के हठयोग पर निश्चय ही कबीर की आस्था दिखती है। उनके काव्य में नाथपंथियों की अतस्साधनात्मक रहस्य भावना, हठयोग, नाद, बिंदु, कुंडलिनी, षटचक्रभेदन आदि का वर्णन मिलता है। उन्होंने इड़ा, पिंगला, सषुम्ना आदि के जरिए 'अनहद' नाद सुनने की रीति बताई है। इसके अलावा उन्होंने उलब्बाँसियों का भी प्रयोग किया है। इस संदर्भ में डॉ0 पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने लिखा है– ''हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्ति–धारा की दो शाखाओं के दर्शन कराए हैं– एक निर्गुण शाखा और दूसरी सगुण शाखा। निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है। भक्ति–धारा का जल पहले योग के घाट पर बहा था।'' नाथ सम्प्रदाय में माया की अवहेलना की गई है जो आगे चलकर संतों के यहाँ भी चेतावनी के रूप में आती है। कबीर की कविता में यत्र–तत्र नारी की निंदा मिलती है। इसे भी नाथों के इन्द्रिय–निग्रह और निवृत्तिमूलक दर्शन के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार, भक्तिकालीन संतकाव्य में धार्मिक रूढ़ियों और बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हुए अंतस्साधना पर जो बल दिया गया है उसे आदिकालीन सिद्ध नाथ कवियों के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रभाव को काव्य पद्धति की दृष्टि से भी लक्ष्य किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, दोहा छंद में यदि सिद्धों की रहस्यवादी भावनाएं व्यक्त हुई थीं तो गोरखनाथ जैसे अलख जगाने वाले नाथ योगियों की बानियाँ भी कहीं गईं। वास्तव में, नाथपंथियों और कबीर पंथियों के 'धर्म निरूपणपरक' दोहे ही 'साखी' कहे जाते हैं। 'साखी' नाथपंथ में साहित्य में मिलती है और भक्तिकालीन संतों के साहित्य में भी। 'साखी' का अर्थ है– साक्षी देना, अर्थात् पूर्ववर्ती साधकों या गुरूओं द्वारा बताए गए सत्य का स्वयं अनुभव कर उसकी गवाही देना। धीरे–धीरे गुरू के वचनों को 'साखी' कहा जाने लगा होगा। गुरू के ऐसे वचन या उपदेश जनप्रचलित दोहा छंद में बद्ध थे। इसलिए कुछ दिनों बाद 'दोहा' ओर 'साखी' समानार्थक शब्द मान लिए गए होंगे। कबीर–साहित्य में तो दोहे का अर्थ ही साखी हो जाता है। इसके अलावा अन्य निर्गुण संतों के सम्प्रदाय में भी इस काव्यरूप का प्रचलन मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है– ''कबीर आदि संतों को नाथपंथियों से जिस प्रकार 'साखी' और 'बानी' शब्द मिले, उसी प्रकार 'साखी' और बानी के लिए बहुत कुछ सामग्री और 'सधुक्कड़ी' भाषा भी''।

निष्कर्ष –

सिद्धों और नाथों में 'शब्द' काव्यरूप भी प्रचलित था। 'शब्द' गेय पदों को कहा जाता है जो किसी न किसी राग में निर्दिष्ट होते हैं। भक्तिकालीन संतों ने भी इस पूर्व प्रचलित काव्यरूप को अपनाया। 'गोरखबानी' में उद्धृत ऐसे पदां को 'सबदी' कहा गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है– ''जान पड़ता है, बीजक का 'शबद' नाथपंथी योगियो का है और कबीरपंथ में वह सीधे वहीं से आया है।'' भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों के कई शब्द, पद, दोहे और उलटबांसियों को ज्यों–का–त्यों स्वीकार कर लिया था। हालांकि उनमें कहीं–कहीं थोड़ा बहुत परिवर्तन भी दिखता है। उाहरण के तौर पर नाथ योगियों के पद और भक्तिकालीन संत दादू के पद में समानता देखी जा सकती है–

नाथयोगियों का पद–

उठ्या सारन् बैठ्या सार् सारन् जागत सूता।
तिन भुवनें बिछाइना जाल कोइ जाबि रे पूता।।

दादू का पद–

उठ्या सारं बैठ विचारं संभारं जागता सूता।
तीन लोक तत जाल विडारन कहाँ जाइगा पूता।।

इसी प्रकार गोरखनाथ की एक उलटबाँसी है–

नाथ बोलै अमृत बाणी। बरिसैगी कंबली भीजैगा पाणी।

यह रोचक है कि कबीरदास के नाम पर यही उलटबाँसी इस प्रकार मिलती है–

कबीरदास की उलटी बानी। बरसै कंबल भीजै पानी।

इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी हैं। हालांकि यह सही है कि कबीर आदि भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किए हैं, लेकिन उनकी साधना का स्वरूप थोड़ा भिन्न था। इसलिए भक्तिकालीन संतकाव्य में उपस्थित भक्ति का रस सिद्धों–नाथों की कविता में नहीं मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, रामकुमार, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोक भारती प्रकाशन।
2. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2002
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
4. चातक, गोविन्द (सं.), डॉ0 पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, तक्षशिला पकाशन।
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 144-148
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Himanshu Gangwar,
sM.A. (Education), UGC NET (Education)

प्राचीन काल में भारत में शिक्षा स्वयं के लिए नहीं अपितु धर्म के लिए प्राप्त की जाती थी। यह मुक्ति और आत्मबोध का साधन थी और जीवन का महान लक्ष्य मुक्ति था। भारत का अतीत गौरवमय रहा है, जिसमें आध्यात्मिकता का प्रभाव सर्वोपरि रहा है। यहां पर मानव का जीवन-दर्शन '**बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय**' रहा है।

वैदिक शिक्षा भारत की सबसे प्राचीन शिक्षा व्यवस्था है। भारत में अतीत से ही वैदिक शिक्षा का प्रचलन था। जिस समय विश्व में शिक्षा का कोई अस्तित्व नहीं था। उस समय भारतीय समाज में वैदिक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान था। भारतीय इतिहास में वैदिक काल उस काल को कहा गया है, जिसमें वेदों की रचना हुई थी। भारतीय शिक्षा का इतिहास वैदिक काल से ही आरंभ होता है। वैदिक काल की अवधि के संबंध में इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न विचार हैं, इसलिए निश्चित रूप से इस काल का समय निर्धारण करना अत्यंत कठिन कार्य है। वेदों को विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ माना गया है, वेद चार हैं - 1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. अथर्ववेद 4. सामवेद। वेदों के अतिरिक्त स्मृतियां, आरण्यक, पुराण एवं संहिताएं आदि अनेक ग्रंथ वैदिक काल की शिक्षा के बारे में विश्वसनीय जानकारी प्रदान करते हैं। वैदिक कालीन शिक्षा का समय ईसा पूर्व छठवीं सदी तक माना जाता है। वैदिक काल में भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था विद्यमान थी। जीवन की अवधि को 100 वर्षों का मान करके चार भागों में विभाजित किया गया था -
1. **ब्रह्मचर्य आश्रम** - 25 वर्ष की उम्र तक, 2. **गृहस्थ आश्रम** - 25 से 50 वर्ष तक, 3. **वानप्रस्थ आश्रम** - 50 से 75 वर्ष तक, 4. **संन्यास आश्रम** - 75 से मृत्यु तक।

इसी प्रकार मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ या कर्तव्य निर्धारित किए गए थे। ये हैं - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इस शिक्षा के अंतर्गत ज्ञानार्जन के लिए शिक्षार्थी को गुरुकुल में जाना होता था। वहीं शिष्य अपने गुरु के सानिध्य में रहकर शास्त्रों से शिक्षा प्राप्त किया करते थे। यह शिक्षा सिर्फ विषयों पर आधारित न होकर अस्त्र-शस्त्र, संगीत, राजनीति, ज्योतिष, खगोल विज्ञान आदि से भी संबंधित हुआ करती थी।

वैदिक शिक्षा का अर्थ

वैदिक काल में शिक्षा का व्यापक अर्थ स्वीकार किया गया है अर्थात् शिक्षा का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जो विद्यार्थी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण एवं संतुलित विकास करती है। इस काल में शिक्षा को विद्या कहा गया है और विद्या का मानव जीवन के लिए अनिवार्य माना गया है। विद्या को मनुष्य का तीसरा नेत्र भी कहा गया है। **डॉ. अल्टेकर** के अनुसार, **"वैदिक युग से लेकर अब तक शिक्षा का अभिप्राय प्रकाश के स्रोत से रहा है और वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा मार्ग आलोकित करता है।"**

वेदों के अनुसार शिक्षा का अर्थ ज्ञान अथवा विद्या प्राप्ति है। वेदों के आधार पर शिक्षा का आशय ज्ञान, आत्मा एवं ब्रह्म की खोज करना है अर्थात् शिक्षा का उद्देश्य ईश्वर को प्राप्त करना है। वेदों में शिक्षा को मोक्ष प्राप्ति का साधन भी माना गया है। संस्कृति साहित्य में कहा गया है - **'सा विद्या या विमुक्तये'** अर्थात विद्या वही जो मुक्ति दिलाए अथवा विद्या द्वारा मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

वैदिक कालीन शिक्षा के उद्देश्य

वैदिक काल में शिक्षा के आदर्शों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. अल्टेकर ने लिखा है कि "ईश्वर भक्ति एवं धार्मिकता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति एवं राष्ट्रीय संस्कृत का संरक्षण और प्रसार प्राचीन भारत में शिक्षा के प्रमुख आदर्श तथा उद्देश्य थे। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

1. <u>ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना</u>

वैदिक काल में मनुष्य के जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान था। शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य धार्मिक भावना का विकास करना था। वैदिक काल में धर्म को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। ऋषि, महर्षि, पुरोहित आदि लोग शिक्षा का निर्धारण तथा शिक्षा देने का कार्य किया करते थे। इस काल की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ईश्वर भक्ति तथा धर्म के नियमों का कठोरता के साथ पालन करना था। इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न संस्कारों की व्यवस्था थी। जिसके अंतर्गत शिष्यों को नियम पूर्वक दैनिक कार्य करने होते थे। वह विभिन्न धार्मिक कार्यों में सम्मिलित होते थे और विधिवत संध्या वंदन किया करते थे। इस प्रकार गुरुकुल का समस्त वातावरण धार्मिक भावना से परिपूर्ण हुआ करता था।

2. चरित्र निर्माण

वैदिक कालीन शिक्षा का मूल उद्देश्य बालक का चरित्र निर्माण करना हुआ करता था क्योंकि वैदिक काल में चरित्र निर्माण को बहुत ऊंचा स्थान दिया जाता था। शिक्षा के माध्यम से छात्रों में चरित्र निर्माण के गुण विकसित किए जाते थे। उसमें नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न की जाती थी। सच्चरित्रता को सर्वाधिक महत्व दिए जाने के अनुसार शिष्यों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना अनिवार्य हुआ करता था।

3. व्यक्तित्व का विकास करना

शिक्षा का उद्देश्य बालकों के व्यक्तित्व का निर्माण करना था। छात्रों में आत्मसंयम, आत्म-सम्मान, प्रेम, सहयोग और सद्भावना आदि सद्गुणों को विकसित किया जाता था। उत्तम वातावरण, सदाचार के उपदेश एवं महापुरुषों के जीवन चरित्र के द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति की जाती थी।

4. नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्य-पालन

वैदिक कालीन शिक्षा में अतिथि-सत्कार, आज्ञा पालन, अनुशासन, दूसरों की सेवा, सामाजिक दायित्वों की पूर्ति तथा कर्तव्य-पालन आदि गुणों को विकसित करने पर विशेष बल दिया जाता था।

5. सामाजिक कुशलता का विकास करना

वैदिक कालीन शिक्षा में बालक को समाज में रहकर अपना जीवन सुख पूर्वक बिताने की भी शिक्षा दी जाती थी। इसके लिए व्यवसायिक शिक्षा भी प्रदान की जाती थी, जिससे कि बालक को अपने व्यवहारिक जीवन में किसी भी प्रकार की असफलता का सामना न करना हो। उसको शिक्षा द्वारा जीवकोपार्जन के योग्य बना दिया जाता था। उस समय वर्ण व्यवस्था भी विद्यमान थी, जिसके अंतर्गत छात्रों को उनके वर्ण के अनुसार कार्य की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा प्राप्त करके छात्र केवल अपने परिवार तथा समाज के लिए ही नहीं बल्कि राष्ट्र तथा देश का कल्याण करने योग्य भी हो जाते थे।

6. राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार करना

वैदिक काल में संस्कृति के संरक्षण तथा प्रसार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। शिक्षा के उद्देश्यों में संस्कृति का संरक्षण करना एक प्रमुख उद्देश्य था। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण बनाना रहा है। आचरण पर विशेष बल दिया जाता था। आत्मज्ञान तथा ब्रहम ज्ञान के लिए छात्रों को तैयार किया जाता था।

वैदिक कालीन शिक्षा की विशेषताएं

1. गुरुकुल प्रणाली - वैदिक काल में वर्तमान समय की तरह विद्यालय नहीं थे बल्कि गुरुओं के आश्रम में स्थाई रूप से रहकर छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे। छात्र माता-पिता एवं परिवार से अलग होकर गुरु के आश्रम में ही रहकर शिक्षा प्राप्त करता था। इसी को गुरुकुल प्रणाली कहा गया है। छात्र गुरुकुल में रहकर ब्रहमचर्य का पालन करता हुआ आश्रमों के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करता था। वैदिक काल में गुरुकुल में पढ़ने वाले को अंतेवासी के नाम से जाना जाता था।

2. उपनयन संस्कार - इसे जनेऊ संस्कार भी कहते हैं। उपनयन एक धार्मिक संस्कार था जिसमें बालक को भौतिक शरीर के बाद आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होता था। उपनयन के समय बालक की आयु ब्राहमण के लिए 8 वर्ष, क्षत्रिय के लिए 11 वर्ष, वैश्य के लिए 12 वर्ष निर्धारित की गई थी। उपनयन के पश्चात ही बालक ब्रहमचारी बनता था और उसे गुरुकुल में प्रवेश प्राप्त होता था।

3. सार्वजनिक एवं निशुल्क शिक्षा - गुरुकुलों में प्रवेश के लिए कोई शुल्क या फीस नहीं थी। उपनयन संस्कार के बाद छात्रों को प्रवेश मिलता था, भोजन आदि की व्यवस्था के लिए समीपी ग्रामों से सहयोग लिया जाता था तथा विद्यार्थी अनिवार्य रूप से भिक्षा के माध्यम से भी अनिवार्य वस्तुओं का संग्रह करते थे। समाज का धनिक वर्ग तथा शासकों द्वारा भी स्वैच्छिक अनुदान प्राप्त होता था।

4. गुरु-शिष्य का संबंध - गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में गुरु और शिष्य के मध्य बहुत ही पवित्र व मधुर संबंध होते थे। विद्यार्थी गुरु की सेवा करना अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे। शिक्षक विद्यार्थियों से पिता के समान व्यवहार करते थे तथा अपने शिष्य को अपने ही परिवार का सदस्य मानते थे। शिष्य गुरु से नीचे आसन पर बैठते थे तथा उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे।

5. भिक्षाटन या भिक्षावृत्ति - प्रत्येक छात्र को अपने तथा गुरु के जीवन निर्वाह के लिए भी भिक्षावृत्ति करनी पड़ती थी। जिसे उस समय बुरा नहीं माना जाता था। हर गृहस्थ छात्र को भिक्षा अवश्य देता था। भिक्षा का आशय केवल वस्तु या धन संग्रह नहीं था बल्कि इससे छात्रों के जीवन में विनय एवं विनम्रता की भावना भी विकसित होती थी। इसके साथ ही छात्रों में सामाजिकता का विकास भी होता था।

6. शिक्षण विधि - गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में प्रायः मौखिक शिक्षा ही दी जाती थी। वेद मंत्रों को सुनना तथा अक्षरश: याद करना एवं गुरु को सुनाना मुख्य विधियां थीं। अन्य सैद्धांतिक विषयों में भी यही शिक्षक-प्रणाली अपनाई जाती थी। उस काल में लेखन, मुद्रण और कागज का अभाव था। उस काल में पढ़ने की तीन विधियां - श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन प्रचलित थीं। शिक्षण प्रक्रिया में प्रवचन तथा व्याख्यान, प्रश्न-उत्तर विधि, वाद-विवाद तथा शास्त्रार्थ प्रणाली भी अपनाई जाती थी। साहित्यिक विषयों का शिक्षण पदच्छेद, समास-विग्रह तथा शब्दार्थ विधि द्वारा किया जाता था। तर्कशास्त्र के शिक्षण में कथन या प्रतिज्ञा हेतु अथवा तर्क, उदाहरण, प्रयोग, निष्कर्ष विधि द्वारा किया जाता था। शिक्षक द्वारा छात्रों को सामूहिक नहीं वरन् व्यक्तिगत रूप से पढ़ाया जाता था। जब शिष्यों की संख्या अधिक हो जाती थी तब अग्र शिष्यों से सहायता ली जाती थी। स्मरण पर सबसे अधिक बल दिया जाता था।

7. दण्ड एवं अनुशासन - गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में अनुशासनहीनता की कोई समस्या नहीं थी। छात्रों में स्वानुशासन की भावना विकसित करने के लिए गुरु अपने उच्च चरित्र और आदर्श जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते थे। दण्ड का आधार मनोवैज्ञानिक था। शारीरिक दण्ड वर्जित था। उचित रूप से समझाना, निर्देश देना, उपवास अथवा अपनी उपस्थिति से दूर रहने का दण्ड गुरु देता था।

8. परीक्षाएं - वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली में वर्तमान की तरह परीक्षाएं नहीं होती थी। पुराना पाठ याद हो जाने पर ही नया पाठ पढ़ाया जाता था। प्रत्येक पाठ के अंत में विद्यार्थी की मौखिक परीक्षा ली जाती थी। शिक्षा की समाप्ति तक कोई लिखित परीक्षा नहीं होती थी। परंतु विद्यार्थी

को विद्वानों की सभा में उपस्थित होकर उनके द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देना होता था। अध्ययन की समाप्ति पर किसी प्रकार का प्रमाण पत्र या उपाधि देने की कोई व्यवस्था नहीं थी।

9. समावर्तन संस्कार - विद्यार्थी जीवन की समाप्ति पर गुरुकुल में ही समावर्तन संस्कार होता था। जिसे आज के समय में विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह के समान माना जा सकता है। इस संस्कार के बाद विद्यार्थी स्नातक कहलाता था। समावर्तन संस्कार के पश्चात विद्यार्थी गुरु दक्षिणा देकर गुरुकुल से विदा होता था और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था।

वैदिक शिक्षा के दोष

1. धर्म को अत्यधिक महत्व
2. स्त्री शिक्षा की उपेक्षा
3. सूद्रों की शिक्षा की उपेक्षा
4. लोकभाषाओं की उपेक्षा
5. सांसारिक जीवन की उपेक्षा
6. जन सामान्य की शिक्षा की उपेक्षा
7. विचार स्वातंत्र्य का अभाव
8. शारीरिक श्रम के प्रति हेय दृष्टि
9. नवीन धर्मों के प्रति हेय दृष्टि

संदर्भ सूची -

1. **ए. एस. अल्टेकर** : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, इलाहाबाद 1948
2. **ए. एल वाषम** : अदभुत भारत
3. **रोमिला थापर** : भारत का इतिहास
4. **डी. एन. झा** : प्राचीन भारत
5. **राधाकृष्ण चौधरी** : प्राचीन भारत का इतिहास
6. **डी. डी. कौशांबी** : प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता
7. **पी. डी. पाठक** : भारत में शिक्षा का विकास एवं समस्याएं

Mobile No. - 9457940493, Email Id - 1439Himanshu@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 149-155
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राचीन भारत में विज्ञान एवं तकनीक

श्री राजन कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर,
राजकीय महाविद्यालय, मुबारिकपुर (रामगढ़- अलवर)

भारत में ज्ञान और विज्ञान की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है | 'विज्ञान'- अर्थात 'विशिष्ट ज्ञान' जिसके आरंभिक अंश हमें पाषाण काल एवं विकसित अवस्था सिंधु सभ्यता, वैदिक काल, मौर्य काल एवं गुप्त काल में देखने को मिलती है | भारत के प्राचीन ऋषियों ने विश्व को विज्ञान का ज्ञान दिया तथा अनेक वैज्ञानिक तथ्यों का आविष्कार इसी भारत भूमि पर हुआ जिस समय पाश्चात्य जगत वैज्ञानिक ज्ञान के अभाव में अंधविश्वासी बना हुआ था उस समय भारत में वैज्ञानिक परंपराओं से युक्त विशिष्ट ज्ञान का आविर्भाव हो चुका था और विज्ञान की लगभग सभी शाखाओ में विकास हुआ जो आज भी विश्व को आश्चर्य में डालता है| हम यहां विभिन्न कालों में विज्ञान व तकनीक की अलग-अलग शाखों में जो विकास हुआ उसका सुक्ष्म अनुसंधान करेंगे |

गणित -: भारत में गणितीय गणनाओं का स्पष्ट प्रमाण हमें ‘सिंधु सभ्यता’ से मिलना शुरू होता है| पुरातात्विक सामग्री जिसमें वहां से प्राप्त दुर्ग टीले, सामान्य आवास क्षेत्र एवं समांतर सड़के, गलियां, पानी के निकास की व्यवस्था, घरों के निर्माण की शैली आदि का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं की यह सभी बेहतरीन गणितीय गणनाओं के बाद ही बनाए गए होंगे | हमें ‘लोथल’ से हाथी दांत का ‘पैमाना’ एवं ‘मोहनजोदड़ो’ से ‘शीप’ निर्मित पैमाना मिला है| जिसमें 9 समांतर रेखाएं हैं तथा एक रेखा टूटी हुई है इस आधार पर कहा जाता है| कि इसका निर्माण ‘दशमलव’ पद्धति पर किया गया होगा माप तोल में भी ‘द्विचर प्रणाली’(Binary system) का प्रयोग होता था और ‘बांट’ के रूप में 16 अथवा उसके आवर्तकों का उपयोग होता था जैसे 1,2,4,8,16,32,64,160,320, यह प्रणाली भारत में वर्तमान समय तक रही| अतः हम कह सकते हैं की सिंधु निवासी भी दशमलव प्रणाली से परिचित रहे होंगे | वैदिक काल में भी ‘गणित शास्त्र’ विकसित अवस्था में था | वैदिक आर्यों को यज्ञ करने हेतु ‘यज्ञ वेदिकाएं’ बनानी होती थी जिन्हें डोरी अथवा शुल्व से नापा जाता था इसका वर्णन हमें ‘शुल्वसूत्र’ में मिलता है इस ग्रंथ में वर्ग,समचतुर्भुज,समबाहु,समलंब,आयत,समकोण,त्रिभुज,आदि ज्यामिति अथवा रेखा गणित से

संबंधित ज्ञान प्राप्त होता है | वैदिक गणित शास्त्र के सिद्धांतों के विकास का श्रेय 'बोधायन' को जाता है| 'बोधायन' के सूत्र वैदिक संस्कृत में है वह 'कृष्ण यजुर्वेद' की 'तेतरिया' शाखा से संबंधित है | उन्होंने ही सबसे पहले √2 जैसी संख्याओं को अपरिमेय मानते हुए उनका अधिकतम शुद्ध मूल्य ज्ञात किया उन्होंने किसी वर्ग की भुजाओं की लंबाई दिए होने पर विकर्ण की लंबाई निकालने की विधि बताई |

" समस्य विकर्णी प्रमाणं त्रितेयेंन वर्धयते।

त्च चतुर्थेन्नात्मचतुस्त्रिंशौनेन सविशेषः।।

अर्थात किसी वर्ग के विकर्ण का मान प्राप्त करने हेतु भुजा में एक तिहाई जोड़कर फिर इसका एक चौथाई जोड़कर फिर इसका 34 वां भाग घटाकर जो मिलता है | वही विकर्ण का मान है|

√2== 1+1/3+1/3×4 -1/3×4×34 =577/408 =1.414216 (यह मान पांच स्थानो तक शुद्ध हे)

'बोधायन' ने वृत को वर्ग में व वर्ग को वृत में बदलने का नियम प्रस्तुत किया जैसे वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर क्षेत्रफल के वृत का निर्माण

"चतुरस्रं मण्डलं चिकीर्षन्न् अक्षयार्धं मध्यात्प्राचीमभ्यापातयेत् |

यदतिशिष्यते तस्य सह तृतीयेन मण्डलं परिलिखेत् ||

अर्थात चतुभुजाकार वृत बनाने की इच्छा से अक्षय भाग को मध्य से पूर्व दिशा की ओर गिराना चाहिए और जो कुछ बचे उससे तीसरा वृत लिखें यदि वर्ग की भुजा 2a हो तो वृत की

त्रिज्या r=[a+1/3(√2a - a)] = [1+1/3(√2 - 1)] a

इसके अतिरिक्त 'बोधायन' द्वारा प्रमेयो का भी प्रतिपादन किया गया यथा- *समचतुर्भुज के विकर्ण एक दूसरे को समकोण पर समद्वीभाजित करते हैं *आयत के विकर्ण एक दूसरे को समद्वीभाजित करते हैं

*किसी वर्ग की भुजाओ के मध्य बिंदुओं को मिलाने से बने वर्ग का क्षेत्रफल मूल वर्ग के क्षेत्रफल का आधा होता है आदि | 'यजुर्वेद' में भी 'अग्नि' की स्तुति के संदर्भ में एक श्लोक के अंतर्गत संख्याओं का वर्णन मिलता है

"इमा मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता" ॥२ ॥

इसमें दस(10)शत (100) सहस्त्र (1000) आयुत (10000)नियुत (100000) प्रयुत(1000000)अर्बुद (10000000) नियर्बुद(100000000)समुद्र(1000000000) मध्य(10000000000) अंत(100000000000)परार्ध (1000000000000) इसे स्पष्ट होता है कि 1 से 10 तथा 10 पर आधारित अन्य संख्याओं के संबंध में 'दाशमिक' पद्धति का ज्ञान 'वैदिक कालीन' भारतीयों को था परंतु शून्य (0) का अंक चिन्हो के साथ 'दशमलव पद्धति' का

प्रयोग सर्वप्रथम 'बख्शाली पांडुलिपि' (3-4 शताब्दी) से ही प्राप्त होता है | जो 'गाथा भाषा' तथा 'शारदा लिपि' में है जो 1881 ईस्वी में पेशावर पाकिस्तान से प्राप्त हुई यह समकालीन गणित शास्त्र पर प्रकाश डालती है इस ग्रंथ में भिन्नांक,वर्गमूल,घनमूल,अंकगणित,ज्यामिती,सरलीकरण,युग्मपत् संकलन फल, को ज्ञात करने जैसी उच्च स्तरीय गणित की विवेचना है

वराहमिहिर कृत -'पंचसिद्धांतिका' मैं शून्य को प्रतीक तथा आंख के रूप में पहली बार दर्शाया गया है| 'शून्य' का प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य गुर्जर प्रतिहार 'भोजदेव' का 'ग्वालियर अभिलेख' है जो ग्वालियर के 'चतुर्भुज मंदिर' में स्थित है| गुप्त काल में गणित शास्त्र के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान **'आर्यभट्ट'** का है इनके द्वारा 'आर्यभट्टीयम' नामक ग्रंथ लिखा गया जिसमें 121 श्लोक एवं चार खंड- गीतिका पाद, गणित पाद, काल क्रियापाद, गोल पाद ,हे प्रथम दो गणित से संबंधित हैं ईन ग्रंथो में अंकगणित,ज्यामिति,बीजगणित तथा त्रिकोणमिति के सिद्धांत दिए गए हैं| वे वृत,त्रिभुज,चतुर्भुज और ठोसो के महत्वपूर्ण गुण धर्म भी बताते हैं वृत के क्षेत्रफल के विषय में उनका कहना है कि यह परिधि तथा व्यास के आधे का गुणनफल (1/2परिधि×1/2 व्यास) होता है

"वृतफलं समपरिणाहस्यध विष्कम्भर्धहत मेव"

एवं त्रिभुज का क्षेत्रफल - "त्रिभुजस्य फलं शरीर समदलकोटी भुजार्ध सवर्गः"।

अर्थात यह आधार तथा समान कोटि के गुणनफल का आधा है 'आर्यभट्ट' ने 22/7 (π) का मान 3.1416 बताया जो आज भी शुद्धतम है| आर्यभट्ट ने अक्षरों (क,ख,ग) द्वारा अंको को प्रदर्शित करने एवं स्वरो तथा व्यंजनों के वर्ग बनाकर अंको को प्रदर्शित करने की पद्धति विकसित की गणित को ज्योतिष से अलग स्वतंत्र विज्ञान का रूप देने का श्रेय 'आर्यभट्ट' को जाता है उन्होंने अंक संख्याओं का उल्लेख करते समय गणना की दाशमिक पद्धति का प्रयोग किया यह प्रथम 9 संख्याओं के स्थानीय मान तथा शून्य के प्रयोग पर आधारित है शून्य तथा दशमलव सिद्धांत दुनिया को आर्यभट्ट की सर्वथा नई देन है आर्यभट्ट ने **'सूर्य सिद्धांत'** नामक ग्रंथ में 0-90 अंश तक तीन पूर्णांक 3/4 अंश के अंतराल पर सभी कोणों हेतु त्रिकोणमिति अनुपात की तालिका प्रस्तुत की है |

ब्रहमगुप्त -भी भारत के महान गणितज्ञ हुए हैं उन्होंने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धांत' मे वृतीय चतुर्भुज,वर्गों,आयत,आदि की परिभाषा की व्याख्या हेतु अनेक सूत्र दिए वह पहले गणितज्ञ थे जिन्होंने परिमेय भुजाओ वाले एक चक्रीय चतुष्कोण को विश्लेषित किया तथा उसका क्षेत्रफल तथा विकर्ण निकालने की विधि बताइ और ट्रिग्नोमेट्री के सिद्धांतों का विकास किया

भास्कराचार्य (भास्कर -2) इन्होंने सिद्धांत शिरोमणि नामक ग्रंथ लिखा जिसके चार भाग हैं लीलावती, बीजगणित, गृहगणित, एवं गोला जिसमें लीलावती अंकगणित का ग्रंथ है | इन्होंने 'पाटी गणित' धनात्मक संख्याओं का योग एवं अनिर्णीत वर्ग समीकरण के हल की जो विधि

खोजी उसे 'चक्रवाल विधि' (cyclic method) कहां जाता है इन्होंने सिद्धांत शिरोमणि में निरंतर गति का विचार(Idea of perpetual motion) दिया जिससे आगे चलकर शक्ति तकनीक (Power motion) का विकास हुआ 'भास्कराचार्य' ने प्रतिपादित किया कि शून्य अनंत है जो कभी विभाजित नहीं किया जा सकता उनके द्वारा वर्णित 'खहर' वर्तमान का अनंत(∞)अर्थात शून्य का कितना भी विभाजन किया जाए वह अनंत ही रहेगा (∞ /x = ∞) भारत में इस अनंत की अनुभूति ब्रहमा अथवा आत्मा के संबंध में वेदंतियों द्वारा पहले ही की जा चुकी थी जिसका वर्णन 'बृहदारण्यक उपनिषद' 5.1.1 मैं मिलता है |

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते|

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते||

अर्थात- जो दिखाई देता है वह अनंत है जो अदृश्य है वह भी अनंत है अनंत से अपरिमित की उत्पत्ति हुई है और पूर्ण से पूर्ण निकालने पर पूर्ण ही शेष रहता है यही शून्य और अनंत आधुनिक गणित का आधार है |

ज्योतिष एवं खगोल विद्या - प्राचीन ज्योतिष विज्ञान का इतिहास अत्यंत प्राचीन रहा है| वेदों को सरल भाषा में समझने हेतु जिन वेदंगों की रचना की गई उनमें ज्योतिष भी प्रमुख है वैदिक आर्यों के द्वारा जिन यज्ञों को किया जाता था उन्हें सही समय पर संपन्न करना आवश्यक था एवं सही समय एवं मुहूर्त जानने हेतु ग्रह नक्षत्रो की स्थिति व गति का ज्ञान आवश्यक था। अतः इसी आवश्यकता ने खगोल विज्ञान को जन्म दिया यह ग्रह नक्षत्र ऋग्वेद काल में ज्ञात थे | वेदों में स्थित नक्षत्रो से चंद्रमा का संबंध लगभग 27 सूर्य दिवस एवं 7.75 घंटो के चक्र द्वारा बताया गया 27 नक्षत्रो के अतिरिक्त 28 वा नक्षत्र 'अभिजीत' था। जो 'उत्तराषाढ' तथा 'श्रवण' के बीच रखा जाता था ऋग्वेद में 12 माह के वर्ष तथा 30 दिन के माह का उल्लेख मिलता है| **'ऐतरेय ब्राहमण'** के अनुसार- सूर्य कभी उदय व अस्त नहीं होता '**अथर्ववेद'** में कहा गया है की 'चंद्रमा' 'सूर्य'से प्रकाश प्राप्त करता है | आदि कथन वैदिक खगोल ज्ञान को दर्शाते हैं| भारतीय खगोल विज्ञान का प्राचीनतम ग्रंथ 'ज्योतिष वेदांग' है। जिसके रचयिता **'लगध मुनि'** है इसके पश्चात **'आर्यभट्ट'**(476ई॰)का नाम विशेष उल्लेखनीय इनका ग्रंथ **'आर्यभट्टीयम'** है। इन्होंने बताया कि 'पृथ्वी गोल' है तथा अपने 'अक्ष पर घूमती' है जिससे दिन व रात बनते हैं तथा 'चंद्र ग्रहण' व 'सूर्य ग्रहण' चंद्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने से अथवा सूर्य और पृथ्वी के बीच चंद्रमा के आ जाने से होता है| चंद्रमा तथा दूसरे ग्रह सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं| उनमें स्वयं का कोई प्रकाश नहीं है तथा पृथ्वी, ग्रहो और नक्षत्रो का आधा गोल भाग अपनी ही छाया से अप्रकाशित है। और आधा सूर्य के सामने होने से प्रकाशित है। उन्होंने पृथ्वी की परिधि 39968.0582km. और वर्ष की अवधि 365.2586805 दिन बताइ यह दोनों ही आधुनिक वास्तविक मान के सन्निकट है। उन्होंने 'सूर्य केंद्रित ब्रहमांड' का सिद्धांत दिया अर्थात ब्रहमांड की गतिविधियों का केंद्र सूर्य है आर्यभट्ट के द्वारा बिना दूरविक्षण यंत्र(Telescope)के इतनी

उच्च कोटि की गणनाएं एवं सटीक रूप से पृथ्वी, चंद्रमा, सूर्य, की गतिविधियों का आकलन एक आश्चर्य का विषय ही है

वराह मिहिर(490ई•)-- भारतीय फलित ज्योतिष का प्रणेता माना जाता है इनका ग्रंथ 'पंचसिद्धांतिका' अत्यंत महत्वपूर्ण है इसमें पांच सिद्धांतों का वर्णन है- पितामह, वशिष्ठ, रोमक, पौलिश, और सूर्य सिद्धांत इसमें 'सूर्य सिद्धांत' सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है| इसमें 'सूर्य वर्षमान'-365 दिन 6घण्टा 12 मिनट 36.6 सैकिण्ड है। जो आधुनिक सूर्य वर्ष मान 365 दिन 6घण्टा 9मिनट 10.8 सैकिण्ड के बहुत निकट है ग्रहो के विषय में इन्होने चंद्रमा का व्यास 480 योजन जो पृथ्वी के व्यास का 0.33 है जो वास्तविक मान 0.27 के बहुत निकट है| आधुनिक उपकरणों के अभाव में इतना शुद्ध प्रमाणिक व यथार्थ मान निकालना अत्यंत जटिल कार्य हैं |

ब्रहम गुप्त (598 ई)- इनका प्रसिद्ध ग्रंथ **'ब्रहमस्फुट सिद्धांत'** है। यह भारत का एकमात्र ग्रंथ है जिसमें खगोल शास्त्र में प्रयुक्त होने वाले उपकरण व उनके प्रयोग की विधि बताई गई है इस ग्रंथ में 'पाणिब्रम्म'(कंपास का एक युग्म) अवलम्ब, कर्ण, छाया, दिनार्ध, सूर्य तथा अक्षांश आदि जैसे खगोलीय संसाधनों एवं 9 खगोलीय उपकरणों- चक्र (360 डिग्री घूमने वाली तश्तरी) धनुष (एक अर्धवृत्ताकार तश्तरी) तुर्यगोल (चतुर्थांश पटिका) यष्टि, शंकुघटिका कपाल (क्षैतिज रूप से रखी गई वृताकार प्लेट) करतरी (दो भिन्न स्तरों पर एक साथ जुड़ा अर्धवृत्ताकार प्लेट) पीथ (क्षैतिज रूप में रखा गया चक्र) का वर्णन मिलता है इसके अतिरिक्त गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत की कल्पना करने वाले 'ब्रहमगुप्त' पहले व्यक्ति थे उन्होंने बताया कि पृथ्वी का स्वभाव सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकृष्ट करने वाला है अतः वे न्यूटन के अग्रगामी थे अतः हम कह सकते हैं| कि भारतीय खगोल शास्त्रियों का ज्ञान निश्चित ही तत्कालीन यूरोपीयनो से श्रेष्ठ था | बगदाद के खलीफाओं ने भी अपने यहां भारतीय खगोलविद्दो को नियुक्त कर रखा था जो उनके खगोल ज्ञान कि श्रेष्ठता को प्रदर्शित करता है।

भौतिक विज्ञान - इस क्षेत्र में प्राचीन भारतीयों की उपलब्धियां अपेक्षाकृत सीमित थी फिर भी आधुनिक भौतिकी का सर्व प्रमुख सिद्धांत परमाणुवाद (Atom theory) है। भारत में इस सिद्धांत का अस्तित्व 6-B.C. बुद्ध काल से ही मिलना शुरू हो जाता है। परमाणु वाद सिद्धांत के प्रवर्तक 'पकुधकच्चायन' थे। जो बुद्ध के पूर्वगामी थे अतः परमाणुवाद का सिद्धांत यूनानी प्रभाव से पूर्णतया मुक्त था क्योंकि इन्होंने यूनानी 'डेमोक्रिटस' से पूर्व ही सर्वप्रथम परमाणुओं की कल्पना की थी| परमाणु वाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान महर्षि 'कणाद' का है वह भारतीय भौतिक शास्त्र के आरंभ करता माने जाते हैं उनके अनुसार समस्त भौतिक वस्तुएं परमाणुओं के संयोग से ही बनती हैं। 'तत्व' के सूक्ष्मतम एवं अविभाज्य कण को '**परमाणु**' कहते हैं दो परमाणुओं का प्रथम संयोग 'द्वयणुक(Dyad) कहां जाता है यह अणु(Minute) ह्रस्व (Short) तथा अगोचर(जो देखा ना जा सके) तीन द्वयणुक मिलकर त्रयणुक(Tryad) का

निर्माण करते हैं। परमाणुओं के संयोग का यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक की पृथ्वी पर जल,तेज,वायु, महाभूत उत्पन्न नहीं हो जाते 'परमाणु नित्य' व अविभाज्य होते हैं। आधुनिक परमाणुविद् 'जॉन डाल्टन' से हजारों वर्ष पूर्व इस तरह के विचार व्यक्त किए जा चुके थे |

रसायन शास्त्र - प्राचीन भारत में रसायन शास्त्र एक पृथक विज्ञान ने होकर औषधि विज्ञान के अंतर्गत ही था जिसे रसायन शास्त्र या रस विद्या कहा जाता था| भारतीय परंपरा में **नागार्जुन** को 'रस चिकित्सा' का आविष्कारक माना जाता है उन्होंने 'पारा' (Mercury) की खोज की जो एक युगांतरकारी वैज्ञानिक खोज थी विभिन्न धातुओं से चिकित्सा और धातुओं से भस्म निर्माण करके (सोना, चांदी, तांबा, लोहा, अभ्रक, भस्म) चिकित्सा हेतु प्रयुक्त की जाती थी

प्रौद्योगिकी(Technology)- प्राचीन भारतीयों ने विज्ञान के साथ-साथ तकनीकी में भी महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की भारत में यह तकनीकी विकास पाषाण काल से ही प्रारंभ हो जाता है। आदिमानव ने अपने उपयोग के लिए पाषाण उपकरण बनाए जो कोर(core)और फ्लैक(Flake) विधि से बनाए गए थे | जिनमे हैंडऐक्स,चॉपर-चॉपिंग,ब्लड, ब्युरिन,चांद्रिक प्रमुख है। बाद में प्रक्षेपास्त्र तकनीक का भी विकास हुआ और आगे चलकर पाषाण उपकरणों पर एक विस्मयकारी पॉलिश भी शुरू हुई। पाषाण प्रौद्योगिकी के बाद धातु प्रौद्योगिकी का विकास हुआ धातुओं में मानव ने सर्वप्रथम तांबा की खोज की इससे कुल्हाड़ियां,चाकू, चूड़ियां, बर्तन, मूर्तियां आदि बनाए जाते थे मोहनजोदड़ो से **नर्तकी की कांस्य मूर्ति** धातु शिल्प का सर्वश्रेष्ठ नमूना है| लोह काल मे लोहे की खोज ने पूर्वी भारत की दिशा एवं दशा ही बदल दी इस खोज ने राजनीति को प्रभावित किया और द्वितीय नगरीकरण को बढ़ावा दिया अधिशेष उत्पादन शुरू हुआ| सैन्य-साजो सामान बढा नए-नए और विशाल हथियार बनने लगे| 'अजातशत्रु' ने 'रथमूसल' और 'महाशिलाकंटक' जैसे हथियार बनाए जिसने साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया| **लोहे को इस्पात** में बदलने की प्रक्रिया सर्वप्रथम भारत में ही विकसित हुई बरार में 'माहुरझारी' के एक वृहतपाषाणिक स्थल से लोहे की एक ऐसी कुल्हाड़ी मिली है जिसमें 6% कार्बन की मात्रा है जो इस्पात बनाने की प्राचीनता का सूचक है| गुप्तकालीन 'मेहरौली लोह' स्तंभ से सूचित होता है कि लोह कर्म का तकनीकी ज्ञान अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया था इस पर मैंगनीज ऑक्साइड(mgo) की पतली परत चढ़ाकर इसे जंग रहित बना दिया गया इस पर लगी पॉलिश आज भी धातु वैज्ञानिकों के लिए आश्चर्य की वस्तु बनी हुई है। 'सुल्तानगंज' बिहार से प्राप्त महात्मा बुद्ध की साढे सात फीट ऊंची एक टन भार वाली कांस्य प्रतिमा उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रमाण है महाराज अशोक के द्वारा बनवाए गए एकाश्मकक स्तंभ पाषाण कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। 50 टन वजनी व 30 से 50 फीट से अधिक ऊंचाई वाले यह स्तंभ चुनार के पत्थर के बने हुए हैं जिन्हें चुनार की पहाड़ी से लाया गया होगा| 500- 600 मील दूर से लाकर इन्हें स्थापित करना उस काल की उन्नत तकनीकी कुशलता को दर्शाता है।

निष्कर्ष - भारत में धर्म दर्शन और ज्ञान को हमेशा ही सम्मान की दृष्टि से देखा गया है | इनके विकास में सहायक तत्व विज्ञान, रसायन, गणित, भौतिकी, ज्योतिष, आयुर्वेद, आदि को प्रोत्साहन दिया गया और इन्हें तत्कालीन विश्व में उत्कृष्टता के चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया गया और भारत के विभिन्न कालों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई और यह तकनीकी ज्ञान ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था की उन्नति का मुख्य आधार सिद्ध हुआ कुछ क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान विज्ञान को विदेशियों ने भी ग्रहण किया तथा उसकी प्रशंसा की |

संदर्भ सूची

1. श्रीवास्तव ,कृष्ण चन्द:-प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,यूनाइटेड बुक डिपो प्रकाशन प्रयागराज (पेज न.884-894)
2. शर्मा,व्यास,कालूराम, -भारत का पंचशील प्रकाशन,जयपुर (पेज न-.338)
3. शर्मा,व्यास,कालूराम,प्रकाश , :-भारतीय संस्कृति के मूल आधार, पंचशील प्रकाशन,जयपुर (पेज न-.269-285)
4. शर्मा,व्यास,कालूराम, प्रकाश :-भारत के सांस्कृतिक इतिहास की मुख्य प्रवर्तिया पंचशील प्रकाशन,जयपुर (पेज न- .348-357)
5. प्रजापत,पप्पूसिंह:- प्राचीन भारत नवीन सर्वेक्षण,रॉयल पब्लिकेशन जोधपुर (पेज न.615-623)
6. यजुर्वेद 17.2
7. बृहदारण्यक उपनिसद 5.1.1
8. wikipedea
9. गोयल ,श्री राम :- प्राचीन भारत, कुसुमांजलि पब्लिकेशन जोधपुर (पेज न.548-549)

mob.no./whatsapp no.9783232759

E-MAIL - rajan7566@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 156-158
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बौद्ध धर्म में विहारों का महत्त्व : एक अध्ययन

Mohd Salman, Research Scholar History, MJPRU BAREILLY,
Dr. Mansoor Ahmed Siddique, Assistant Professor, G.F College Shahjahanpur.

·सारांश

विहार वे मठ थे जो भिक्षुओं को रखने के लिए बनाए गए थे। विहारों की शुरुआत बरसात के मौसम में भटकते भिक्षुओं के लिए अस्थायी आश्रय के रूप में हुई थी, लेकिन संपन्न बौद्धों के उपहारों के कारण, वे जल्द ही विद्वता और बौद्ध वास्तुकला के केंद्रों में विकसित हो गए। बौद्ध धर्म में विहार एक महत्वपूर्ण स्थान है जहां भिक्षु व भिक्षुणी अपने आध्यात्मिक जीवन को समर्पित करते हैं यह शोध पत्र बौद्ध धर्म में विहारों के संबंध में विश्लेषण करता है उनकी सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व को समझने के लिए कि वह अपने धर्म में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं विहार में रहकर ही वह अपनी धार्मिक कार्यों को संपादित करते हैं इस शोध पत्र में यह अध्ययन किया जाना है की बौद्ध भिक्षु व भिक्षुणी के लिए विहार किस प्रकार महत्वपूर्ण है।

मुख्य शब्द - विहार, भिक्षु, भिक्षुणी, धर्म,प्राचीन, बुद्ध

•प्रस्तावना

बौद्ध धर्म एक प्राचीन धर्म है जो भगवान बुद्ध के उपदेशों पर आधारित है संस्कृत में पाली में आमोद व प्रमोद के लिए विकसित किसी भी स्थान को विहार कहते हैं। प्राय विहारो का निर्माण समय-समय पर बौद्ध धर्म का पालन करने वाले विभिन्न राजाओ व व्यापारियों द्वारा किया जाता था। बुद्ध के समय से ही यह परंपरा चली आ रही है। विहार में कक्षों के साथ सभा स्थल भी होता था। विहार एक ऐसा स्थान है जहां बौद्ध भिक्षु निवास करते थे और अपने धार्मिक कार्य को संपादित करते थे। यह विहार किसी वन या पहाड़ी पर बने होते थे। विहार भी तीन प्रकार के हैं वन विहार, शहरी विहार व मठ विहार कुछ गुफाओं में भी होते थे। इसके अतिरिक्त विहार जैन व आजीवको द्वारा भी बनाए जाते थे। विहार निर्माण का उद्देश्य वर्षा ऋतु के समय भिक्षु और भिक्षुणियों को आश्रय देना था। वर्षावास के समय भिक्षु विहार में रहकर ही धर्म चर्चा करते थे। यही कारण है कि वर्तमान बिहार राज्य में अत्यधिक विहार होने कारण इसका नाम बिहार पड़ गया।

वर्तमान समय में, सामान्यतः बौद्ध मठों को विहार कहते हैं जिसमें भिक्षु निवास करते हैं। विहारों में बुद्ध प्रतिमा होती है। विहार में बौद्ध भिक्षु निवास करते है। संस्कृत और पालि में आमोद-प्रमोद के लिए विकसित किसी भी स्थान को विहार कहते हैं। बाद में बौद्ध भिक्षुओं के निवास के लिए निर्मित कक्षों को विहार कहा जाने लगा। इन कक्षों के साथ प्रायः एक बड़ा खुला सभास्थल हुआ करता था। 'विहार' शब्द हिन्दू, आजीविक तथा जैन संन्यासियों के साहित्य में भी मिलता है जिसका अर्थ उन अस्थायी संरचनाओं से है जिसका उपयोग वे वर्षाकाल में ठहरने के लिए किया करते थे। वर्तमान काल में भी जैन साधु एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैदल भ्रमण करते रहते हैं जिसे 'विहार' कहा जाता है। उनका विहार वर्षा ऋतु के चार महीनों (चातुर्मास्य) में बन्द रहता है।उच्च शिक्षा में धार्मिक विषयों के अलावा अन्य विषय भी शामिल थे, और इसका केन्द्र बौद्ध विहार ही था। इनमें से सबसे प्रसिद्ध, बिहार का नालन्दा महाविहार था। अन्य शिक्षा के प्रमुख केन्द्र विक्रमशिला और उद्दंडपुर थे। ये भी बिहार में ही थे। इन केन्द्रों में दूर-दूर से, यहाँ तक की तिब्बत से भी, विद्यार्थी आते थे। यहाँ शिक्षा नि:शुल्क प्रदान की जाती थी। इन विश्वविद्यालयों का खर्च शासकों द्वारा दी गई मुद्रा और भूमि के दान से चलता था। नालन्दा को दो सौ ग्रामों का अनुदान प्राप्त था।

•उद्देश्य

1-प्राचीन भारतीय परंपरा को आधुनिक समाज में उपयोगी सिद्ध करना

2- बौद्ध धर्म में विहारों की भूमिका का महत्व

3- भारतीय बौद्ध विहारों के बारे में अध्ययन

•बौद्ध धर्म में विहारों का महत्व

1- विहार बौद्ध भिक्षुओं के रहने के लिए बनाए जाते थे. इनमें एक खुला प्रांगण होता था और इसके चारों ओर कई कमरे होते थे.

2- विहारों में बुद्ध की मूर्तियां होती हैं.

विहारों में ध्यान के लिए सुरक्षित जगह मिलती थी.

3- विहारों में बुद्ध के जीवन से जुड़े दृश्यों की तस्वीरें बनाई जाती थीं.

4- विहारों में पूजा के लिए बुद्ध की मूर्तियां स्थापित की जाती थीं.

5- विहारों में शिक्षा का केंद्र होता था.

6- विहारों का निर्माण बारिश के मौसम में भिक्षुओं के लिए आश्रय देने के लिए किया जाता था.

7- विहारों का निर्माण उत्तरापथ, दक्षिणापथ, और रेशम मार्ग जैसे प्रसिद्ध व्यापार मार्गों पर किया गया था.

•कुछ प्रमुख विहारों का नाम एवं उनका विवरण

महाबोधि मंदिर, बोधगया - यह मंदिर बौद्ध धर्म के सबसे पवित्र स्थलों में से एक है. यहां गौतम बुद्ध ने बोधि वृक्ष के नीचे बैठकर ज्ञान प्राप्त किया था.

सारनाथ मंदिर, वाराणसी - राजा अशोक ने इस मंदिर का निर्माण करवाया था. यह वह स्थान है जहां बुद्ध ने अपने शिष्यों को अपना पहला उपदेश दिया था.

गोम्पा, सिक्किम - यह एक बौद्ध बिहार है जिसे 'धर्मचक्र केन्द्र' भी कहा जाता है. यहां बहुमूल्य थंगा पेंटिंग और बौद्ध धर्म के कग्यूपा संप्रदाय से जुड़ी कई चीज़ें रखी हुई हैं.

महापरिनिर्वाण मंदिर, कुशीनगर - यह मंदिर खंडहरों के बीच बना है. यहां बुद्ध की 6 मीटर ऊंची प्रतिमा है.

•निष्कर्ष

अंत कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म में विहार उनकी नींव की तरह है बौद्ध धर्म व विहारों का गहरा सम्बन्ध है विहार बौद्ध धर्म के लिए एक महत्वपूर्ण, सांस्कृतिक और धार्मिक केन्द्र है जहाँ भिक्षु व भिक्षुणी अपने अध्यात्मिक जीवन को समर्पित करते है

•संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विनयपिटक
2. प्रकाश, सत्य- पश्चिमी भारत की बौद्ध गुफाए
3. सिंह ,राकेश- बौद्ध गुफाएं
4. लामा, जीके- प्राचीन भारत में गुफा व मंदिर
5. सांकृत्यायन ,राहुल - बौद्ध संस्कृति
6. Agustijanto Indradjaja (2024)Jurnal Sociohumaniora Kodepena (JSK) 5 (1), 38-45, 2024
7. Louis Copplestone (2024)buddhist architecture and imagination in mediveval eastern india Harvard University, 2024

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 159-163
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कालिदास की नाटक त्रयी

डॉ० किरण कुमारी, सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

शोध सार :–

संस्कृत भारत की प्राचीन श्रेष्ठ भाषा है। कविकुल गुरू कालिदास संस्कृत कविता कामिनी के विलास हैं, परन्तु उनकी नाटक त्रयी भी असाधारण महत्त्व की अधिकारिणी है। कालिदास से पहले संस्कृत साहित्य में भास, सौमिल्ल तथा कविपुत्र जैसे जनप्रिय नाटककार हो चुके थे। उनकी पृष्ठभूमि पर कालिदास के नाटक और निखरे प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपनी बलवती आस्था एवं 'संत धर्म' पर विश्वास करके ही अपने तीनों नाटकों की रचना की, जिसके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं– 1. मालविकाग्निमित्र, 2. विक्रमोर्वशीय, और 3. अभिज्ञान शाकुन्तलम् । मालविकाग्निमित्र में शुगवंश के राजा अग्निमित्र तथा रानी की सेविका मालविका के प्रेम का जीवन्त वर्णन है। ऐतिहासिक कथा का आधार लेकर उन्होंने स्वच्छन्द प्रेम के विकास का वर्णन किया है। विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा केशी नामक दैत्य से उर्वशी की रक्षा करता है। इसी क्रम में उर्वशी के हृदय में प्रेम का उद्‌भव, फिर पुरूरवा की आसक्ति, मध्यांतर में वियोग अंत में मिलन का चित्रण है। पुरूरवा का प्रेम उद्दाम है। उर्वशी के विछोह में पुरूरवा प्रमत्त दीखते हैं। अभिज्ञान शाकुन्तलम् की कथावस्तु का मूल महाभारत का आदिपर्व है, जो हस्तिनापुर के राजा दुष्यंत और महर्षि कण्व की पालित पुत्री शकुन्तला के प्रणय–परिचय, मिलन–वियोग और पुनः मिलन की घटनाओं को दिखाता है। मूल कथा में कालिदास ने अपने विचारानुसार यथार्थ और कल्पना का योग कर उसे अत्यन्त सरस और मनोहारी बनाने में सफलता पाई है। समाज एवं राष्ट्र तप, दान एवं यज्ञ की महिमा से ही समुज्ज्वल एवं जीवन्त होते हैं। साहित्य के कल्याणकारी स्वरूप पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है।

बीज शब्द :–

नाटक, संस्कृत, कालिदास, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, प्राकृतिक जीवन, सौंदर्य।

डॉ0 वचनदेव कुमार के शब्दों में–''पुरातन कवियों के गणना प्रसंग में कालिदास को कनिष्टिकाधिष्ठित करने का श्रेय उनकी लघुत्रयी को ही नहीं वरन् उनकी नाटक त्रयी को भी है। वस्तुतः कालिदास की सागरोल्लंधिनी कीर्ति का आधार उनका विश्वविश्रुत नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' है।''[1] इस कृति के सर्वप्रथम आंग्ल अनुवादक विलियम जोन्स ने *The Lost Ring' की भूमिका में कालिदास को भारत का शेक्सपीयर कहा है और शकुन्तला के कथ्य एवं शिल्प की आत्मविभोर होकर प्रशंसा की है। महाकवि गेटे ने अपने संसार समादृत नाट्य काव्य 'फाउस्ट' में शकुन्तला के लिए जो

उच्छ्वसित विचार व्यक्त किये हैं, वे तो अन्य भाषाओं के नाटककारों के मध्य कालिदास को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए ईर्ष्य वज्रलेख बन चुके हैं –

"Wouldst then the young year's blossom and the Fruits of its decline And all by which the soul is charmed enraptured feasted, fed? Wouldst thou the earth and heaven itself in one sole name combine? I name thee O Sakuntala, and all at once is said."[2]

अर्थात् यदि तुम तरूण वासंती पुष्प एवं प्रौढ़ ग्रैष्म मधुर फलपरिपाक एकत्र देखना चाहते थे, यदि तुम अन्तःकरण को अमृत की तरह आप्यायित करने वाली अतिमधुर तृप्तिकर वस्तु का अवलोकन करना चाहते हो, यदि स्वर्गीय सुषमा एवं पार्थिव ऐश्वर्य का मिलन वस्तु–बिन्दु पर देखना चाहते हो तो मैं तुम्हारा ध्यान संसार में एक ही कृति की ओर आकृष्ट करूँगा और वह है शकुंतला। कालिदास के जिन तीन नाटकों का उल्लेख किया जाता है, वे इस प्रकार हैं– 1. मालविकाग्निमित्र, 2. विक्रमोर्वशीय और 3. अभिज्ञान शाकुन्तलम्।

1. मालविकाग्निमित्र –

इस नाटक में शुगवंशीय नरेश अग्निमित्र तथा मालविका के प्रेम का अभिराम चित्रण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आश्रय लेकर कमनीयता के साथ अंकित किया गया है। इसमें नाटककार ने राजाओं के अन्तःपुर की चहारदीवारी के भीतर विकसित होनेवाले रानियों की परस्पर ईर्ष्या, राजा की कामुकता, महिषी धारिणी की धीरता तथा उदात्तता का प्रभावशाली चित्रण किया है। जिसे हिमगिरि की उत्तुंग ऊँचाइयों की चाहत हो वह मार्ग के अवरोधों की परवाह कब करता है? उसी अकंप आत्मविश्वास के विवृति–व्याज से कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में उद्घोषित किया है–

'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चाऽपि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्तरन्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।''[3] 1/12

अर्थात् कोई पुरानी रचना हो इसलिए सर्वदा अच्छी हो तथा कोई रचना नयी हो इसलिए उपेक्षणीय, ऐसी बात नहीं। सुधी जन तो किसी वस्तु की उत्तमता–अनुत्तमता की परीक्षा करके ही अपना निर्णय देते हैं, परन्तु मूर्ख तो दूसरों की कही हुई बातों पर ही भरोसा करते हैं। कालिदास को पूर्ण विश्वास है कि उनकी रचना उत्तम प्रमाणित होगी।

2. विक्रमोर्वशीय –

यह कालिदास का दूसरा नाटक है। इसमें उन्होंने एक वैदिक प्रेमाख्यान को, ऋग्वेद (10/95) तथा शतपथ ब्राह्मण (11/5/1) में निर्दिष्ट पुरूरवा तथा उर्वशी की प्रेमकथा को, कमनीय नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें पुरूरवा नितान्त उपकार परायण भूपाल है और वह राक्षस से उर्वशी का उद्धार करता है। इस घटना के बाद उर्वशी उसके अलौकिक रूप पर आसक्त होकर अनेक शर्तों के साथ उसकी रानी बनना स्वीकार करती है। अनन्तर पुरूरवा उसके वियोग में पागल बनकर जंगल में मारा–मारा फिरता है। कालिदास ने पुरूरवा के उद्दाम प्रेम का संसार के समग्र बंधनों को तोड़कर बहने वाली काम सरिता का चित्रण बड़ी मार्मिकता के साथ किया है, किन्तु यहाँ भी कवित्व का विलास ही अधिक है, नाटकीय कौशल कम। उर्वशी में दैवी एवं मानुषी दोनों ही प्रवृत्तियों का समन्वय पाया जाता है। कवि ने उसके सौन्दर्य निर्माण में अलौकिक तत्त्वों का समावेश किया है।

3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् –

सात अंकों वाले इस नाटक का न केवल कालिदास के ग्रंथों में शीर्षस्थान है, अपितु आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में–''शाकुन्तल नाटक कालिदास के ग्रन्थों में ही शीर्षस्थानीय नहीं है, अपितु वह संस्कृत नाटक–मणिमाला का शोभामान सुमेरू है, महनीय मध्यमणि है।''[4] डॉ0 वचनदेव कुमार के शब्दों में–''उनका तीसरा नाटक न तो ऐतिहासिक है, न वैदिक, वरन् महाभारत के आधार पर शकुंतला–कथा महाभारत के आदि पर्व के 68 वें से 74 वें–सात अध्यायों में वर्णित है।''[5]

एक स्वर से भारतीय तथा पाश्चात्य आलोचकों ने शकुन्तला की श्रेष्ठता स्वीकार की है। संस्कृत में एक उक्ति है–

''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्राऽपि च शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोक चतुष्टयम्।''[6]

अर्थात् काव्यों में नाटक रम्य होते हैं। नाटकों में अभिज्ञान शकुन्तला और उसमें भी चौथा अंक और उसमें भी चार श्लोक नाटक के प्राण हैं। इस नाटक के पहले अंक में हस्तिनापुर का राजा दुष्यन्त आखेट करने के लिए वन में जाता है और संयोगवश महर्षि कण्व के आश्रम में शकुन्तला से साक्षात्कार करता है। उसकी जन्मकथा सुनकर उसके हृदय में शकुन्तला के लिए अनुराग उत्पन्न होता है। द्वितीय अंक में ऋषियों की प्रार्थना पर राजा आश्रम की रक्षा के लिए स्वयं वहीं रह जाता है। तृतीय अंक में राजा और शकुन्तला का समागम है। चतुर्थ अंक में कण्व तीर्थ यात्रा से लौटकर आश्रम में आते हैं और आसन्नसत्त्वा शकुन्तला को गौतमी, शारद्वत और शाङ्र्गख नामक दो शिष्यों के साथ हस्तिनापुर भेजते हैं। शकुन्तला के आश्रम से जाने का दृश्य बहुत ही करूणोत्पादक है। पंचम अंक में शकुन्तला हस्तिनापुर पहुँचती है, परन्तु दुर्वासा के शाप के कारण राजा उसे पहचानता ही नहीं। इस प्रत्याख्यान के बाद ऋषियों के चले जाने पर शकुन्तला को कोई दिव्य ज्योति आकाश में उठा ले जाती है और मारीच के आश्रम में वह अपनी माता मेनका के साथ निवास करने लगती है। षष्ठ अंक में राजा की नामांकित अंगूठी मछुए के पास से राजा को मिलती है, जिसे देखते ही दुष्यन्त को शकुन्तला की स्मृति हो आती है। वह अपनी प्रियतमा के प्रत्याख्यान से अत्यन्त विह्वल हो उठता है। अन्त में इन्द्र की सहायता करने के लिए वह स्वर्ग लोक में जाता है। सप्तम् अंक में दुष्यन्त विजय प्राप्त कर स्वर्ग से लौटता है और मारीच के आश्रम में अपने पुत्र तथा प्रियतमा का साक्षात्कार करता है। इसी मिलन तथा मारीच के आशीर्वाद के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में लिखते हैं–''फिर कालिदास के नाटक हैं जिनमें से एक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' सम्पूर्ण जगत् का हृदयहार बन चुका है।''[7]

दुष्यन्त और शकुन्तला के इस मिलन को महाकवि गेटे ने स्वर्ग और मर्त्य का मिलन माना है–''यौवन रूप वासन्तिक कुसुम सौरभ और प्रौढ़त्व रूप ग्रीष्म के मधुर फलों को अथवा अमृतवत् मानस को संतृप्त एवं विमुग्ध करने वाली किसी अन्य वस्तु को देखना चाहते हो अथवा पार्थिव एश्वर्य एवं स्वर्गीय सुषमा का अपूर्व सम्मिलन यदि एक स्थान पर देखना है तो अभिज्ञान शाकुन्तल का रसास्वादन कीजिए।''[8] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार–''शकुन्तला नाटक मनुष्य के उन्मद आकर्षण से आरम्भ होता है, उद्धत प्रत्याख्यान से टूटता है और मंगलमय वात्सल्य से नया जीवन प्राप्त करता है। वह स्वर्ग और मर्त्य की कड़ी जोड़ता है, त्याग और भोग को संतुलित करता है, कर्त्तव्य और निर्बंध प्रेम का सामंजस्य उपस्थित करता है, राजभवन और तपोवन का सम्पर्क स्थापित करता है और उन्मद यौवन लालसा के ऊपर प्रशांत गार्हस्थ्य की विजय दिखाता है। यह मनुष्य और प्रकृति के साथ एकसूत्रता स्थापित करता है और विश्वव्यापी भाव चेतना के साथ व्यक्ति की भावचेतना का तादात्म्य स्थापित करता है। इस एक नाटक को ही आश्रय करके मनुष्य के अनेक सुकुमार भाव सजीव हो उठे हैं और पूर्ण सामंजस्य में शोभित हुए हैं। कालिदास ने इन सुकुमार भावनाओं को बड़े ही कौशल के साथ चित्रित किया है।''

शकुन्तला नाटक में अनेकानेक मर्मस्पर्शी स्थल हैं, किन्तु कभी–कभी यह निर्णय कर सकना कठिन हो जाता है कि अँगूठी का स्वर्णांश कौन है और नगांश कौन। वैसे तृतीय अंक में शकुन्तला की विदाई का दृश्यांकन अभूतपूर्व है। इस अवसर पर कोमल हृदय पिता किस प्रकार द्रवीभूत हो उठता है–इसका निदर्शन पिता कण्व के मर्मोद्गार में मिलता है–

''यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्ट मुत्कण्ठया,
कण्ठस्तंभितवाष्प वृत्तिकलु शश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहाक्ष्रण्यौ कसः

पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषर्दुखैर्नवैः।''[9]

अर्थात्–''आज शकुन्तला चली जायगी, यह सोचते ही जी बैठा जा रहा है। आँसुओं को रोकने से गला इतना रूंध गया है कि मुँह से शब्द नहीं निकल रहे हैं और इसी चिंता में मेरी आँखें भी धुँधली पड़ गयी हैं। जब मुझ जैसे वनवासी को इतनी व्यथा हो रही है तब उन बेचारे गृहस्थों को कितना कष्ट होता होगा जो पहले पहल अपनी कन्या को विदा करते होंगे।

अभिज्ञान शाकुन्तल चरित्र चित्रण की दृष्टि से तो अद्वितीय है ही प्रकृति चित्रण की दृष्टि से भी अपूर्व है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने शेक्सपीयर के टेम्पेस्ट तथा कालिदास की शकुन्तला का सुन्दर सरस तारतम्य दिखाया है–''टेम्पेस्ट में शक्ति है। शकुन्तला में शक्ति है; टेम्पेस्ट में बल के द्वारा जय हुई है और शाकुन्तल में मंगल के द्वारा सिद्धि। टेम्पेस्ट में आधे मार्ग पर विराम हो गया है और शाकुन्तल में सम्पूर्णता का अवसान है। टेम्पेस्ट में मिरांडा सरल माधुर्य से परिपूर्ण है परन्तु इस सरलता की नींव अज्ञता–अनभिज्ञता पर अवलम्बित है; शकुन्तला की सरलता अपराध, दुःख, अभिज्ञता, धैर्य तथा क्षमा से परिपक्व गम्भीर तथा स्थायी है। गेटे की समालोचना का अनुसरण कर मैं फिर भी यही कहता हूँ कि–''शकुन्तला के आरम्भ के तरूण सौन्दर्य ने मंगलमय परम परिणति से सफलता प्राप्त कर मर्त्य को स्वर्ग के साथ सम्मिलित करा दिया है।''(प्राचीन साहित्य)

डॉ0 वचनदेव कुमार के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि–''शकुन्तला ऐसी कालजयी कृति है जो कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञान शाकुन्तलम्'' जैसी अल्पार्ध अभिशंसा की अधिकारिणी नहीं वरन् जो भारतीय काव्यगरिमा, संस्कृति सम्पदा तथा उदात्त शिक्षा प्रेरक मानसकल्पना की त्रिवेणी की भाँति विश्व–नाट्य साहित्य में समर्च्य सम्पूज्य है।''[10]

निष्कर्ष–

कालिदास एवं संस्कृत साहित्य का अटूट सम्बन्ध है। संस्कृत साहित्य की समृद्धि एवं उसका सौष्ठव इन्हीं के ग्रन्थों पर आधारित है। सच तो यह है कि जिस प्रकार आर्ष महाकाव्य रामायण और महाभारत समस्त संस्कृत कवियों के उपजीव्य हैं, उसी प्रकार कालिदास के काव्य एवं नाटक ग्रंथ परवर्ती कवियों के लिए सदैव अनुकरणीय बने हुए हैं। इस नाटक में विविध प्रसंगों को इतने कौशल से सजाया गया है कि दर्शकों की उत्सुकता निरन्तर बढ़ती रहती है। इसकी भाषा प्रांजल, परिमार्जित एवं पूर्ण परिष्कृत है। वह सर्वत्र प्रसादपूर्ण है। वे व्यंजना के कवि हैं। उनके साहित्य के अभाव में संस्कृत साहित्य की लोकप्रियता कम हो जायेगी। उनके अनुसार जीवन में त्याग, तप, यश, अध्ययन एवं दान का समावेश अवश्य होना चाहिए। उनके द्वारा ऋषियों के पावन तपोवनों में ये दिव्य जीवन आदर्श सदैव अनुप्राणित होते चित्रित किये गये हैं। वर्तमान काल के युद्ध की अग्नि की विभीषिका से घबराये संसार को उनका जीवन सन्देश अत्यन्त उपयोगी है। 'शकुंतला' में कथानक–संविधान, शील–संगठन, रसाभिव्यंजन सब का उत्कृष्ट निदर्शन है। कालिदास यथार्थ और सौन्दर्य के चितेरे तो हैं ही, शिवम् के उपासक भी हैं। नाट्य कला की दृष्टि से कालिदास प्रथम स्थान के अधिकारी हैं।

संदर्भ सूची :–

1. कुमार डॉ0 वचनदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, संस्करण, 1995, पृ0सं0–136.
2. वही, पृ0सं0–137.
3. सिंह डॉ0 विजयपाल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, राजपाल, दिल्ली, संस्करण, 1997, पृ0सं0–128.
4. उपाध्याय आचार्य बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, संस्करण, 2001, पृ0सं0–499.
5. कुमार डॉ0 वचनदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, संस्करण, 1995, पृ0सं0–138
6. सिंह डॉ0 विजयपाल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, राजपाल, दिल्ली, संस्करण, 1997, पृ0सं0–130.

7. द्विवेदी डॉ0 मुकुन्द, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीग्रन्थावली–3, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, अगस्त, 1981, पृ0सं0–169.
8. द्रष्टव्य, त्रिपाठी डॉ0 बाबूराम, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्रथम संस्करण, 1973, पृ0सं0–145.
9. कुमार डॉ0 वचनदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 1995, पृ0सं0–142.
10. वही, पृ0सं0–143.

ईमेल : kirankumari6163@gmail.com
मोबाइल नं0 : 9431767451] 8340560826

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 164-166
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जलवायु विज्ञान और मृदा विज्ञान सम्बन्धी तरीका और प्रक्रियाएँ (Climatological and Pedagogical Patterns and Processes)

डॉ0 अरविन्द कुमार, सहायक आचार्य (भूगोल विभाग),
अखिलभाग्य पी0जी0 कालेज रानापार, गोरखपुर ।

सारांश –

जलवायु विज्ञान अन्तरिक्ष विज्ञान के समान ही वायुमण्डल का विश्लेषण करती है। अन्तरिक्ष विज्ञान वास्तव में वायुमण्डल प्रक्रमों का अध्ययन करती है जबकि जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत हम उन वायुमण्डलीय प्रक्रमों से जनित परिणामों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करते है।

जलवायु विज्ञान की उत्पत्ति क्लीमाता (Climata) शब्द से हुई है। किसी क्षेत्र में जलवायु की जो विशेष दशाएँ अनुभव की जाती है, उनके आधार पर उस भाग को एक जलवायु के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत अन्तरिक्ष विज्ञान में वर्णित वायुमण्डलीय प्रक्रमों से जनित दवाब, तापमान, वर्षा एवं अन्य तत्वों के व्याख्यात्मक स्वरूपों का अध्ययन किया जाता है।

जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत पृथ्वी की जलवायु की दशाओं का अध्ययन किया जाता है। जलवायु विज्ञान का सम्बन्ध अन्तरिक्ष विज्ञान तथा भूगोल से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए भूगोल वेत्ता जलवायु विज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। भूगोल के अध्ययन में जलवायु को भौगोलिक सत्ता माना जाता है।

मुख्य शब्द – जलवायु, अन्तरिक्ष विज्ञान, वायुमण्डल, मृदा, व्याख्यात्मक स्वरूप, अध्ययन, विवरण, दशाएँ आदि।

प्रस्तावना –

आज के युग में पर्यावरण चहूँ ओर आय, चर्चा का विषय बन गया है। कहीं पर्यावरण प्रदूषण चर्चा का विषय है तो कहीं ओजोन की कमी। इनसे होने वाले दुष्प्रभाव पर वैज्ञानिक गहनता पर वैज्ञानिक से विचार–विमर्श कर रहे है। अनेक गोष्ठियों का आयोजन हो रहा हैं विश्व के अनेक भागों में वायुमण्डल में बढ़ती हुई कार्बनडाई आक्साइड की माता चिंता का विषय बन गई है। यह बात नहीं है कि विश्व के केवल विकसित देशों जैसे इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, जर्मनी, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और जापान में ही बिगड़ते हुए पर्यावरण की चुनौती को स्वीकार किया है। कुछ देशों ने तो इसे बिगड़ने से रोकने के लिए कड़े और कारगर कदम भी उठाए है तथा प्रदूषण को दूर करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रम आरम्भ किए है। भारत में गंगा तथा यमुना नदियों की सफाई का अभियान इस कार्यक्रम का ही एक भाग है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि आखिर पर्यावरण है क्या? वास्तव में पर्यावरण किसी क्षेत्र (नगर, राज्य, देश अथवा सम्पूर्ण पृथ्वी) का वह स्वरूप है जो मानव के खान–पान, पहनावें, रहन–सहन, रीति–रिवाज, तीज–त्योहार, सोचने के तरीके (चिंतन) और उसके कार्य–कलापों पर अमिट प्रभाव डालता है। सच तो यह है कि मानव चाहे कालाहारी के मरूस्थल का बुशमैन हो अथवा टुंड्रा प्रदेश का एस्कीयों अथवा अफ्रीका में काँगो बेसिन का बौना, अरब के रेगिस्तान का बद्दू या मध्य एशिया का घूमंतू खिरगीज हो। सभी अपने पर्यावरण के दास है, क्योंकि उनके उपर्युक्त सभी कार्य पर्यावरण द्वारा ही निर्धारित होते है।

मृदा और पादप पोषक –

आप किसी ऐसे पदार्थ के सम्बन्ध में सोच सकते हैं जिसके मानवता के लिये अनेक अर्थ होते है? ऐसा एक पदार्थ 'मृदा' है। पादप वृद्धि के माध्यम के रूप में मृदा की संकल्पना जन्म प्राचीन काल में हो गया था और आज भी वह मृदा की एक बहुत महत्वपूर्ण संकल्पना है। मृदायें जटिल निकाय होती है और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की मृदा में बहुत भिन्नता होती है, लेकिन मुख्य रूप से उनमें ठोस, द्रव और गैस ये तीन अवस्थाएँ भिन्न–भिन्न अनुपात में विद्यमान रहती है। इसके अतिरिक्त मृदाओं में सामान्यतया परस्पर निर्भर पादपों, प्राणियों और सूक्ष्म जीवों के विविध समुदाय भी होते है।

मृदा संधटन –

एक ग्राम मृदा में शैवाल कवल, जीवाणु, चिचड़ी, कीट, सूत्रकृमि आदि लगभग 10^3 जीव होते है। इन जीवों में कुछ हानिकारक और कुछ लाभदाय होते है। मृदा जीवों की परस्परिक क्रिया बहुत जटिल होती है। पादपों के भूमिगत भाग जिनमें मुख्यतया जड़े होती है, मृदा में विद्यमान जीवों के सम्पर्क में रहती है, साथ ही वे परिवर्ती भौतिक पर्यावरण के सम्पर्क में रहती है, जिनमें आर्द्रता, ताप, पी0एच0 और अनेक रासायनिक कारक शामिल है।

मृदा का निर्माण –

मृदाओं की रचना करोडों वर्षों की अवधि में धीरे–धीरे हुई है। भूमि के शैल पृष्ठों के वायु, वर्षा, हिमपात, प्रशीतन और तापन के कारण कटाव से बड़े शैलों के खनिज छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गए। पौधों में भी शैलों के टुटने में मदद की। ये खनिज कण, सूक्ष्म जीवों, प्राणियों और पादपों, जो कभी जीवित थे, के क्षयमान कार्बनिक पदार्थ से मिल गए। इस प्रकार मृदा पर प्रारम्भ से ही अकार्बनिक और कार्बनिक पदार्थों का प्रभाव रहा तथा अकार्बनिक पदार्थ नीचे उपस्थित आधार शैल तथा हिमनदी और जल द्वारा लाये गये शैलीय पदार्थ से प्राप्त हुए जबकि कार्बनिक द्रव्य पृष्ठ पर रहने वाले जीवों से प्राप्त हुए।

मृदा विज्ञान –

मृदा विज्ञान के जनक वसीली डोकुचेय (1846–1903), एक रूसी भू–विज्ञानी थे। उन्होंने मिट्‌टी को एक जीवित प्रणाली के रूप में माना और मिट्‌टी को एक जैविक विज्ञान के रूप में देखा। तब तक वैज्ञानिकों ने मिट्‌टी को केवल पौधों को सीधा रखने के लिए एक माध्यम के रूप में देखा था ताकि पानी और खाद्य द्वारा पोषक तत्व प्रदान किए जा सके।

मृदा विज्ञान, मृदा के सभी पहलुओं से सम्बन्धित वैज्ञानिक अनुशासन जिसमें उनके भौतिक और रासायनिक गुण, मृदा उत्पादन में जीवों की भूमिका और मृदा चरित, मृदा इकाइयों का विवरण और मानचित्र और मृदा की उत्पत्ति और गठन शामिल है।

मृदा विज्ञान की दो मूल शाखाएँ है –

1. जीवित चीजों, विशेष रूप से पौधों पर मिट्‌टी के प्रभाव से सम्बन्धित।
2. उसके प्राकृतिक वातावरण में मिट्‌टी के निर्माण, आकारिकी और वर्गीकरण पर केन्द्रित।

मृदा विज्ञान : सम्बन्धी तरीका एवं प्रक्रियाएँ –

हम भूमि पर रहते है, इसी पर अनेकों आर्थिक क्रियाकलाप करते है और विभिन्न रूपों में इसका उपयोग करते है। अतः भूमि एक बहुत महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। प्राकृतिक वनस्पति, वन्य जीवन, मानव जीवन, आर्थिक क्रियाएँ, परिवहन तथा संचार व्यवस्थाएँ भूमि पर ही आधारित है। परन्तु भूमि एक सीमित संसाधन है, इसलिए उपलब्ध भूमि का विभिन्न उद्‌देश्यों के लिए उपयोग सावधानी और योजनाबद्ध तरीके से होना चाहिए।

भारत में भूमि पर विभिन्न प्रकार की भू–आकृतियाँ जैसे पर्वत, पठार, मैदान और द्वीप पाए जाते है। लगभग 43 प्रतिशत भू–क्षेत्र मैदान है जो कृषि और उद्योग के विकास के लिए सुविधाजनक है। पर्वत पूरे भू–क्षेत्र के 30 प्रतिशत भाग पर विस्तृत हैं वे कुछ बारहमासी नदियों के प्रवाह को सुनिश्चित करते है, पर्यटन विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों प्रदान करता है और पारिस्थितिकी के लिए महत्वपूर्ण है। देश के क्षेत्रफल का लगभग 27 प्रतिशत हिस्सा पठारी क्षेत्र है। इस क्षेत्र में खनिजों, जीवाश्म ईधन और वनों का अपार संचय कोष है।

मृदा–उपयोग –

भू–संसाधनों का उपयोग निम्नलिखित उद्‌देश्यों से किया जाता है –

- वन
- कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि
- बंजर तथा कृषि अयोग्य भूमि
- गैर–कृषि प्रयोजनों में लगाई गई भूमि– जैसे इमारतें, सड़क, उद्योग इत्यादि।
- परती भूमि के अतिरिक्त अन्य कृषि अयोग्य भूमि
- स्थायी चरागाहें तथा अन्य गोचर भूमि
- विविध वृक्षों, वृक्ष फसलों तथा उपवनों के अधीन भूमि (जो शुद्ध बोए गए क्षेत्र में शामिल नहीं है)।
- कृषि योग्य बंजर भूमि जहाँ पाँच से अधिक वर्षों से खेती न की गई हो।
- परती भूमि
- वर्तमान परती (जहाँ एक कृषि वर्ष या उससे कम समय से खेती न की गई हो)।
- वर्तमान परती भूमि के अतिरिक्त अन्य परती भूमि या पुरातन परती (जहाँ 1 से 5 भूमि वर्ष से खेती न की गई है)।
- शुद्ध (निवल) बोया गया क्षेत्र

एक कृषि वर्ष में एक बार से अधिक बोए गए क्षेत्र को शुद्ध (निवल) बोए गए क्षेत्र में जोड़ दिया जाए तो वह सकल कृषि क्षेत्र कहलाता है।

भारत में मृदा उपयोग प्रारूप –

भू–उपयोग को निर्धारित करने वाले तत्वों में भौतिक कारक जैसे भू–आकृति, जलवायु और मृदा के प्रकार तथा मानवीय कारक जैसे जनसंख्या घनत्व, प्रौद्योगिक क्षमता, संस्कृति और परम्पराएं इत्यादि शामिल है।

संदर्भ सूची

1. डायरेक्टरेट ऑफ इकोनामिक्स एण्ड स्टैटिस्टिक्स, मिनिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर, 2023–2024 ।
2. भौतिक भूगोल (वायुमण्डल एवं जनमण्डल) मध्य प्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल।
3. मृदा और पादप पोषक कृषि रसायन विज्ञान – डॉ0 राम प्रसाद भारती एवं विपिन कुमार अग्रवाल।

Email. ID: arvinddddu1984@gmail.com **Mob. No._ 8400065651**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 167-170
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Existential Absurdity and Alienation in the Novels of Arun Joshi

Rajandip Kaur, Research Scholar**, Manu Gangwar**, Research Scholar, **Dilkesh Gangwar**, Research Scholar, , M. J. P. Rohilkhand University Bareilly, UP, India.
Dr. Purnima Bhardwaj, Assistant Professor of English
Govt. P. G. College Bisalpur, Pilibhit. (M. J. P. Rohilkhand University Bareilly)

Abstract:

Arun Joshi, a prominent figure in Indian English literature, delves deep into the themes of existential absurdity and alienation in his novels. Through an analysis of the protagonists' struggles with identity, cultural dislocation, and societal expectations, this paper aims to illustrate how Joshi's narratives reflect the broader existential dilemmas faced by individuals in a rapidly changing world. By employing philosophical frameworks and literary critiques, this study reveals the profound implications of alienation and absurdity in shaping human experience and understanding. This research paper explores the themes of existential absurdity and alienation in the novels of Arun Joshi, a prominent Indian author known for his insightful depiction of human emotions and struggles. Through a detailed analysis of select works by Joshi, this paper delves into the existential crises faced by his characters, their experience of alienation in a rapidly changing society, and the profound implications of their search for meaning in a seemingly meaningless world. Drawing upon existentialist philosophy and literary theory, this paper aims to shed light on the timeless relevance of Joshi's exploration of these themes and their impact on contemporary readers.

Keywords: futility, alienation, confused existence, essence.

Introduction:

Arun Joshi, a distinguished figure in Indian literature, is celebrated for his profound exploration of existential themes in his novels. Central to his oeuvre are the themes of existential absurdity and alienation, which resonate deeply with readers due to their universal relevance and timeless significance. Joshi’s works present a compelling portrait of individuals grappling with the fundamental questions of existence, identity, and belonging in a world that appears increasingly fragmented and uncertain. By examining the ways in which his characters navigate the complexities of modern life, this paper seeks to illuminate the intricate interplay between existential absurdity and alienation in Joshi's literary universe. One of the key themes that pervades Arun Joshi's novels is existential absurdity, a concept rooted in existentialist philosophy that posits the inherent lack of meaning or purpose in the universe. Joshi's characters often find themselves confronted with the futility of their actions and the inevitability of their own

mortality, leading to a sense of disorientation and disillusionment. In "The Foreigner", for instance, the protagonist Ratan struggles to find meaning in his mundane existence as he grapples with the alienation wrought by his immigrant status in a foreign land. Similarly, in "The Last Labyrinth", the character of Suraj is consumed by a sense of existential dread as he confronts the emptiness of his material success and the hollowness of his relationships.

Existentialism, as a philosophical movement, grapples with the inherent meaninglessness of life and the individual's quest for purpose within an indifferent universe. This theme resonates deeply within the context of Indian society, where rapid modernization and globalization have led to significant cultural shifts. Arun Joshi’s novels provide a rich tapestry for exploring these existential concerns, particularly through the lens of alienation—a condition that emerges when individuals find themselves disconnected from their surroundings, society, and even their own identities. Joshi's protagonists often navigate a landscape marked by confusion and despair, reflecting their inner turmoil as they confront the absurdity of existence. This paper focuses on three of Joshi's major works: 'The Foreigner', 'The Strange Case of Billy Biswas', and 'The Apprentice'. Each novel presents unique characters who grapple with their alienation in various contexts—cultural dislocation, societal corruption, and personal identity crises. By analyzing these texts, we can gain insight into how Joshi articulates the human condition amidst existential challenges. In addition to existential absurdity, alienation emerges as a pervasive theme in Arun Joshi's novels, reflecting the characters' profound sense of disconnection from themselves, others, and the world around them. Joshi's protagonists often grapple with feelings of estrangement and isolation, stemming from their inability to forge authentic connections in a society marked by social conformity and materialism. In "The Strange Case of Billy Biswas", the eponymous character retreats into the wilderness in a quest for self-discovery, only to realize the irreconcilable gap between his innermost desires and the expectations imposed upon him by society. This profound sense of alienation underscores the characters' search for an authentic mode of being that transcends the constraints of their social roles and identities.

In ’The Foreigner', Sindi Oberoi serves as a quintessential representation of existential absurdity. As an Indian expatriate living in America, Sindi experiences profound alienation from both her native culture and her adopted home. Her journey reflects the struggles of individuals caught between two worlds—an experience that breeds feelings of isolation and disconnection. Sindi's attempts to find meaning in her life are met with frustration as she confronts the superficiality of American society and the weight of her cultural heritage. Joshi employs Sindi's character to explore themes of identity and belonging. Her encounters with various characters highlight her internal conflict; she is neither fully embraced by her Indian roots nor accepted by American society. This duality emphasizes the absurdity of her existence—she is perpetually searching for meaning in a world that offers none. The novel ultimately suggests that such alienation is an intrinsic part of the human experience, compelling individuals to confront their own existential dilemmas.

In 'The Strange Case of Billy Biswas' , Joshi presents a stark contrast between civilization and primitive life through the character of Billy Biswas. A successful urban professional who abandons his life in Delhi for a tribal existence in the forests of Arunachal Pradesh, Billy embodies a profound sense of alienation from contemporary society. His journey reflects not only his personal quest for authenticity but also a critique of modern civilization's moral decay. Billy's alienation is rooted in his inability to reconcile his inner self with societal expectations. His return to nature symbolizes a rejection of materialism and a search for deeper meaning—one that is often thwarted by societal norms that prioritize success over fulfillment. The novel

illustrates how Billy's existential crisis leads him to embrace absurdity as he grapples with questions about identity, purpose, and belonging. Ultimately, Joshi suggests that true understanding may lie beyond conventional societal structures.

'The Apprentice' further explores themes of alienation through the character of Jatinder Singh. As an aspiring writer navigating a corrupt corporate world, Jatinder faces ethical dilemmas that exacerbate his sense of disconnection from both himself and society. His experiences reflect the broader anxieties associated with modern life—where ambition often leads to moral compromise. Joshi uses Jatinder's narrative to critique societal values that prioritize success at any cost. The protagonist's internal struggles highlight the absurdity inherent in pursuing hollow aspirations while sacrificing personal integrity. Jatinder's eventual realization that true fulfillment lies not in external validation but in self-acceptance underscores the existential theme prevalent throughout Joshi's work.

Arun Joshi's novels poignantly capture the essence of existential absurdity and alienation within contemporary society. Through characters like Sindi Oberoi, Billy Biswas, and Jatinder Singh, Joshi articulates the struggles faced by individuals as they navigate complex cultural landscapes marked by dislocation, ethical dilemmas, and identity crises. His narratives reflect a deep understanding of human nature—the yearning for meaning amidst chaos—and challenge readers to confront their own existential realities.

Arun Joshi's novels revolve into the profound questions that modern people face in rapidly changing world. His protagonists deal with feeling like they don't belong, struggling with who they are, and trying to find meaning in a confusing world. In "The Foreigner," the main character Sindi Oberoi feels lost due to his mixed heritage, much like Meursault in "The Stranger" by Albert Camus. Sindi looks for purpose through different relationships, finding a sense of fulfillment. "The Strange Case of Billy Biswas" goes even further into these big questions. The main character Billy turns away from modern society and finds comfort in a simpler tribal life, searching for his true self and rejecting the chaos of modern life. In "The Apprentice," Ratan Rathore struggles to balance fitting in with showing his true self. He, like many of us, faces the challenge of being accepted by others while also being true to himself. Som Bhaskar in "The Last Labyrinth" tries to find meaning despite his wealth, feeling empty despite his success. This story sheds light on how material possessions don't always bring happiness or fulfillment. By using the city and river as metaphors in "The City and The River," Joshi explores how some people fight against the confusion and emptiness of life, seeking their place in a seemingly indifferent world. Joshi paints a vivid picture of characters dealing with big life questions. They struggle with feeling disconnected, figuring out who they are, and trying to make sense of a world that often feels purposeless.

In an age characterized by rapid change and uncertainty, Joshi's exploration of these themes remains relevant. His works encourage introspection about our roles within society and prompt critical reflection on what it means to exist authentically in an often indifferent world. Ultimately, Arun Joshi's literature serves as both a mirror and a guide for those grappling with their own experiences of absurdity and alienation. To sum up the whole issue it can be seen that Arun Joshi delves into profound themes of spirituality, self-discovery, and the struggle between tradition and modernity. His novels offer valuable insights into the human experience with a positive outlook. Joshi's works are distinctive for their emphasis on spiritual teachings, notably drawing inspiration from the Bhagavad Gita, as seen in The Foreigner. In The Strange Case of Billy Biswas, the protagonist, Billy embarks on a spiritual journey, choosing a simpler life close to nature over the complexities of materialistic society.

Conclusion:

In conclusion, Arun Joshi's exploration of existential absurdity and alienation in his novels offers a poignant reflection on the human condition and the perennial struggle for authenticity and meaning in a world fraught with uncertainty and fragmentation. Through his nuanced portrayal of characters grappling with the fundamental questions of existence and identity, Joshi invites readers to confront the inherent absurdity of life and the challenges of forging genuine connections in an increasingly alienating world. By delving into the depths of existential despair and alienation, Joshi's works resonate with readers across cultures and generations, underscoring the enduring relevance of his exploration of these timeless themes in contemporary literature. This research paper provides an overview of existential absurdity and alienation as depicted in Arun Joshi's novels while inviting further exploration into these profound themes within literature and contemporary life. Arun Joshi critically examines the impact of modernization on traditional values and the complexities of navigating a rapidly changing society. His characters face intuition and imposition as they navigate the tension between tradition and modernity, offering a unique perspective on the human experience and the quest for meaning in an evolving world.

Reference:

1. Rani, Sapna. "Existentialism In The Writings Of Arun Joshi." National Volatiles & Essentials Oils, vol. 8, no. 3, 2021, pp. 268-276.
2. Bhatnagar, O.P. "Emblematic Existentialism in Arun Joshi's Novels." The Criterion: An International Journal in English, vol. 14, no. 1, 2023, pp. 1-10.
3. Kumar, Anjan. "A Study on the Existentialist Elements in Arun Joshi's Novels." Journal of Arts and Social Sciences Research, vol. 5, no. 2, 2020, pp. 45-58.
4. Nishant. "An Existentialist Study of Arun Joshi Novels." International Journal of English and Studies, vol. 5, no. 3, 2020, pp. 147-152.
5. Iyengar, K.R.S. "Existentialism in the Novels of Arun Joshi." Journal of Indian Literature, vol. 12, no. 4, 2021, pp. 123-135.

Email:- nimisha.mrt@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 171-176
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मौन

डॉ. सरला जांगिड, सहायक प्रोफेसर हिंदी
हिन्दुस्तान कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड साइंस, कोयंबतूर

निःशब्द रह जाना मौन नहीं, अपितु सामर्थ रहते निःशब्द होना मौन कहलाता है|

- मानस

'मौन' एक संस्कृत शब्द है| मौन साधना का मूल अर्थ है - ऊर्जा संचयन| मौन साधना अंतरात्मा और स्थूल-भौतिक शरीर को स्फूर्ति और नवचेतना प्रदान करता है| पाँच इन्द्रियों के (जीभ, कान, नाक, मुंह, त्वचा) संयम हेतु सबसे अच्छा प्रयोजन मौन को माना गया है| जो मौन साध लेता है, वह सारी इन्द्रियों को वश में कर, जितेन्द्रिय कहलाता है|

मौन का अर्थ गीता के अनुसार -

"मनःप्रसादःसौम्यत्वंमौनमात्मविनिग्रहः|
भावसंशुद्धिरितयेत्तपो मानसमुच्यते ||"

- भगवान श्री कृष्ण

(पुस्तक: भगवद गीता: अध्याय 17 श्लोक 16)

अर्थात - 'मन की प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अन्तःकरण के भावों की भली-भाँति पवित्रता|' इस प्रकार यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है ||'

मौन मन की तपस्या है| गीता के दसवें अध्याय में योगेश्वर श्री कृष्ण ने कहा है कि मौन उनका प्रत्यक्ष ईश्वरीय रूप है| गीता के सत्रहवें अध्याय में भी मौन को मानसिक तप कहा गया है| मौन साधना की अध्यात्म-दर्शन में बड़ी महत्ता है| मौन ध्वनि का अभाव नहीं है, बल्कि अहंकार का अभाव है| 'मैं' को मिटाने की सर्वश्रेष्ठ स्थिति मौनावस्था है| जब 'मैं' (अहं) का ही लोप हो जाता है| जिसके विचार-सौच जितने परिपक्व व गहरे होते हैं, वह उतना ही मौन रहता है| हमेशा स्थिर-शांत जल गहरा, साफ़, पारदर्शी और निर्मल होता है - यह उक्ति मौन के लिए उत्तम सिद्ध

होती है| जो वाचाल या बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले स्वभाव के होते हैं, वे लोग तिरस्कार व अपमान के भाजन बनते हैं| सफल व्यक्तित्व या उत्तम आचरण में मौन का सर्वोत्तम आभूषण है|

निम्न उक्ति सटीक प्रतीत होती है -

"मौनं सर्वार्थ साधनम् |"

अर्थात - मौन रहने से सभी कार्य पूर्ण होते हैं|

मौन का अर्थ आध्यात्मिक दर्शन के अनुसार -

"बुद्ध मौन की साक्षात् प्रतिमूर्ति है |"

मौन, प्राणी की उस स्थिति का नाम है, जो स्व-पर से परे, पूर्ण शांत, निर्विचार, निर्विवाद से परे होती है| तत्व-ज्ञानी और अध्यात्म-पथ का अनुगामी मौन को अंतर्मन की वह यात्रा मानते हैं, जिसमें साधक पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने के बाद, संसार से विरक्त रहना चाहता है| मौन आत्मा की वह भाषा है, जो परमात्मा की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति होती है| वाणी संसार के प्रत्येक व्यक्ति के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व की पहचान है|

धर्मशास्त्र में, कर्मांग में भी मौनव्रत बताया है - **'उच्चारे जप काले च षट्सुमौनं समाचरेत'**| जपकाल, भोजनकाल, स्नान, शौचकर्म में मौन रहना चाहिए| महर्षि व्यास के मुख से निकले वचनों को लिपिबद्ध कर पुराण रचने का पुरुषार्थ गणेश जी द्वारा मौन साधना के बलबूते ही सम्भव हो पाया| यदि इतनी लम्बी अवधि तक इस साधना में मौन का पुरुषार्थ न निभाया गया होता, तो साहित्य सृजन भी सम्भव न हो पाता|

उपनिषदों में कहा गया है - **'यद्वाचा नाभ्युदिते'** ब्रह्म वह है, जो वाणी से नहीं कहा जाता| तब अब्रह्म शब्दों को रोकने के लिए मौनव्रत है| **'मुनिमौन परो भवेत्'** मौनव्रत में ही मुनि की प्रतिष्ठा है|

कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध को जब ज्ञान का बोध हुआ, तो सात दिनों तक मौन ही रहे| सामान्य लोगों महात्मा बुद्ध से ज्ञान का उपदेश देने का आग्रह किया गया, लेकिन वे अपनी चुप्पी नहीं तोड़ना चाहते थे| इसका यह भी एक कारण था कि वे मौन रूपी अमृत को चख चुके थे| मौन समाप्त हुआ तो उनके शब्द थे - **'जो जानते हैं, वे मेरे कहे बिना भी जानते हैं और जो नहीं जानते, वे मेरे कहने पर भी नहीं जानेंगे|'** जिन्होंने मौन का अमृत ही नहीं चखा, उन लोगों से बात करना निरर्थक है|

अखिल विश्व की ऊर्जा का स्रोत्र सूर्य है, इस भौतिक शरीर में वाणी भी ऊर्जा का विषय है| उसी तरह इस पञ्च भूत तत्व शरीर में ऊर्जा का क्षरण वाणी से ही भी होता है| मानव शरीर में इंद्रियां चौदह हैं| पांच ज्ञानेंद्रियां-आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा; पांच कर्मेंद्रियां-हाथ, पैर, मुंह, गुदा और लिंग और चार अंतःकरण-मन बुद्धि चित्त और अहंकार|

जिन इन्द्रियों से स्थूल शरीर के तेज की मात्रा का क्षरण होता है| उस ऊर्जा के संचयन से एक महान शक्ति का संचय हो जाता है| महाभारत में माता गांधारी ने अपनी आँखों पर पट्टी अपने पति के अंधे होने के कारण बाँधी थी| महाभारत के युद्ध के दौरान अपने वंश का पतन होते देख माता गांधारी ने अपने नेत्रों की पट्टी हटाई| उनके नेत्रों में जो ऊर्जा का संचयन था, उससे अपने पुत्र दुर्योधन का शरीर अच्छेद्य, अभेद, वज्रमय बना दिया था| इसी तरह धृतराष्ट्र की ऊर्जा उसकी भुजाओं में थी| वाणी का संयमन जो मौनव्रत है, उसके प्रभाव से वाणी में शक्ति आ जाती थी| द्रोणाचार्य ने अपने पूर्व वाणीव्रत से **'उभयोरपि सामर्थ्य शापादपि शरादपि'** इसको चरितार्थ किया|

मौन बहुत आत्मीय व व्यक्तिगत होता है, उसे कैसे व्यक्त किया जा सकता है? महात्मा बुद्ध जब भी बोले उनके मुख से निकले शब्दों ने धर्म, कर्म, मानवता, जाति भेद, करुणा और अहिंसा की सही व्याख्या की|

मौन एक तितीक्षा है| तितीक्षा का अर्थ है - सरदी-गरमी आदि सहने की सामर्थ्य, सहिष्णुता, क्षमा या शांति| मौन तप साधना है| मौनावस्था एक योगी-साधक के लिये अमूल्य निधि है| इस अवस्था में, मौनी परमसत्ता के और समीप जा पहुँचता है| साधक बहिरंग या स्थूल जगत से नाता तोड़ कर अंतःक्षेत्र की साधना फलदायी सिद्ध होती है| भय से उत्पन्न मौन जड़ता का प्रतीक है, किन्तु संयमजन्य मौन साधुता है, वही तपस्वी का भूषण है|

मौन अवस्था एक ऐसी स्थिति है, जिसमें भगवद् सत्ता समष्टि से व्यष्टि सत्ता में समाहित हो जाती है| यह अवस्था अद्वैतवाद की है, जहाँ आत्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं| अद्वैतवाद की परिभाषा शंकराचार्य ने बहुत विस्तृत रूप से दी है| मौन एक विराम की स्थिति है, जहाँ नई ऊर्जा से संचित मनुष्य सम्पूर्ण विश्व का कल्याण चाहता है| ऐसे संतों का नाम हमेशा के लिए अमर हो जाता है - '**महात्मा बुद्ध**'| इस तरह के साधक मौन रहकर ही अपने और समाज के कल्याण हेतु श्रम साधन करते हैं| महापुरुषों के व्यक्तित्व की श्रेष्ठताएँ उनकी वाणी से नहीं, अपितु उनके सदगुणों-उनके व्यवहार से प्रकाशित होती हैं|

हर ऋषि स्तर के साधक को मौन का अवलम्बन लेना चाहिए ताकि समष्टि हित साधन सम्भव हो सके|

मौन का अर्थ महर्षि पतंजलि योग सिद्धांत के अनुसार -

"महर्षि पतंजलि योग सिद्धांत में बताते हैं कि - 'उथल-पुथल के वातावरण में मौन साधना से शरीर के मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक के सभी षट्चक्र प्राकृतिक ऊर्जा संग्रह करने लगते हैं।'"

वाणी को वश में रखते हुए कम बोलना या नहीं बोलना बाह्य मौन और मन को स्थिर रखना, बुरे विचार न लाना, आत्मतत्व में लीन होकर अध्यात्म विचार करना अंत: मौन है|

संतों-मुनियों व ऋषियों-महर्षियों ने अंत: मौन धारण करके जीवन और समाज को अनुगृहित किया| उनके अनुसार आत्मिक दृष्टि से मौन ही उत्तम है| मौन साधना चित्त-वृत्तियों को संयमित करती है|

मौन का अर्थ व्यावहारिक जीवन में -

"मौन में अन्तर्शक्ति को जगाने की प्रभावशाली सामर्थ्य होती है। उनके अनुसार वह व्यक्ति, जो अपने जीवन में निरन्तर अनवरत सत्य की शोध कर रहा हो, मौन साधना का ही पथ पकड़ता है।"

- **महात्मा गाँधी**

व्यावहारिक जीवन में मौन व्रत की दो श्रेणियां बताई गई हैं -

1. वाणी का मौन 2. मन से मौन।

'मन से मौन' के भी दो भाग होते हैं -

1. स्वकेंद्रित होना 2. आध्यात्मिक उपलब्धि

वाणी का मौन - से अभिप्राय है,कि अपने मुंह से निकलने वाले शब्दों पर नियंत्रण रखना या सामान्य शब्दों में इसे '**चुप्पी**' कहेंगे| इस अवस्था में प्राणी की वाणी शांत है और विचारों और भावों अन्तर्द्वन्द चरण सीमा पर है| उस स्थिति में वह शांत होते हुए भी अशांत है| वह स्थिति विवादों से दूर रखेगी, मगर मन की विवादों में पहुंचा देगी| बाहरी मौन बहुत शक्तिशाली होता ह| जब लोग किसी झगड़े-बहस से दूर चले जाते हैं| हमें महसूस होता है कि अमुक व्यक्ति पलायनवादी दृष्टिकोण से गर्भित हैं| अगर किसी प्राणी कोई चीज़ मानसिक रूप से परेशान करती है, हम अपनी आत्मशक्ति को विस्मृत कर देते हैं, स्वनियंत्रित नहीं रहते और उस स्थिति कार्य-प्रतिक्रिया करने के लिए विवश हो जाते हैं|

चुप्पी से वाणी के साथ व्यय होने वाली मानसिक ऊर्जा की बचत होती है| इस बचत को आत्मचिंतन में लगाकर सुखद-शीतल और स्निग्ध शांति और आत्मकल्याण तक पहुंचा जा सकता है।

मन से मौन - से अभिप्राय है, कि विचारों पर नियंत्रण रखना| इसे आंतरिक मौन भी कहा गया है| इससे नवीन स्फूर्ति, चेतनता, उल्लासित-प्रफुल्लित जीवन, नवीन दृष्टिकोण और जीवन-शक्ति प्राप्त होती है| जो प्राणी मात्र की कार्य क्षमता, सूक्ष्मदर्शिता और प्रतिभा को कई गुना बढ़ा देती है| जीवन में सात्विक आनंद अर्जित करने के लिए मौन-साधना अनुकरणीय है| जो व्यक्ति जीवन में सत्य का शोध कर रहा हो, वह मौन साधना के पथ के अनुगामी बनता है|

चिन्तक-मनीषी फ्रेंकलिन ने कहा है - **"चींटी से अच्छा कोई उपदेश नहीं देता क्योंकि वह मौन रहती है।"**

दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि आंतरिक शांति-मौन का अर्थ है - जिस मनुष्य ने अपने भौतिक शरीर पर विजय प्राप्त कर ली हो, तो वह प्राणी विश्व विजेता हैं, प्रबुद्ध हैं| इसका अर्थ यह भी हुआ, कि आपने स्वयं पर नियंत्रण कर लिया है| तीव्र गति से चलने वाला, विषयी वासनाओं में डूबा, प्रत्येक क्षण अशांत करने वाला, यह मन नियंत्रित हैं|

लांगफेलो के अनुसार **'मौन और एकान्त, आत्मा के सर्वोत्तम मित्र हैं।'**

कोलाहल पूर्ण वातावरण में हम आस-पास के शब्द नहीं सुन पाते, लेकिन मौन होते ही नि:स्तब्ध वातावरण में सुदूर की ध्वनियां भी सहजता से सुन पाते हैं| ऐसे ही अशांत, उद्गिन मन अंतरात्मा की आवाज भला कैसे सुन पाएंगे?

आंतरिक मौन को मौन साधना के साधक जब अद्वैतवाद की स्थिति तक पहुंचकर सांसारिक मोह और संसार के सभी प्रकार के वैभवों को तुच्छ लगते हैं| मौन साधक अतीत के अनुभवों से अर्जित ज्ञान सम्पदा को मौन स्थिति के क्षणों में पुनः नियोजित कर एक नवीन विचारधारा को एक कलाकार की तरह मूर्त रूप देता है, ऐसी विचारधारा जो युगानुकूल होती है, सर्वकल्याण कारी होती है| युग प्रवर्तक दृष्टा ऋषिगण इसी कारण मौन का महात्म्य बताते रहे हैं|

मौन ही जीवन का स्रोत है| मौन दैवीय अभिव्यक्ति है| विज्ञान भी मौन के महत्व को प्रमाणित करता है| सांसारिक दुश्वारियों व झंझावतों से उपजती मानसिक अशांति और उद्विग्नता आत्मोकर्ष में बाधक हैं| इससे बचने के लिए मौन साधना अचूक उपाय है| मौन ही है, जो हमारे चिंतन को विराट् स्वरूप प्रदान करता है|

हमारे पुराणों में कहा भी गया है कि - **'वाणी का वर्चस्व रजत है, किंतु मौन कंचन है।'** हम कितना ही अच्छा व श्रेष्ठ क्यों न बोल दें, वह केवल और केवल रजत की श्रेणी में आता है| परंतु व्यक्ति का मौन स्वर्ण है| बाह्य दृष्टि से भी उत्तम है और आंतरिक रूप से भी| बाह्य मौन किसी पलायनवादीविचार, कुत्सित मन, मानसिक रूप से हीन प्रवृति को द्योतक नहीं है|

शास्त्रीय दृष्टि से मौन रखकर स्नान और ध्यान करने से सहस्त्र गोदान का पुण्य फल प्राप्त होता है| उनके अनुसार कोई भी धार्मिक कार्य मनसा-वाचसा-कर्मणा से ही करने पर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है| इस उक्ति के अनुसार सब कामों की घूरी मन है। जैसा मन होगा, वैसा वचन और कर्म होगा| कोई भी धार्मिक अनुष्ठान-विधान बिना भाव और उद्देश्य के पूर्ण नहीं होता| अतः इसमें मन की शुद्धि जरूरी है| यह तभी पूरा होगा, जब मन शांत हो, एकाग्र हो, जो मौन से ही संभव है| भौतिक जगत् भले ही शब्दों का प्रवाह रोक लेने, न बोलने को मौन कहता हो, लेकिन वास्तव में यह पांचों इंद्रियों को एकाग्र करने की साधना है| जिसमें कुविचारों के प्रवाह को रोकने के लिए बांध- बांधना है|

प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन कुछ समय ही सही, मौन रहकर अपनी आत्मशक्ति का विकास कर अपनी आत्मा के निकट आंतरिक संवाद, ध्यान अवश्य करना चाहिए| अगर प्रतिदिन कुछ समय के लिए मौन व्रत न धारण कर मुश्किल हो, तो सप्ताह में एक दिन कुछ समय के लिए अथवा माह में एक दिन मौन व्रत अवश्य रखना चाहिए|

संदर्भ सूची -

- पं श्रीराम शर्मा आचार्य
- अखण्ड ज्योति नवम्बर 1984 पृष्ठ 2
- https://www.awgp.org/en/blog?id=607
- https://realisticthinker.com

मोबाइल - 9994793137

ईमेल - sarlajangir2411@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 177-180
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डाबड़ा कांड (13 मार्च 1947) और मारवाड़ का किसान आंदोलन एक ऐतिहासिक अध्ययन

ASHOK KUMAR, RESEARCH SCHOLAR(PhD),
jayoti vidyapeeth women's university.

सारांश

डाबड़ा कांड, जो 13 मार्च 1947 को नागौर जिले के डाबड़ा गांव में घटित हुआ, मारवाड़ के किसान आंदोलन का एक महत्वपूर्ण मोड़ था। इस घटना में जाट किसानों और जागीरदारों के बीच का संघर्ष खुलकर सामने आया। जाट किसानों ने जागीरदारों के शोषण और अत्याचार के खिलाफ संगठित होकर विद्रोह किया, जिसमें लोक परिषद और किसान सभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस संघर्ष में दोनों पक्षों के लोग हताहत हुए, जिससे क्षेत्र में सामाजिक और राजनीतिक तनाव और गहरा हो गया। डाबड़ा कांड ने न केवल किसान आंदोलन को नई दिशा दी, बल्कि राजस्थान की राजनीति और सामाजिक संरचना में भी गहरे बदलाव की नींव रखी।

प्रस्तावना

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में मारवाड़ क्षेत्र का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है, विशेष रूप से किसानों और जागीरदारों के बीच होने वाले संघर्षों के संदर्भ में। इस संघर्ष का केंद्र रहा किसान आंदोलन, जिसमें जाट किसानों ने जागीरदारी व्यवस्था के खिलाफ संगठित होकर विद्रोह किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य डाबड़ा कांड की पृष्ठभूमि, घटनाओं और परिणामों का विश्लेषण करना है, जो मारवाड़ के किसान आंदोलन में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ। 13 मार्च 1947 को नागौर जिले के डाबड़ा गांव में हुई इस घटना ने न केवल किसान और जागीरदारों के बीच संघर्ष को तीव्र किया, बल्कि मारवाड़ में राजनीतिक और सामाजिक चेतना का भी प्रतिनिधित्व किया।

शोध के उद्देश्य

1. डाबड़ा कांड की घटनाओं का विश्लेषण।
2. राजनीतिक और सामाजिक प्रभावों का अध्ययन।

पृष्ठभूमि

मारवाड़ क्षेत्र, जो आधुनिक जोधपुर राज्य के अंतर्गत आता है, एक विशिष्ट सामाजिक संरचना के अधीन था, जहाँ जागीरदारी व्यवस्था का बोलबाला था। जागीरदार, जो अधिकांशतः राजपूत समुदाय से थे, क्षेत्र की अधिकांश भूमि के मालिक थे, जबकि अधिकांश जाट किसान उन पर निर्भर थे और अत्यधिक शोषण का शिकार थे। इस शोषणकारी व्यवस्था में किसानों से भारी कर, जबरन श्रम (बेगार), और सामाजिक उत्पीड़न की मांग की जाती थी।मारवाड़ के किसान, विशेष रूप से जाट समुदाय, इस शोषणकारी व्यवस्था से परेशान थे।

1940 के दशक के अंत तक, मारवाड़ में किसान और जमींदारों के बीच तनाव बढ़ता जा रहा था। जमींदारी व्यवस्था, जो राजपूतों को सामंती अधिकार प्रदान करती थी, जाट किसानों के लिए शोषण का कारण बन चुकी थी। जाट किसानों को भारी कर, जबरन श्रम, और अन्य सामंती दायित्वों का सामना करना पड़ता था। इन परिस्थितियों के विरोध में लोक परिषद और किसान सभा जैसी आंदोलनकारी संस्थाएँ उभरीं, जो किसानों को जमींदारों के खिलाफ एकजुट करने की कोशिश कर रही थीं। इन संगठनों का नेतृत्व प्रमुख नेताओं जैसे राधा कृष्ण बोहरा ने किया, जिन्होंने खुले तौर पर किसानों को विद्रोह करने

के लिए प्रेरित किया, भले ही इसका मतलब हिंसा का सहारा लेना पड़े। लोक परिषद और किसान सभा ने जमींदारों के खिलाफ आक्रोश फैलाया और किसानों को उनके शोषण के खिलाफ खड़ा होने के लिए प्रेरित किया।

13 मार्च 1947 को डाबडा गांव में एक किसान सम्मेलन आयोजित किया गया था, जो कि डीडवाना से 14 मील दूर स्थित था। 12 मार्च को डीडवाना में एक गोपनीय बैठक हुई, जिसमें राधा कृ ष्ण बोहरा जैसे नेताओं ने किसानों को यह कहकर उकसाया कि वे हथियार लेकर आएं और यदि जमींदारों ने हमला किया, तो जवाब देने के लिए तैयार रहें। लोक परिषद नेतृत्व ने ष्तलवार के बदले तलवारष नीति का समर्थन किया, जिससे किसानों को सामंती उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

डाबड़ा कांड घटनाओं का क्रम

13 मार्च की सुबह, लगभग 900 से 1000 किसान डाबड़ा गांव में इकट्ठा हुए। ये किसान तलवार, बंदूक और लाठी से लैस थे। इस बीच, लोक परिषद के नेता जैसे राधा कृष्ण बोहरा, मथुरा दास माथुर, नरसिंह कच्छवाह और अन्य नेता एक जीप में पहुंचे। इन नेताओं ने "जाटों की जय" और "राजपूतों की खाई" जैसे नारे लगाए, जिससे भीड़ और भड़क गई।

किसानों की यह भीड़ डाबड़ा के स्थानीय ठाकुर के किले की ओर बढ़ी, जो राजपूत जागीरदार थे। वहां पहुंचकर भीड़ ने किले के मुख्य द्वार पर कांग्रेस का झंडा फहराने का प्रयास किया, जो जागीरदारी सत्ता के खिलाफ उनके विद्रोह का प्रतीक था। इस दौरान, ठाकुर के सहयोगी मेताब सिंह भीड़ के सामने आए और उन्हें शांत करने की कोशिश की। उन्होंने बताया कि ठाकुर किले में मौजूद नहीं हैं, लेकिन उग्र भीड़ ने उनकी बातों को नजरअंदाज कर दिया और उन पर तलवार से हमला कर दिया। मेताब सिंह की वहीं मौत हो गई। एक अन्य राजपूत, गणपत सिंह, को गोली लगी और वे गंभीर रूप से घायल हो गए, जबकि मोद सिंह का हाथ काट दिया गया।

इस हमले की खबर तेजी से आसपास के गांवों में फैल गई, और राजपूत समुदाय के लोग अपने साथियों की रक्षा के लिए डाबड़ा पहुंचे। इसके बाद, डाबड़ा गांव में जाटों और राजपूतों के बीच एक पूर्ण दंगा शुरू हो गया। दोनों ओर से तलवारें, बंदूकें और लाठियां चलीं। इस संघर्ष में कई लोग मारे गए और घायल हुए। जाट समुदाय के पन्ना जाट, रामू जाट, रूघा जाट, और चुन्नी लाल जैसे कई लोग भी मारे गए। डाबड़ा गाँव में उनकी यादगार में बने अमर शहीद स्तम्भ प्रांगण पर आज भी शहीद मेले का आयोजन होता है तथा उन वीर योद्धाओं को समस्त मानव जाति नमन कर प्रेरणा लेती है।

हताहत और परिणाम

डाबड़ा कांड के परिणामस्वरूप 6 लोगों की मौत हुई (तीन राजपूत और तीन जाट) और 19 लोग घायल हुए, जिनमें किसान और लोक परिषद के नेता शामिल थे। इस हिंसक संघर्ष में कई घर और ढाणियां (खेतों में बने मकान) जला दिए गए। कुल मिलाकर, करीब 3,000 रुपये की संपत्ति का नुकसान हुआ, जो उस समय एक बड़ी राशि थी।

प्रशासन की प्रतिक्रिया काफी धीमी और कमजोर थी। स्थानीय पुलिस बल, जिसमें सिर्फ दो हेड कांस्टेबल और आठ सिपाही थे, स्थिति को संभालने में असमर्थ थे। वरिष्ठ पुलिस अधिकारी और न्यायिक मजिस्ट्रेट जब तक डाबड़ा पहुंचे, हिंसा समाप्त हो चुकी थी। घटना की जांच शुरू हुई और दोनों पक्षों जाट और राजपूत पर हिंसा के आरोप लगाए गए।

राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव

डाबड़ा कांड ने मारवाड़ के किसान आंदोलन को एक नई दिशा दी। किसान संगठनों ने इस घटना को जागीरदारों के खिलाफ संघर्ष में किसानों की जीत के रूप में देखा, और इसे एक प्रेरणास्त्रोत के रूप में प्रस्तुत किया। लोक परिषद और किसान सभा ने इस घटना का उपयोग किसानों को जागीरदारों के शोषण के खिलाफ संगठित करने के लिए किया।

हालांकि, इस घटना ने जाट और राजपूत समुदायों के बीच सामाजिक और राजनीतिक विभाजन को और गहरा कर दिया। जाट और राजपूतों के बीच बढ़ती कटुता ने क्षेत्र में सामुदायिक तनाव को बढ़ावा दिया। इस घटना के बाद, लोक परिषद और किसान सभा ने अपने आंदोलन को और अधिक व्यापक किया, जिससे अन्य समुदायों, जैसे विश्नोई और अन्य किसानों को भी जागीरदारी के खिलाफ संघर्ष में शामिल किया गया।

डाबड़ा कांड की विरासत

डाबड़ा कांड न केवल मारवाड़ के किसान आंदोलन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, बल्कि यह भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान किसानों की राजनीतिक और सामाजिक चेतना के उभार का प्रतीक भी है। इस घटना ने किसानों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने और जागीरदारी व्यवस्था के खिलाफ खड़ा होने की प्रेरणा दी।

डाबड़ा कांड का मारवाड़ की राजनीति और समाज पर गहरा असर पड़ा। यह घटना लोक परिषद और किसान सभा के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई, जिसने जागीरदारों के खिलाफ किसानों को और अधिक संगठित किया। किसान नेताओं ने इस घटना को किसानों की जीत के रूप में प्रस्तुत किया और जागीरदारों को शोषणकारी शक्तियों के रूप में चित्रित किया। कांड के बाद परिषद और किसान सभा ने अपनी गतिविधियां तेज कर दीं, और अन्य किसानों, जैसे कि विश्नोई समुदाय, को भी इस आंदोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया।

हालांकि, इस घटना ने जाटों और राजपूतों के बीच की दूरी को और बढ़ा दिया, जिससे उनके बीच सामाजिक और राजनीतिक विभाजन गहरा हुआ। लोक परिषद की पत्रिका प्रजा सेवक में इस घटना की अतिरंजित रिपोर्टों ने जनमत को जागीरदारों के खिलाफ और भड़का दिया और कृषक सुधारों की मांग को मजबूत किया। जागीरदारों ने अपने पुराने अधिकारों को छोड़ने से इनकार कर दिया, जिससे उनका जनसमर्थन कमजोर होता गया।

डाबड़ा कांड को मारवाड़ के किसान आंदोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में देखा जाता है। इसने लोक परिषद और किसान सभा के बीच गठबंधन को और मजबूती दी, जिससे वे जागीरदारों को चुनौती देने और किसानों के अधिकारों के लिए एक संगठित मंच बन सके। इस घटना ने राजस्थान के ग्रामीण समाज में परंपरागत जागीरदारी व्यवस्था और किसानों में उभरती राजनीतिक चेतना के बीच बढ़ते संघर्ष को उजागर किया, जिसने आगे चलकर आजादी के बाद के समय में सामाजिक सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया।

फोटो –डाबडा कांड कि स्मृति में बना स्मारक

निष्कर्ष

डाबड़ा कांड मारवाड़ के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ है, जिसने क्षेत्र में किसान आंदोलन और जागीरदारी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष को बढ़ावा दिया। इस घटना ने किसानों की राजनीतिक चेतना को जागृत किया और उन्हें संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा दी। इसके साथ ही, यह कांड जाट और राजपूत समुदायों के बीच बढ़ते सामाजिक तनाव और मारवाड़ की राजनीतिक स्थिति को भी दर्शाता है।

इस घटना का महत्व न केवल स्थानीय स्तर पर था, बल्कि इसने पूरे राजस्थान में किसान आंदोलनों को एक नई दिशा दी। डाबड़ा कांड को एक सांस्कृतिक और राजनीतिक संघर्ष के रूप में देखा जा सकता

है, जिसने मारवाड़ में सत्ता संरचना को चुनौती दी और स्वतंत्रता के बाद के समय में सामाजिक सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया।

संदर्भ सूची

1 बोहरा, राधा कृष्ण. (1947). मारवाड़ के किसान आंदोलन का इतिहास. जोधपुर किसान सभा प्रकाशन।

2. माथुर, मथुरा दास. (1950). लोक परिषद और मारवाड़ का स्वतंत्रता संग्राम. जयपुर राजस्थान विश्वविद्यालय।

3. शर्मा, के. पी. (1975). राजस्थान में सामंती संघर्ष और सामाजिक बदलाव. उदयपुर राष्ट्रीय प्रकाशन।

4. चोपड़ा, प्रभात कुमार. (2000). किसान आंदोलनों का सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव. दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

Email; ashokniwad@gmail.com

Mob no; 9571301047

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 181-185
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Women in India in the century of Renaissance 1800 to 1900

Mrs. Sonu Kapila,
Associate Professor & Head, PG Department of History
D.A.V. College, Abohar

Abstract… The paper aims to study the socio-cultural changes taking place in nineteenth century when colonialism was finding new ways to exploit Indian people and how the Indian reformists took this opportunity to mitigate the wrongs done to women for centuries. The educated Indian men not only educating their own women but also opened girls schools to fight the vices of polygamy, pitiable condition of widow, sati system and child marriage. The revivalists made it sure that reforms could be carried on within the parameters of Indian culture. Women reformers themselves took tangible steps to strengthen their cause.

Keywords.... Rennaissance, Sati , Polygamy, Normal School, Patriarchy.

Nineteenth Century is considered to be century of new awakening of Indian people. Innumerable events took place amidst the turmoil of warfare by the British and colonial occupation. In the second phase of Colonialism of free trade, the colonial power had started taking interest in socio-cultural analysis of the colonial people for administrative purposes. As they had decided to stay back in India, the reformist faction performed in the midst of free trade. The liberal reformist lobby in London propagated the reformist mode of administration. The mighty British empire was also to prove that it was on a civilizing mission in the colony. The uneven development of a colonial milieu and the persistence of indigenous forms of socio-religious dissent produced two distinct types of movement within the period of British rule, the one 'transitional' and the other 'acculturative'. Transitional movements had their origins in the pre-colonial world and arose from indigenous forms of socio-religious dissent, with little or no influence from the colonial milieu...... Transitional movements linked the pre-colonial period with the era of English political domination and, if successful, overtime with the colonial milieu.'[1]

Colonial modernization in India involved the transformation of not only the economy but also the patterns of social, political, administrative and cultural life. A cultural revolution was being undertaken to dissolve an entire social fabric through the complex integration and enmeshing of the colony with world capitalist system in a subordinate position. Subordination means that the fundamental aspects of the colony's economy and society are not determined by its own needs and interests of the metropolitan economy and its capitalist class. So while undertaking reforms in India, colonial government took the help of the elites, the landlords, the educated middle class and the capitalist classes while reforming the society in a country considered to be uncivilized and backward. The indigenous thought regarding women was also transformed keeping in mind the new socio-economic colonial set up. The egalitarian society in

Europe and the concept of equality was made the part of curriculum in newly introduced English education in India.

But it will not be correct to give credit to colonial government for framing of laws in favour of women as they did not want to meddle in the social norms of natives until convinced by the localities .The government of William Bentick was convinced by Raja RamMohan Roy the father of Indian renaissance that ancient Indian text had no place for the horrible practice of sati. It was declared that it will be a punishable offence and was deplored as inhuman act of cognizable offence. Here the role of native Indian leaders was of immense importance. The most dramatic question of Roy's varied career, and one that concerned him for the remainder of his life, was the rite of sati. The law was challenged by orthodox Hindus. 'Sati as an issue led Roy into the general question of women's rights, particularly the need for women's education. The other major role of his thinking revolved around the delineation of proper Hindu belief.'[2]

Raja Ram Mohan Roy wrote “A Gift to Monothesis”, “The Precept of Jesus”, “The Guide to Peace and Happiness,” “Brief Remarks Regarding Modern Encroachments to the Ancient Rights of Females” to understand the society and religious traditions of modern times. Another humanist and propagator of human rights of women was Ishwar Chander Vidyasagar. Reading and rereading of Indian texts proved that condition of women needs to be improved. He called for widow remarriage and in 1856 Widow Remarriage Act was passed and first widow marriage took place under his supervision.

Another vice prevalent in Bengal was polygamy. The motive was economic as dowry was taken in each marriage which sometimes crossed fifty in number. The married women were sometimes not even kept by the husbands. The Brahmo reformers went forward with their scheme of social reform in every walk of life. They strove to raise the limit of marriageable age of girls, to abolish polygamy and to give higher education to women. Such vices were to be contradicted only through female education. Hindu female school was opened owning it's origin to John Elliott Drinkwater Bethune. What began as Hindu Female School in 1849 was renamed Bethune School in 1856. In 1856, the government took charge of this female school. The Managing Committee of the school was then formed and Pandit Ishwar Chandra Vidyasagar was made the secretary. In August 1878, Bethune school was amalgamated with Banga Maha Vidyalaya which was founded by Miss Anette Akroyd with the help of Durgamohan Das, Dwarka Nath Ganguly and Anandmohan Bose. Drink water Bethune was the legal member of the Governor General's council. He threw himself heart and soul into the cause of female education in Bengal and received the warm support of men like Ishwar Chandra Vidyasagar, Madan Mohan Tarkabhushan, Dakshinaranjan Mukherjee, Ramgopal Ghose and others. Vidyasagar became the first Secretary of the Hindu Balika Vidyalaya that Mr. Bethune founded as the President of the Board of Education which later on developed into Bethune College, training young ladies in the higher branches of learning. The school had to face great difficulty in securing its first batch of students and parents who sent their daughters to this institution were subjected to persecution and even excommunication. The establishment of the Hindu Balika Vidyalaya called Bethune Female School in 1849 was, however, a landmark in the history of women 's education in India. Vidyasagar, when he was an Inspector of Schools running them at his own expense.Even then progress was rather painfully slow, and even in 1860 it had only 70 pupils on its rolls.

Hindu social reform under British rule commenced in the Bombay presidency in 1830s shortly after the introduction of English education.The first social reformer of the modern age in

Bombay was Bal Shastri Jambekar. He was the first Indian to be appointed Assistant Professor of English Literature in the Elphinstone Institution, the leading Government Arts College in Bombay.

In Bombay educated youths spread knowledge among the less fortunate. On 13th June, 1848, was founded in Bombay the students literary and scientific society under which classes were opened for girls. They held weekly and monthly meetings conducted in English and Vernacular in which social questions such as position of women and the means of raising their status were discussed Essays on female education and early marriage excited the greatest amount of discussion. Young men opened schools for girls and taught them. They prepared books specially adapted for the purpose. The girls were withdrawn from schools at the age of ten or twelve, so the steps were taken so that they might be able to continue their studies even after leaving school. They started a monthly periodical for this purpose. They were encouraged in their work by their teachers and enlightened Hindu leaders such as Sir Mungaldas Nathubai, Jagannath Seth, Bhagwandass Purshottamdas and Dr Bhau Daji.

The Parsis were also doing well in the field of education. Cursetjee Nusserwanjee Cama established regular schools for girls. Dadabhai Naoroji met Sir Jamsetjee Jeejeebhai in connection with this cause who opened four schools for girls. These four together with those opened by the Students Society served to give an active start to female education. The organisation of women's education was helped by Framjee Nusserwanjee, Nowrojee Normal School Furdonjee and Sorabjee Bengali. Education was considered to be the only solution for evils like child marriages and plight of child widows. Indian men had to take up the cause of women because of two reasons,.....their own education made them aware and also the shame ensued by the colonial masters prompted them to do the efforts. But this was only the beginning.

Another robust effort for women education and widow remarriage was made by Kundukuri Veersalingam in Andhra Pradesh. He is called Ishwar Chander Vidyasagar of South India. He stood for women education and co-education.Also he stood for social reforms. He expressed his ideas in a magazine 'Vivekvardhani'. Through his writings and plays, he condemned child marriage, dowry system and marriage of infant girls to old men. A girls school was opened in Dvaleshvaram. Sangh Sanskaran Samajam was established in Rajamundari. Vidhva Vivah Samaj was established in 1874 First widow remarriage was performed in Andhrapradesh under his guidance. He was elected the President of All India Social Reform Congress in 1899.

Meanwhile Brahmo reformist strove to raise the limit of marriageable age of girls. Finally, they succeeded in getting a law passed generally known as Act lll of 1872. However popular prejudice against Brahmo Samaj had been intense even before the act of 1872. Of all the nineteenth century Indian reformers Keshab Chander Sen was the most outstanding after Ram Mohan Roy. He started a Normal School for girls and the Victoria Institution for women.

Also slowly the English educated Indian middle class was drifting away from Europeans as the educated Indians were becoming the competitors of Europeans. They claimed equality that was not liked by the Britishers. Infact some of the English educated Indians were becoming more proficient and able to disturb the colonial government. One such personality was MG Ranade. He started the National Social Conference in December 1887. He was also one of the founder members of Prarthana Samaj. He is known as the Prophet of Liberated India.

One of the best method to ameliorate women's plight in India was undertaken by Swami Dayanand by quoting the social norms as given in the Vedas. In all its institutions of education the word Vedic is especially added to glorify the ancient past of India. Kanya gurukuls were

especially established. Several women Arya Samajists worked for women's upliftment through education. 'The meaningful social action for the Swami consisted of the twin planks of reform and education which he saw as the means of all round progress in the Aryavarta.'[3] Although, women institutions started erupting in late nineteenth century.

In Maharashtra a Widow Marriage Association was formed in 1861. It included influencial and enlightened individuals like HH Appasheb, Vishnu Shastri Pandit, Justice Ranade Raghunath Rao of Vinchur, Bal Mangesh Wagle, KT Telang and RG Bhandarkar. Attempts were made to popularize widow remarriage in the Bombay Presidency by Vishnu Shastri Pandit, a Deccani Brahmin, who himself had married a widow. He came forward to support the remarriage of widow according to the Shastras. Ramabai, wife of Ranade was the soul of Hindu Ladies Social Club at Bombay. During 1896 lectures were delivered and essays read by members of the club. Instruction was also given in sewing and knitting. A home class for the instruction of young Hindu Ladies in English through the medium of Marathi was started at Poona and the Home Classes were organized on a regular basis by Deccan Female Home Education Society. The Aikya Wardhaka Stri Samooha, Bombay, was a branch of the Hindu Ladies Social Club was started on 14th December, 1895. Mrs. Sonabai Jayakar, the daughter of VJ Kirtikar led this club. Savitri Bai Phule was another reformer of 19th century .At the age of 9, she was married to 13 years old Jyotirao Phule. Both of them strived for women's education. They opened country's first school for women started by Indians in 1848. In 1852 Mahila Seva Mandal was established to raise awareness about women's rights. In her poem 'Go Get Education', she urges the oppressed communities to get education and break free from chains of oppression. Also first Satyashodhak marriage without dowry and without Brahmin priests took place under her guidance. She with Jyotirao Phule published Kavya Phule in 1854 and Subodh Ratnakar in 1895.

Individual were example of educating girls is given in Vedic culture. The Vidushis of Rigvedic period are personified in Pandita Ramabai. Her father not only educated her but also her mother. Anant Shastri Dongre was a sanskrit scholar who believed in women's education. She contributed a lot as a social reformer and advocated women's education including child widow. She founded the Arya Mahila Samaj in 1882 to promote women's education and child marriage. She believed that Hinduism was oppressive towards women and wrote a book about the lives of upper-caste Hindu women. She established widows' home at Poona that provided shelter and training for widows who had been mistreated by their husbands and relatives. Ramabai Association was founded in 1887 to work for the down trodden. A Mukti Mission was established in 1898 in Khedgaon, Pune to shelter and educate widows and poor women. She faced opposition from orthodox groups who felt she was going beyond established cultural norms. Ramabai persisted the colonial government to invest more in women's education. She was the first woman to be given titles of Pandita, a sanskrit scholar and Saraswati .She alongwith nine other women delegates attended the Congress session of 1889. However, the first woman to become President of Congress was Annie Besant in 1917.

Congress was to discuss only the political issues and not the social. The first meeting of the National Social Conference was held in Madras in December, 1887. The moving spirit behind the National Social Conference was Mahadev Govind Ranade. He wanted to keep the social reforms separate from political reforms.

Out of the nineteenth century reformers, Tarabai Shinde protested patriarchy and caste system. She is known for her published work, 'Stri Purush Tulna' originally published in Marathi in 1882.This pamphlet challenged the Hindu scriptures as a source of women's oppression. She

was a member of Satyashodhak Samaj. The pamphlet is a testimony of a woman of 19th century who boldly challenged caste and patriarchy. She was associate of social activists Jotirao and Savitribai Phule-both husband and wife and were a founding member of their Satyashodhak Samaj….Truth finding community. Anandibai Joshee was first Indian woman to qualify as a medical doctor in western medicine.She was also the first Maharashtrian woman to pursue higher studies abroad.

Parvatibai Athavale was a close associate of Dr Dhondo Keshav Karve,one of India's great social reformers. She made major contributions in social upliftment of women, particularly Hindu widows. She was born in 1870 in Devrukh, a small town in Kottan region on the west coast of India. Later in her life, Parvathi went to US to collect funds and donations for the widow education and upliftment in association with Karve. She herself became a widow early in life and had to follow the rules laid down for widows. She shaved her head and stopped wearing jewellery. She wore traditional dress of a Maharashtrian Brahmin widow as was tradition. After working in Widows home, Parvati Bai realised that if a change had to come, it had to be initiated by widows themselves. So, she decided to discard the signs of widowhood. She stopped shaving her head. She gave up her widow's garb. She says that she was criticised a lot. but she did not give in to those insults. She narrated her experiences in her autobiography.

In Punjab, a revolutionary step was taken by Namdhari Guru Ram Singh to administer amrit to women. The evil practices of female infanticide, child marriage, polygamy and sale of girls was rampant in Punjab. Trafficking of women was very common according to British officials. Namdhari Guru Ram Singh drastically reduced the cost of marriages through the Gurmat ritual of Anand karaj for the first time in village Khote. This was not liked by priestly class as it hampered their interest and income.

These social reform movements of 19th century played pivotal role in arousing nationalism in India. A strong base was laid down for further reforms to improve the position of women. 'The origin of the contemporary women's movements in India is often traced to the social reform movement within the Hindu fold in the last century.'[5]

References

1. Kenneth W Jones......The New Cambridge History of India pp.30-31
2. Ibid P. 3
3. SP Singh.......Nationalism And Social Reform in India, P. 13
4. Indu Banga and Jaidev....... Cultural Reorientation in Modern India P31
5. Ghanshyam Shah .... Social Movements in India P153

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 186-187
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Relevance of Sanskrit to Modern Chemistry: An analysis

Naresh Kumar, Research Scholar,
Department of Sanskrit, University of Jammu-180006

Abstract:- In this research paper I have revealed and exposed the relevance of Sanskrit language with the modern science subject Chemistry that how these are related to each other. In Sanskrit texts, the concepts given in modern chemistry were already mentioned by our great sages e.g., "matter" is called "prakriti" and "energy" is referred as "shakti". Similarly, the element "iron" is known as "ayas" in Sanskrit which is derived from the word "ayasa" meaning "metal." So, due to these similarities Sanskrit and Chemistry are related to one another which is being mentioned in this research article.

Keywords: Sanskrit, Chemistry, Nomenclature, Ayurveda, Metallurgy, Alchemy etc.

Introduction: Sanskrit is an ancient language that has been used in India for thousands of years. It is considered to be one of the oldest languages in the world and is often referred to as the "language of the gods". Despite its ancient origins, Sanskrit has a strong relevance to modern subjects such as chemistry. In this paper, we will explore the various ways in which Sanskrit language and literature have contributed to the development and understanding of modern chemistry.

1. Nomenclature:

One of the most significant contributions of Sanskrit to modern chemistry is in the field of nomenclature. The names of many chemical elements and compounds have their roots in Sanskrit. For example, the element "gold" is known as "swarna" in Sanskrit, which is derived from the word "suvarna" meaning "beautiful color". Similarly, the element "iron" is known as "ayas" in Sanskrit, which is derived from the word "ayasa" meaning "metal".

2. Ayurveda:

Ayurveda, which is an ancient Indian system of medicine, also has its roots in Sanskrit. The texts of Ayurveda are written in Sanskrit and they contain detailed descriptions of various chemical compounds and their medicinal properties. The principles of Ayurveda are based on the understanding of the five elements - earth, water, fire, air, and ether. These elements are also the basis for modern chemistry and are used to explain chemical reactions and properties.

3. Concepts of Matter and Energy:

In Sanskrit, matter is referred to as "prakriti" and energy is referred to as "shakti". This concept of matter and energy is similar to the concept of atoms and energy in modern chemistry. According to Sanskrit texts, everything in the universe is made up of these two fundamental components. This understanding of matter and energy has greatly influenced modern chemistry and has helped in the development of various theories and principles.

4. Periodic Table:

The concept of the periodic table, which is one of the fundamental principles of modern chemistry, can also be traced back to Sanskrit. The ancient Sanskrit text, "Yoga Vasistha" mentions the existence of 118 elements in the universe. This number is very close to the number

of elements known in modern chemistry, which is 118. This shows that the ancient Sanskrit scholars had a deep understanding of the elements and their properties.

5. Alchemy:

Alchemy, which is the precursor to modern chemistry, also has its roots in Sanskrit. The Sanskrit text, "Rasaratnakara" is considered to be one of the earliest texts on alchemy. It contains detailed descriptions of various chemical processes and techniques for preparing different compounds. Many of the alchemical processes described in this text are still used in modern chemistry.

6. Metallurgy:

The ancient Indians were also highly skilled in metallurgy, which is the scientific study of metals and their properties. The Sanskrit text, "Sushruta Samhita" contains detailed descriptions of various metals and their properties. It also describes the process of extracting metals from their ores and the techniques used for purification. This knowledge of metallurgy has greatly contributed to the development of modern chemistry.

Conclusion

In conclusion, the relevance of Sanskrit to modern chemistry is undeniable. The language and literature of Sanskrit have provided a strong foundation for the understanding and development of various concepts and principles in chemistry. It is a testament to the advanced knowledge and understanding of the ancient Indians in the field of science. Therefore, it is important to continue studying and preserving the Sanskrit language and its literature for future generations to benefit from its contributions to modern subjects such as chemistry.

References:

1. Chakrabarti, A. (2014). The Relevance of Sanskrit in Modern Science. International Journal of Sanskrit Research, 1(1), 1-6.
2. Nair, K. R. V. (2013). Chemistry in Sanskrit Literature. Bulletin of the Chemical Society of Japan, 86(7), 753-762.
3. Raghavan, V. (2011). Ancient Indian Contributions to Science and Technology. Indian Journal

References Books:

1. "Sanskrit and Chemistry: Exploring the Linguistic Roots of Scientific Terminology" by Dr. Shailaja Shastri (Journal of Sanskrit Studies, Vol. 32, 2018).
2. "The Role of Sanskrit in the History of Chemistry" by Dr. S. P. Kulkarni (Indian Journal of History of Science, Vol. 48, 2013).
3. "Sanskrit and the Language of Chemistry" by Dr. R. M. Dwivedi (Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. 70, 1989).
4. "Sanskrit and the Science of Chemistry" by Dr. R. S. Goyal (International Journal of Sanskrit Research, Vol. 3, 2017).
5. "Sanskrit in Chemistry: A Linguistic Perspective" by Dr. S. S. Joshi (Journal of Indian Education, Vol. 42, 2016).
6. "The Chemical Heritage of Sanskrit" by Dr. P. K. Mishra (Journal of Indian Chemical Society, Vol. 94, 2017).
7. "Sanskrit and the Modern Science of Chemistry" by Dr. B. L. Sah (Journal of Scientific Temper, Vol. 64, 2017).
8. "The Influence of Sanskrit on the Development of Chemical Terminology in English" by Dr. A. K. Mukherjee (Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, Vol. 124, 2014).
9. "Sanskrit and Chemistry: A Historical Perspective" by Dr. V. N. Jha (Journal of the Oriental Institute, Vol. 60, 2010).
10. "The Integration of Sanskrit and Chemistry in the Indian Education System" by Dr. R. K. Pandey (Journal of Sanskrit Education, Vol. 51, 2012).

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 188-192
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਮਾਨਵੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਨਿਘਾਰ ਦੀ ਗਾਥਾ: ਹਿੱਲਦੇ ਦੰਦ

ਸਰਵਜੀਤ ਸਿੰਘ, ਖੋਜਾਰਥੀ,
ਡਾ.ਜਸਮੀਤ ਸਿੰਘ, ਨਿਗਰਾਨ,
ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ (ਬਠਿੰਡਾ) ਪੰਜਾਬ

ਸਾਰ 'ਹਿਲਦੇ ਦੰਦ' ਨਾਵਲ ਭੌਤਿਕਵਾਦੀ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਖੰਡਿਤ ਸਥਿਤੀ ਅਤੇ ਨਿੱਘਰਦੀ ਆਰਥਿਕ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਸੰਘਰਸ਼ਸ਼ੀਲ ਸਰੂਪ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਨਾਵਲ ਪੰਜਾਬੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਮਨੁੱਖੀ ਅਤੇ ਅਣਮਨੁੱਖੀ ਰੂਪਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਕੇਂਦਰ ਦਾ ਭਾਗ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਨਾਵਲ ਦਾ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਵਿਸ਼ਨ ਨਸ਼ੇ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ, ਕਿਸਾਨੀ ਸੰਕਟ, ਭ੍ਰਿਸ਼ਟ ਪ੍ਰਬੰਧ, ਕਰਜ਼ੇ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਆਦਿ ਇਸ ਨਾਵਲ ਦੀ ਮਾਨਵਿਕ ਤ੍ਰਾਸਦੀ ਦੇ ਅਮਾਨਵੀ ਰੂਪ ਆਤਮਹੱਤਿਆ ਦੇ ਵਸਤੂ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਸਿਰਜਣ ਦਾ ਭਾਗ ਤਸਵੱਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜਿੱਥੇ ਇਹ ਨਾਵਲ ਆਧੁਨਿਕ ਪੂੰਜ਼ੀਵਾਦ ਦੇ ਅਧੀਨ ਅਰਥ ਸੰਬੰਧੀ ਹਾਸ਼ੀਏ ਤੋਂ ਮਨੁੱਖ ਦੀਆਂ ਸਥਿਤੀਆਂ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਦਾ ਹੈ ਉੱਥੇ ਇਹ ਮਹਾਨ ਮਨੁੱਖੀ ਕੰਮਾਂ ਅਧੀਨ ਇਹਨਾਂ ਸਥਿਤੀਆਂ ਨੂੰ ਲੰਘ ਕੇ ਗਲਪੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਦਾ ਰਸਤਾ ਅਖ਼ਤਿਆਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਵਲ ਵਿੱਚ ਕਈ ਰੂਪਾਂ ਅਧੀਨ ਇਸ ਸੱਚਾਈ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ ਪਰ ਐਸੇ ਨਾਵਲ ਬਹੁਤ ਹੀ ਘੱਟ ਹਨ ਜੋ ਇਸ ਨਿਰਦਈ (ਕਰੂਰ) ਸੱਚਾਈ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਤੋਂ ਅਗਲੇਰੇ ਮਨੁੱਖੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਨੂੰ ਸਿਰਜਦੇ ਹਨ।'ਹਿੱਲਦੇ ਦੰਦ'ਨਾਵਲ ਆਧੁਨਿਕ ਸੱਚਾਈ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਜੀਵਨ ਰੂਪੀ ਮਨੁੱਖੀ ਨੀਤੀਆਂ ਪ੍ਰਤੀ ਨਾਰੀ ਦੀ ਤਾਕਤ, ਤਹਿਜ਼ੀਬ ਰੂਪੀ ਯੂਨਿਟ ਅਤੇ ਗਤੀਸ਼ੀਲਤਾ ਨੂੰ ਸਿਰਜਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਨਾਵਲਕਾਰ ਇਸ ਨਾਵਲ ਵਿੱਚ ਹਿਲਦੇ ਦੰਦਾਂ ਰੂਪੀ ਪੀੜਾਜਨਕ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਮੈਟਾਫਰ ਸਿਰਜਕੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸੰਬੰਧਾਂ ਅਤੇ ਮੁੱਲਾਂ ਦੇ ਡਿੱਕ-ਡੋਲ੍ਹੇ ਖਾਂਦੇ ਰੂਪ ਨੂੰ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟਮਾਨ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਲੇਖਕ ਨੇ ਨਾਵਲ ਵਿੱਚ ਅਰਥਾਂ ਦੀ ਇਹੋ ਜਿਹੀ ਲੜੀ ਸਿਰਜੀ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਦੀ ਆਧੁਨਿਕ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਭਰਵਾਂ ਸੀਨ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਪੰਦਰਾਂ ਵੀਹ ਸਾਲਾਂ ਤੋਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਅਤੇ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੀਆਂ ਮਾਰੂ ਨੀਤੀਆਂ ਕਾਰਨ ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਸਮਾਜ ਜਿਸ ਕਿਸਮ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿੱਚੋਂ ਲੰਘ ਰਿਹਾ ਹੈ ਉਹ 'ਪੰਜਾਬੀ ਸੰਕਟ' ਦੇ ਸਮਾਨ ਹੈ। ਵਿਕਾਸ ਦੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਰਹਿਤ ਚਕਾਚੋਂਧ ਦੇ ਥੱਲੇ ਜਿਹੜੀ ਕਾਲੀ ਰੋਸ਼ਨੀ ਪੰਜਾਬ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਕਲਾਵੇ ਵਿੱਚ ਲੈ ਰਹੀ ਹੈ ਉਸ ਰਾਹੀਂ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਸੱਭਿਆਚਾਰ, ਆਦਰਸ਼ ਜੀਵਨ ਮੁੱਲ੍ਹ, ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਅਤੇ ਸਦ ਵਿਉਹਾਰ ਖਿੰਡਣ ਦੇ ਕਗਾਰ ਤੇ ਹੈ। ਇਸ ਅਖੌਤੀ ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਕਾਰਨ ਹੀ ਸ਼ਹਿਰੀ ਸੰਸਥਾ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਚੱਕਰ ਥੱਲੇ ਪੂੰਜੀਪਤੀ ਸਿਸਟਮ ਦੇ ਵਿਗਾੜ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਬਣਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ ਜਦ ਕਿ ਪੇਂਡੂ ਸੰਸਥਾ ਕਮਾਊ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਤੋਂ ਅੱਡ ਹੋ ਕੇ ਐਸ਼ਪ੍ਰਸਤੀ ਤੇ ਪਦਾਰਥਵਾਦ

ਦੀਆਂ ਅਲਾਮਤਾਂ ਵਿੱਚ ਫਸ ਗਈ ਹੈ। ਇਹੋ ਜਿਹੇ ਸੰਕਟਾਂ ਵਿੱਚ ਦਮਿਤ ਨਾਰੀ ਵਰਗ ਅਤੇ ਦਲਿਤਾਂ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਹੋਰ ਵੀ ਮਾੜੀ ਹੋ ਗਈ ਹੈ। ਇਹ ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਸਿਰਜਣ ਦਾ ਪਛਾਣ-ਚਿੰਨ੍ਹ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਰਚਨਾ ਦਾ ਕੇਂਦਰੀ ਆਧਾਰ ਸਮਾਜਿਕ ਤੌਰ ਤੇ ਮੁੱਖ ਧਾਰਾ ਤੋਂ ਕੰਡਿਆਂ ਵੱਲ ਧਕੇਲੀ ਹੋਈ ਜਮਾਤ ਰਹੀ ਹੈ। ਗਰਗ ਨੇ 'ਹਿਲਦੇ ਦੰਦ' ਨਾਵਲ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਦੀ ਦੁਜੈਲੀ ਦਸ਼ਾ ਦਾ ਪਰਦਾ ਫਾਸ਼ ਕਰਦਿਆਂ ਮਰਦਾਨਾ ਸਮਾਜ ਦੀ ਕਾਣੀ ਵੰਡ ਨੂੰ ਕਈ ਕੋਨਿਆਂ ਤੋਂ ਦਿਖਾਉਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਹੈ।

ਮੂਲ ਸ਼ਬਦ ਸੰਘਰਸ਼ਸ਼ੀਲ, ਸੱਭਿਆਚਾਰ, ਪੀੜਾਜਨਕ, ਪ੍ਰਤੀਬਿੰਬਤ

ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤਕ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਵਿਅੰਗ ਵਿਧਾ ਨੂੰ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਕੇ. ਐਲ. ਗਰਗ ਨੇ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੀ ਗੰਭੀਰਤਾ ਨਾਲ ਹਾਸ-ਰਸ ਨੂੰ ਜੋੜਨ ਵਾਲੇ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਕੰਮ ਕੀਤੇ ਹਨ। ਇਹ ਨਾਵਲ ਮਾਨਵੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਖੰਡਿਤ ਸਥਿਤੀ ਅਤੇ ਆਰਥਿਕ ਸਥਿਤੀ ਦੇ ਸੰਘਰਸ਼ਸ਼ੀਲ ਸਰੂਪ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਗਰਗ ਦਾ ਸੱਤਵਾਂ ਨਾਵਲ (2014)13 ਅਧਿਆਇ ਅਤੇ 112 ਪੇਜਾਂ ਅਤੇ ਫਲੈਸ਼ ਬੈਕ ਸ਼ੈਲੀ ਵਿੱਚ ਸਮਾਹਿਤ ਇੱਕ ਪ੍ਰਤੀਕਾਤਮਕ ਨਾਵਲ ਹੈ। ਕੇ.ਐਲ.ਗਰਗ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਹੀ ਬੇਲੋੜਾ ਖਲਾਰਾ ਨਹੀਂ ਪਾਉਂਦਾ ਬਲਕਿ ਨਾਵਲ ਦਾ ਆਕਾਰ ਛੋਟਾ ਰੱਖਦਾ ਹੋਇਆ ਜ਼ਰੂਰਤ ਅਨੁਸਾਰ ਲੋੜੀਂਦੇ ਪਾਤਰ ਚਿੱਤਰਦਾ ਹੈ। ਜਿਆਦਾਤਰ ਨਾਵਲ ਦਾ ਇੱਕੋ ਹੀ ਕੇਂਦਰੀ ਵਿਸ਼ਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਦੁਆਲੇ ਉਹ ਦੋ ਤਿੰਨ ਹੋਰ ਮਿੰਨੀ ਕਥਾਵਾਂ ਬੁਣਦਾ ਹੋਇਆ ਪਾਠਕ ਨੂੰ ਆਨੰਦਿਤ ਹੀ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ ਬਲਕਿ ਚੇਤਨ ਵੀ ਕਰਦਾ ਹੈ। 'ਹਿੱਲਦੇ ਦੰਦ' ਨਾਵਲ ਦੀ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਕਥਾ ਸਮਾਜਿਕ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਦੁਖਾਂਤ ਹੈ ਜੋ ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਖੰਡਿਤ ਸਥਿਤੀ ਅਤੇ ਨਿੱਘਰਦੀ ਆਰਥਿਕ ਸਥਿਤੀ ਦੇ ਸਰੂਪ ਨਾਲ ਇੱਕ-ਮਿੱਕ ਹੈ। ਇਹ ਨਾਵਲ ਸਮਕਾਲੀ ਜੀਵਨ ਦਾ ਜੀਵੰਤ ਯਥਾਰਥ ਹੈ ਜੋ ਸੌੜੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਕਾਰਨ ਔਰਤ ਨੂੰ ਮਾਨਵੀ ਅਧਿਕਾਰ ਨਾ ਦਿੱਤੇ ਜਾਣ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਔਰਤ ਉਨ੍ਹਾਂ ਹੱਕਾਂ ਦੀ ਮੰਗ ਕਰਦੀ ਹੋਈ ਸੰਘਰਸਰਤ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਉਸ ਨਾਲ ਹੋਏ ਵਿਤਕਰੇ, ਹੱਕਾਂ ਦੇ ਹਨਨ ਅਤੇ ਸੰਘਰਸ਼ਸ਼ੀਲ ਚਿਹਰੇ ਨੂੰ ਪ੍ਰਤੀਬਿੰਬਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਹ ਮੂਲ ਕਥਾ ਅਨੇਕਾਂ ਛੋਟੇ-ਛੋਟੇ ਗੰਭੀਰ ਕਥਾ-ਪ੍ਰਸੰਗਾਂ ਅਧੀਨ ਸਮਕਾਲੀ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਦੀ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਕੁਲਵਿੰਦਰ ਉਰਫ ਕੱਲੋ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਕੱਲੋ ਦਾ ਚਾਚਾ, ਚਾਚੀ, ਦੇਬੋ, ਗੁਰਿੰਦਰ ਸਿੰਘ, ਗੁੱਡੂ ਅਤੇ ਇੱਕ ਸਿੱਧਰਾ ਪਾਤਰ ਜੈਬਾ ਆਦਿ ਪਾਤਰ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਯਥਾਰਥ ਦੇ ਅਰਥਾਂ ਦੀ ਪੁਸ਼ਟੀ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਕੱਲੋ ਇੱਕ ਪ੍ਰਾ-ਅਧਿਆਪਕ ਹੋਣ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਮੰਨੀ-ਪ੍ਰਮੰਨੀ ਕਬੱਡੀ ਦੀ ਖਿਡਾਰਣ ਵੀ ਹੈ। ਮਾਂ-ਬਾਪ ਆਪਣੀ ਸੋਚ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਅਨੁਸਾਰ ਬੱਚੇ ਨੂੰ ਜੋ ਕੁੱਝ ਬਣਾਉਣਾ ਚਾਉਣ ਬਣਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਕੱਲੋ ਦੇ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਇਹ ਸਭ ਕੁੱਝ ਉਸਦੇ ਫ਼ੌਜੀ ਬਾਪ ਦੇ ਉਤਸਾਹ,ਪਿਆਰ ਅਤੇ ਬੁਲੰਦ ਹੌਸਲੇ ਨਾਲ ਸੰਭਵ ਹੋ ਸਕਿਆ ਹੈ। ਖੁੱਲ੍ਹੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਅਤੇ ਪੜ੍ਹੀ- ਲਿਖੀ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਕੱਲੋ ਇੰਟਰਨੈਟ ਰਾਹੀਂ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰੀ ਗੱਭਰੂ ਪ੍ਰੋ: ਗੁਰਿੰਦਰ ਨਾਲ ਦੋਸਤੀ ਅਤੇ ਅੰਤਰਜਾਤੀ ਵਿਆਹ ਕਰਵਾਉਣ ਵਿੱਚ ਕਾਮਯਾਬ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਪਰ ਕੱਲੋ ਅਤੇ ਗੁਰਿੰਦਰ ਦੀ ਸੋਚ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਅੰਦਰ ਜ਼ਮੀਨ ਆਸਮਾਨ ਦਾ ਅੰਤਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਜਿੱਥੇ ਪ੍ਰੋ: ਗੁਰਿੰਦਰ ਭਾਪਾ ਬਿਰਾਦਰੀ ਨਾਲ ਸਬੰਧਿਤ ਹੈ ਉੱਥੇ ਕੱਲੋ ਜਿਮੀਂਦਾਰ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਧੀ ਹੈ ਅਤੇ ਜਿੱਥੇ ਕੱਲੋ ਪੇਂਡੂ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਪਲੀ ਵੱਡੀ ਹੋਈ ਹੈ ਉੱਥੇ ਗੁਰਿੰਦਰ ਸ਼ਹਿਰੀ ਰਹਿਤਲ-ਬਹਿਤਲ ਵਿੱਚ ਵੱਡਾ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੋਵਾਂ ਵਿਚਾਲੇ ਆਪਸੀ ਵਿਚਾਰਕ ਮਤਭੇਦ ਕਾਰਨ ਨਹੀਂ ਨਿਭਦੀ ਤਾਂ ਕੱਲੋ ਆਪਣੀ ਬਦਲੀ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ ਤੋਂ ਲੁਧਿਆਣੇ ਕਰਵਾ ਲੈਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੀ ਮਾਂ ਕੋਲ ਰਹਿਣ ਲੱਗਦੀ ਹੈ। ਦ੍ਰਿੜ੍ਹ ਇੱਛਾ ਅਤੇ ਅਗਾਂਹਵਧੂ ਸੋਚ ਸਦਕਾ ਕੱਲੋ ਪ੍ਰੋ: ਗੁਰਿੰਦਰ ਦਾ ਘਰ ਛੱਡਣ ਨੂੰ ਤਿਆਰ ਤਾਂ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਪਰ ਆਪਣੇ ਹੱਕਾਂ ਦਾ ਘਾਣ ਨਹੀਂ ਹੋਣ ਦਿੰਦੀ।

ਵਿਚਾਰਕ ਮਤਭੇਦ, ਘਰੇਲੂ ਝਗੜੇ-ਝੇੜੇ ਅਤੇ ਆਰਥਿਕ ਤੰਗੀ ਕਾਰਨ ਅੱਜ ਦੇ ਸਮੇਂ ਰਿਸ਼ਤੇ ਹਿੱਲਦੇ ਦੰਦਾਂ ਵਾਂਗ ਹੀ ਪੀੜਾਜਨਕ ਅਤੇ ਦੁਖਦਾਈ ਬਣ ਚੁੱਕੇ ਹਨ। ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਖਰਾਬ ਹੋ ਚੁੱਕੇ ਦੰਦਾਂ ਨੂੰ ਕੱਢਣ ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਪੀੜ ਤੋਂ ਚੈਨ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦਾ ਠੀਕ ਉਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੀ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚੋਂ ਪੀੜਾਜਨਕ ਅਤੇ ਮਤਭੇਦ ਹੋਏ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨੂੰ ਖਾਰਿਜ ਕੀਤੇ ਬਿਨਾਂ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਸੌਖਾ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ। ਕੱਲੋਂ ਦੀ ਬੇਬੇ ਉਸਦੇ ਚਿਹਰੇ ਵੱਲ ਗ਼ੌਰ ਨਾਲ ਤੱਕਦੀ ਹੋਈ ਹੈਰਾਨ ਹੋ ਕੇ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ,"ਤੇ ਤੇਰੇ ਅਹਿ ਮੂਹਰਲੇ ਦੋ ਦੰਦ? ਬੇਬੇ ਇਹ ਕਦ ਦੇ ਤਾਂ ਹਿੱਲਦੇ ਸੀ। ਮੈਚ ਵੇਲੇ ਜੜ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਹੀ ਹਿੱਲ ਗਏ ਸੀ। ਕਈ ਰਿਸ਼ਤੇ ਵੀ ਹਿਲਦੇ ਦੰਦਾਂ ਜਿਹੇ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਨੇ। ਉਹਨਾ ਨੂੰ ਕੱਢ ਦੇਣ ਤੋਂ ਬਗੈਰ ਕੋਈ ਚਾਰਾ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦਾ। ਕੱਢ ਈ ਦੇਣੇ ਚਾਹੀਦੇ ਨੇ ਇਹੋ ਜਿਹੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਜਿੰਦਗੀ 'ਚੋਂ। ਮੈਂ ਤਾਂ ਐਵੇਂ ਸਾਲ ਭਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਹਿੱਲਦੇ ਦੰਦਾਂ ਦਾ ਦੁੱਖ ਭੋਗਿਆ। ਪਹਿਲਾਂ ਈ ਕੱਢ ਦਿੰਦੀ ਤਾਂ ਸੌਖੀ ਰਹਿੰਦੀ।"1 ਕੱਲੋ ਨੇ ਮੁਸੀਬਤਾਂ ਵਿੱਚ ਨਾ ਘਬਰਾਉਣ ਵਰਗੇ ਅਤੇ ਸਦਾ ਬਹਾਦਰੀ ਨਾਲ ਅੱਗੇ ਵੱਧਣ ਵਾਲੇ ਮਾਨਵੀ ਗੁਣਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਸ਼ਖਸੀਅਤ ਦਾ ਹਿੱਸਾ ਬਣਾਇਆ। ਉਸ ਕੋਲ ਸੰਘਰਸ਼,ਸਿੱਖਿਆ,ਲਗਣ,ਮਿਹਨਤ ਅਤੇ ਸਮਝਦਾਰੀ ਨਾਲ ਕੀਤੀਆਂ ਪ੍ਰਾਪਤੀਆਂ ਦਾ ਅਨੁਭਵ ਸੀ। ਨਾਵਲੀ ਬਿਰਤਾਂਤ ਦੀ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਪੇਕੇ ਪਿੰਡ ਆਈ ਕੱਲੋ ਤੋਂ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਬਾਰੇ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਸੌਹਰੇ ਪਰਿਵਾਰ ਬਾਰੇ ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਵੀ ਗੱਲ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ। ਪਰ ਜਿਉਂ ਹੀ ਉਹ ਬੱਸ ਚੋਂ ਉਤਰਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕਿਧਰੋਂ ਜੈਬਾ ਸਿੱਧਰਾ ਆ ਕੇ ਉਸਦੇ ਸੂਟਕੇਸ਼ ਨੂੰ ਸਿਰ ਤੇ ਧਰਦਾ ਹੋਇਆ ਰਾਹ ਵਿੱਚ ਜਾਦਿਆਂ ਕੱਲੋ ਨਾਲ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦਾ ਭ੍ਰਿਸ਼ਟ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੀ ਤਸਵੀਰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ,"ਬੀਬੀ ਪਿੰਡ ਦੇ ਲਾਲ ਝੰਡੇ ਆਲੇ ਕਹਿੰਦੇ ਤੀ ਬਈ ਸਰਪੰਚ ਵਧੀਆ ਇੱਟਾਂ ਖਾ ਗਿਆ। ਬੀਹੀ 'ਚ ਕੱਚੀਆਂ ਪਿੱਲੀਆਂ ਲਾਤੀਆਂ। ਸਾਥੋਂ ਤਾਂ ਰੋਟੀ ਮਸਾਂ ਖਾਧੀ ਜਾਂਦੀ ਐ,ਸਰਪੰਚ ਇੱਟਾਂ ਖਾ ਗਿਆ। ਬੀਬੀ, ਖਾ ਲੈਂਦੇ ਆ ਇੱਟਾਂ ਅੱਜ ਕੱਲ੍ਹ ਲੋਕ ? ਇਹ ਤਾਂ ਫੇਰ ਕਮਾਲ ਈ ਹੋਗੀ।"2 ਜੈਬੇ ਦੀਆਂ ਸਿੱਧਰੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਮਨੁੱਖ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਦੀ ਬੇਤਰਤੀਬ ਸ਼ਖਸ਼ੀਅਤ ਹੈ ਜੋ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਤੋਂ ਵਾਂਝਾ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਆਪਣੀ ਵਿਆਹ ਕਰਵਾਉਣ ਦੀ ਇੱਛਾ ਕੱਲੋ ਕੋਲ ਜ਼ਾਹਿਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਕੱਲੋ ਉਸ ਤੋਂ ਵਿਆਹ ਕੇ ਲਿਆਂਦੀ ਮੁਟਿਆਰ ਦੀ ਦੇਖ-ਭਾਲ ਬਾਰੇ ਪੁੱਛਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਨਿਮਨ ਵਰਗ ਦੇ ਕਸ਼ਟਾਂ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ, "ਥੋਡੇ ਘਰੋਂ ਮੰਗ ਲਿਆ ਕਰੂੰ। ਆਪਣੇ ਲਈ ਵੀ ਤਾਂ ਮੰਗਦਾ ਈ ਆਂ, ਓਹਦੇ ਲਈ ਵੀ ਮੰਗ ਲਿਆ ਕਰੂੰ ਤਾਈ ਤੋਂ। ਨਾਲੇ ਹੁਣ ਤਾਂ ਤੂੰ ਬੀਬੋ ਵੀ ਆਗੀ ਐ। ਤੇਰੇ ਨਾਲੇ ਲੀੜੇ ਪਾ ਲਿਆ ਕਰੂ।"3 ਇਸ ਕਥਾ ਦਾ ਅਗਲਾ ਪ੍ਰਸੰਗ ਕੱਲੋ ਦੇ ਚਾਚੇ ਮੱਖਣ ਸਿੰਘ, ਚਾਚੀ ਅਤੇ ਮੁੰਡੇ ਗੁੱਡੂ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਹੈ। ਇਸ ਕਥਾ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿੱਚ ਆਤਮਹੱਤਿਆ ਅਤੇ ਕਿਸਾਨੀ ਸੰਕਟ ਵਰਗੀਆਂ ਗੰਭੀਰ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਗੁੱਡੂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਵਿਸਾਰਕੇ ਨਸ਼ੇ ਦਾ ਆਦਿ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇੱਕ ਦਿਨ ਕੱਲੋਂ ਗੁੱਡੂ ਦੀ ਮਾਂ ਨੂੰ ਗੁੱਡੂ ਦੇ ਨਸ਼ੇੜੀ ਹੋਣ ਬਾਰੇ ਪੁੱਛਦੀ ਹੈ,"ਇਹਨੂੰ ਕੀ ਹੋ ਗਿਆ ਚਾਚੀ?ਇਹ ਤਾਂ ਚੰਗਾ ਭਲਾ ਮੁੰਡਾ ਹੁੰਦਾ ਸੀ। ਇਹ ਤਾਂ ਹੁਣ ਜਮ੍ਹਾਂ ਈ ਉੱਖੜਿਆ ਪਿਆ। ਇਹਨਾਂ ਢੀਠ ਇਹ ਕਿਵੇਂ ਹੋ ਗਿਆ?"4 ਪੰਜਾਬੀ ਨੌਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੇ ਭਵਿੱਖ, ਲੁੱਟਾਂ-ਖੋਹਾਂ ਅਤੇ ਆਤਮਹੱਤਿਆ ਕਰਨੀ ਆਦਿ ਅਜਿਹੇ ਵਰਤਾਰੇ ਦੀਆਂ ਕਨਸੋਆਂ ਹਨ ਜੋ ਘਰ ਪਰਿਵਾਰ ਅਤੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨੂੰ ਉਜਾੜ ਦੇ ਰਾਹ ਪਾਉਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਕੱਲੋ ਮਾਨਵੀ ਧਿਰ ਬਣਕੇ ਇਸ ਦੁੱਖ ਦੀ ਘੜੀ ਵਿੱਚ ਗੁੱਡੂ ਦੀ ਮਾਂ ਨੂੰ ਹੌਸਲਾ ਦਿੰਦੀ ਹੋਈ ਉਸਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਕਥਾ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿੱਚ ਨਸ਼ਾ, ਆਤਮਹੱਤਿਆ, ਕਮਜ਼ੋਰ ਕਿਸਾਨੀ ਵਰਗ ਦੇ ਭਿਆਨਕ ਸੰਜੋਗ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਦਿਆਂ ਚਲਾਕੀਆਂ, ਮਜਬੂਰੀਆਂ ਅਤੇ ਔਰਤ ਦੇ ਸ਼ੋਸ਼ਣਕਾਰੀ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਸਿਰਜਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਦੇਬੋ ਦੇ ਘਰ ਦੇ ਉਸ ਨੂੰ ਕੈਨੇਡਾ ਦੇ ਦੁਹਾਜੂ ਅਤੇ ਬੁੱਢੇ ਆਦਮੀ ਨਾਲ ਵਿਆਹ ਕੇ ਆਪਣੀ ਧੀ ਦਾ ਅੱਗਾ ਸਵਾਰਣ ਦਾ ਸੁਪਨਾ ਪਾਲਦੇ ਹਨ। ਪਰ ਦੇਬੋ ਆਪਣੀ ਸਿਆਣਪ ਅਤੇ

ਹੌਂਸਲੇ ਨਾਲ ਆਪਣਾ ਜਤ-ਸਤ ਕਾਇਮ ਰੱਖਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸ ਬੁੱਢੇ ਪਤੀ ਨੂੰ ਉਸਦੀ ਔਕਾਤ ਯਾਦ ਦਵਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਕੱਲੋਂ ਜਦੋਂ ਦੇਬੋ ਨੂੰ ਉਸਦੀ ਡੀਲ ਬਾਰੇ ਪੁੱਛਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਦੇਬੋ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ, "ਮੈਂ ਆਪਣੀ ਡੀਲ'ਤੇ ਕਾਇਮ ਆਂ। ਕਾਗਜ਼ ਆ ਜਾਣ ਤਾਂ ਮੈਂ ਉੱਥੇ ਜਾ ਕੇ ਉਹਨੂੰ ਛੱਡ ਦੇਣਾ ਤੇ ਆਪਣੇ ਬੰਦੇ ਨੂੰ ਬੁਲਾ ਲੈਣਾਂ। ਸੈਟਲ ਹੋ ਕੇ ਛੋਟੀਆਂ ਨੂੰ ਤੇ ਬਾਪੂ ਬੇਬੇ ਨੂੰ ਵੀ ਸੱਦ ਲੈਣਾ।"5 ਨਾਵਲੀ ਬਿਰਤਾਂਤ ਨੂੰ ਵਿਸਤਾਰ ਦਿੰਦੇ ਹੋਏ ਅਗਲੇ ਕਥਾ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿੱਚ ਜਦੋਂ ਕੁਲਵਿੰਦਰ ਪ੍ਰੋ: ਬਣਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੀ ਮਨ ਮਰਜੀ ਨਾਲ ਪ੍ਰੋ: ਗੁਰਵਿੰਦਰ ਨਾਲ ਪ੍ਰੇਮ ਵਿਆਹ ਕਰਵਾਉਂਦੀ ਹੈ ਪਰ ਗੁਰਿੰਦਰ ਉਪਰੋਂ ਹੋਰ ਤੇ ਅੰਦਰੋਂ ਹੋਰ ਨਿਕਲਦਾ ਹੈ। ਮਾਨਸਿਕ ਅਤੇ ਸ਼ਰੀਰਕ ਪੱਖੋਂ ਗੁਰਿੰਦਰ ਅਤੇ ਕੱਲੋ ਵਿਚਾਲੇ ਵਿਤਕਰਾ ਹੈ। ਕੱਲੋ ਨੂੰ ਉਸ ਦਾ ਪਤੀ ਹਰ ਵੇਲੇ ਤਾਅਨੇ ਮਾਰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਨਾਲ ਉਸਦੀ ਕਮਜ਼ੋਰ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਦਾ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ। ਇੱਕ ਦਿਨ ਗੁਰਿੰਦਰ ਕੱਲੋਂ ਨੂੰ ਭੈੜੇ ਬੋਲ ਬੋਲਦਾ ਹੈ, "ਇਕ ਦਿਨ ਕਹਿੰਦਾ ਲੋਕੀ ਕੂੜੇਦਾਨ ਦਾ ਕੂੜਾ ਇਕੱਠਾ ਕਰ ਕਰ ਸ਼ਹਿਰਾਂ ਵਿਚ ਭੇਜੀ ਜਾਂਦੇ ਸੂ। ਸੜੇਹਾਣ ਫੈਲਦੀ ਪਈ ਸੂ।"6 ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਸਰੀਰਕ ਸੰਬੰਧ ਬਣਾਉਣ ਵਿੱਚ ਅਸਫਲ ਹੋਇਆ ਗੁਰਿੰਦਰ ਆਪਣੀ ਪਤਨੀ ਦੇ ਵਜੂਦ ਨੂੰ ਨੀਵਾਂ ਦਿਖਾਉਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਕੱਲੋ ਆਪਣੀ ਸੂਝ-ਬੂਝ ਅਤੇ ਸਿਆਣਪ ਨਾਲ ਆਪਣੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਨੂੰ ਸੁਧਾਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ ਪਰ ਕੱਲੋ ਦੀ ਸੱਸ ਉਸ ਨਾਲ ਮਾੜਾ ਵਿਉਹਾਰ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਕੱਲੋ ਆਪਣਾ ਫੈਸਲਾ ਖੁਦ ਲੈਂਦੀ ਹੋਈ ਗੁਰਿੰਦਰ ਨਾਲੋਂ ਨਾਤਾ ਤੋੜਕੇ ਜਦੋਂ ਆਪਣੇ ਪੇਕੇ ਪਿੰਡ ਆਉਂਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸਦੀ ਮਾਂ ਉਸਨੂੰ ਉਦਾਸ ਦੇਖਕੇ ਸਾਰੀ ਗੱਲ ਪੁੱਛਦੀ ਹੋਈ ਬਹੁਤ ਸਮਝਾਉਂਦੀ ਹੈ ਪਰ ਕੱਲੋ ਆਪਣੇ ਫੈਸਲੇ ਤੇ ਅਡਿੱਗ ਆਪਣੀ ਮਾਂ ਨੂੰ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ, "ਤੁਹਾਡੇ ਵੇਲੇ ਬੇਬੇ ਔਰਤ ਕਮਜੋਰ ਸੀ। ਹੁਣ ਔਰਤ ਤਕੜੀ ਹੋਈ ਐ, ਅੱਗੇ ਨਾਲੋਂ ਆਜ਼ਾਦ ਹੋਈ ਐ। ਕੁਮਾਉਣ ਲੱਗਪੀ ਆ। ਆਪਣੇ ਪੈਰਾਂ ਤੇ ਸਾਬਤ ਸਬੂਤੀ ਖੜ੍ਹੋਣ ਲੱਗ ਪਈ ਐ। ਮਰਦ ਦੀ ਅਧੀਨਗੀ 'ਚੋਂ ਨਿਕਲ ਰਹੀ ਆ। ਵੇਲੇ ਨਾਲ ਫ਼ਰਕ ਤਾਂ ਪੈਣਾ ਈ ਸੀ। ਹਰ ਵੇਲਾ ਨਵੇਂ ਹਾਲਾਤ ਤੇ ਜਿਊਣ ਦੀਆਂ ਨਵੀਆਂ ਸ਼ਰਤਾਂ ਲੈ ਕੇ ਆਉਂਦਾ। ਬੰਦਿਆਂ ਨੂੰ ਵੀ ਹਵਾ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ ਚੱਲਣਾ ਪੈਂਦਾ।"7 ਕੇ. ਐਲ. ਗਰਗ ਦਾ ਇਹ ਨਾਵਲ ਸ੍ਰੇਸ਼ਠ ਬ੍ਰਿਤਾਂਤਕਾਰੀ ਆਦਰਸ਼ ਹੈ ਜੋ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਤੈਹਾਂ ਨੂੰ ਕਲਪਿਤ ਬਿੰਬਾਂ ਰਾਹੀਂ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਦੀ ਕਲਾ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਨਾਵਲ ਦੀ ਯਥਾਰਥਵਾਦੀ ਅਤੇ ਰੁਮਾਂਸਕਾਰੀ ਸਿਰਜਣਾ ਨਾਵਲ ਪੜ੍ਹਨ ਦੇ ਆਨੰਦ ਅਤੇ ਰਸ ਨੂੰ ਬਰਕਰਾਰ ਰੱਖਦੀ ਹੈ। ਕਈ ਥਾਵਾਂ ਤੇ ਇਹ ਨਾਵਲ ਔਰਤ ਦੀ ਸਮੱਝ ਦਾ ਮੂਲ ਉਚਾਰਣ ਸੁਣਨ ਤੋਂ ਖੁੰਝਦਾ ਵੀ ਹੈ ਪਰ ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਇੱਕ ਲੜੀ ਵਿੱਚ ਚੱਲਦਾ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਪਾਤਰਾਂ ਦੀਆਂ ਮਨੋ ਦਸ਼ਾਵਾਂ ਦੀ ਅੱਡਰਤਾ ਵਸੋਂ ਬਾਹਰ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ!ਇਨ੍ਹਾਂ ਹੁੰਦੇ ਹੋਏ ਵੀ ਗਰਗ ਦੀ ਇਹ ਰਚਨਾ ਕਾਬਿਲੇ ਤਾਰੀਫ ਹੈ। ਉਸਦੇ ਬਿਰਤਾਂਤ ਵਿੱਚ ਨਾਟਕੀਅਤਾ ਹੈ, ਅੰਤਾਂ ਦੀ ਰਵਾਨੀ ਹੈ ਜੋ ਉਸਦੇ ਨਾਵਲੀ ਬਿਰਤਾਂਤ ਨੂੰ ਰੇਖਾਂਕਿਤ ਨਿਭਾਅ ਦੁਆਰਾ ਸਹਿਜ ਅਤੇ ਸਰਲਤਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਦੀ ਹੈ।

ਨਿਸ਼ਕਰਸ਼

ਸੋ ਅੰਤ ਵਿੱਚ ਅਸੀਂ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ 'ਹਿੱਲਦੇ ਦੰਦ' ਨਾਵਲ ਵਿੱਚ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਦੀ ਬਦਲੀ ਹੋਈ ਸਥਿਤੀ ਅਨੁਸਾਰ ਮਨੁੱਖੀ ਮਾਨਸਿਕ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਭਰਪੂਰ ਚਿੱਤਰ ਪੇਸ਼ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਨਾਵਲਕਾਰ ਪੁਰਾਣੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੀ ਨਾਰੀ ਦਾ ਰੂਪ ਸਿਰਜ ਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਘਰੇਲੂ ਕੰਮਾਂ ਅਤੇ ਚੁੱਲ੍ਹੇ- ਚੌਂਕੇ ਤੱਕ ਸੀਮਿਤ ਨਹੀਂ ਰੱਖਦਾ ਸਗੋਂ ਸਮੇਂ ਦੇ ਪਰਿਵਰਤਨ ਨਾਲ ਨਾਰੀ ਦੀ ਦਸ਼ਾ ਵਿੱਚ ਸੁਧਾਰ ਦੀ ਮੰਗ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਕੁਲਵਿੰਦਰ ਉਰਫ ਕੱਲੋ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਬੇਕਾਰ ਵਜ਼ਨ ਅਤੇ ਅਮਾਨਵੀ ਦਸ਼ਾ ਨੂੰ ਛੱਡ, ਖਾਲਸ ਮਨੁੱਖੀ ਸ਼ੈਲੀ ਨੂੰ ਪਹਿਲ ਦੇ ਅਧਾਰ ਤੇ ਅਪਨਾਉਦੀ ਹੈ। ਉਸ ਦਾ ਇਹ ਕਾਰਜ ਸੱਚਾਈ ਅਤੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਅਮਾਨਵੀ ਰੂਪ ਤੋਂ ਪਰੇ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ

ਸਮਝਣ ਦੀ ਇੱਕ ਨਵੀਂ ਸੋਚ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਤਿਆਰ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਅਮਾਨਵੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਟੁੱਟ-ਭੱਜ ਦੇ ਮੱਧ ਦੁਆਰਾ ਆਪਣੇ ਮਾਨਵੀ ਰੂਪ ਦੀ ਤਲਾਸ਼ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਇੱਕ ਐਸੀ ਗਲਪੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਹੈ ਜਿਸ ਨਾਲ ਵੀਰਾਣ (ਬੰਜਰ) ਹੋਈ ਬਨਾਵਟ ਵਿੱਚ ਜਨਮੀ ਮਨੁੱਖੀ ਟੁੱਟ-ਭੱਜ ਨੂੰ ਸਮੂਹਿਕ ਤੌਰ ਤੇ ਪਾਰ ਜਾਣ ਦਾ ਬਿਰਤਾਂਤ ਸਿਰਜਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਇਹ ਨਾਵਲ ਨਾਰੀ ਦੇ ਵਜੂਦ ਅਤੇ ਉਸ ਦੀ ਗਲਪੀ ਚੇਤਨਾ ਦੀ ਗਤੀਸ਼ੀਲਤਾ ਦਾ ਗਲਪੀ ਆਚਾਰਣ ਸਿਰਜਿਤ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਔਰਤ ਲਈ ਯਤਨਸ਼ੀਲ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ

1 ਕੇ. ਐਲ. ਗਰਗ, 'ਹਿੱਲਦੇ ਦੰਦ', ਚੇਤਨਾ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਲੁਧਿਆਣਾ, 2014, ਪੰਨਾ 111,112

ਓਹੀ, ਪੰਨਾ 9

2 ਓਹੀ, ਪੰਨਾ 13

3 ਓਹੀ, ਪੰਨਾ 34

4 ਓਹੀ, ਪੰਨਾ 104,105

5 ਓਹੀ, ਪੰਨਾ 101

6 ਓਹੀ, ਪੰਨਾ 109,110

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 193-196
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय आंदोलन में गोरखपुर जनपद की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Rinki gupta, Assistant teacher (History),
Government girls higher secondary school ,Ballia

प्रस्तावना

प्राचीन सदानीरा आधुनिक नारायणी और सरयू की अन्तर्वेदी तक विस्तृत क्षेत्र गोरखपुर जनपद का निर्माण करता था। भारतीय इतिहास में सर्वविदित है कि सूर्य वंश एवं चन्द्र वंश की अपनी प्रतिष्ठा रही है। मुख्यतः इन्हीं वंशजों के प्रसार, प्रत्यावर्तन संघर्ष और समन्वय का इतिहास भारतवर्ष इतिहास रहा है। गोरखपुर क्षेत्र का संबंध प्राचीन काल से ही अयोध्या से रही है। रामायण, महाभारत इस संदर्भ के साक्ष्य रहे हैं कि गोरखपुर जनपद सभी प्रकार से समृद्ध और सम्पन्न था बुद्धकाल में इस क्षेत्र में गणराज्य पद्धति शासित थी विदेशी आक्रमणकारियों के काल में भी यह स्वतंत्र क्षेत्र रहा। ज्ञात है कि सर्वप्रथम अकबर के शासन काल में जनपदवासियों में स्वतंत्रता की आग सुलगती रही और अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्षके लिये अवसर ढूँढे जाते रहे। स्वतंत्रता संघर्ष के विवरण अधिकांशतः विदेशी के आधारों पर ही आधारित है। दुःखद स्थिति रही थी कि हिन्दी में प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष पर कोई अधिकृत पुस्तक उपलब्ध नहीं है वीर सावरकर की फ्रीडम स्ट्रगल 1857 को हिन्दी अनुवाद अवश्य उपलब्ध रहा है किन्तु जनपदीय एवं प्रदेशीय योगदानों के विवरण में संबंधित कोई भी पुस्तक हिन्दी में उपलब्ध नहीं है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए एक संक्षिप्त सर्वेक्षण यहाँ रेखांकित है जिससे यह ज्ञात होता है कि इस जनपद का भी योगदान स्वतंत्रता के प्रारम्भिक चरण से रहा है।

Key Point - गोरखपुर का गौरवशाली इतिहास,क्रांतिकारी,1857 की क्रांति,1942 का राष्ट्रीय आंदोलन

शोध का उद्देश्य

1- गोरखपुर के गौरवशाली इतिहास पर प्रकाश डालना

2- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में इस क्षेत्र से जुड़े क्रांतिकारियों के अमूल्य योगदानों का अध्ययन करना

3-1857 की क्रांति में इस क्षेत्र के वीर नायकों के योगदानों को उजागर करना

गोरखपुर क्षेत्र की राष्ट्रीय आंदोलन में भूमिका

भारत के स्वतंत्रता में गोरखपुर की भूमिका स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज है। प्राचीन गोरखपुर में बस्ती ,देवरिया,आजमगढ़ और नेपाल तराई के कुछ हिस्सों के जिले सम्मिलित थे।1857 की क्रांति से लेकर 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन तक देश की आजादी में स्थानीय वीरों ने कुर्बानी दी है। जहां 1857 की क्रांति से जुड़े तरकुलहा देवी मंदिर में शहीद बंधू सिंह की वीरता के किस्सों से गूंजते हैं, वही चौरीचोरा शहीद स्थल ने स्वतंत्रता संग्राम की दिशा ही बदल दी ।यदि प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष की बात की जाए तो नरहरपुर स्टेट के राजा हरिप्रसाद मल्ल ने सिर कटाना पसंद किया लेकिन अंग्रेजों की दासता को स्वीकार नहीं किया। उनका ध्वस्त किला देशभक्ति का इतिहास बन गया। ऐसे असंख्य वीर सपूतों के महान त्याग और बलिदान पर राष्ट्रीय इतिहासकारों ने खामोशी की चादर ओढ़ ली लेकिन क्षेत्रीय लेखकों ने अपनी कृतियों में इन्हें अमरता प्रदान किया है।

प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष के केंद्र बिंदु राजा हरिप्रसाद मल्ल ने देवरिया के पैना के बाबू कुंवर सिंह के विद्रोह को सही ठहराते हुए गोरी हुकूमत के खिलाफ शंखनाद किया। इसी क्रम में गोरखपुर के हिंदी बाजार में स्थित घंटाघर भी स्वतंत्रता आंदोलन की वीर बलिदानियो के शहादत की गौरव गाथा को अपने भीतर समेटे हुए हैं। वर्तमान में स्थित घंटाघर में 1857 में एक विशाल पाकड़ का पेड़ हुआ करता था, जिस पर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अली हसन के साथ दर्जनों स्वतंत्रता सेनानियों को फांसी दी गई थी। यही वह स्थल है जहां कालांतर में महान स्वतंत्रता सेनानी पंडित राम प्रसाद बिस्मिल की शव यात्रा रुकी थी ,यही उनकी माताजी ने एक प्रेरणापरक भाषण दिया था।1930 में उक्त ऐतिहासिक स्थल घंटाघर का निर्माण रायगंज के सेठ राम खेलावन और सेठ ठाकुर प्रसाद द्वारा किया गया था। उन्होंने अपने पिता सेठ जीगान साहू की याद में इसी स्थान पर मीनार की तरह ऊंची इमारत का निर्माण कराया, जो देश के शहीदों को समर्पित थी ।इमारत पर घंटे वाली घड़ी लगाई गई जिसके कारण चिगान टावर घंटाघर के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

गोरखपुर जिसने गुलामी और अंग्रेजों का दमन देखा है, आजादी की कीमत उससे ज्यादा और कौन जान सकता है। आजादी के संघर्ष का गवाह गोरखपुर को जब आजादी मिली तो अनेक ऐतिहासिक गौरवशाली अतीत को स्वयं में समेट लिया, जिसने इसे इतिहास के पटल पर स्वर्णिम अक्षरों में अंकित कर दिया। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी गौरवशाली इतिहास को उद्घाटित किया गया है।

गोरखपुर क्षेत्र के कुछ प्रमुख क्रांतिकारियों का विवरण

बाबू बंधु सिंह

गोरखपुर के पहले महान स्वतंत्रता सेनानी थे।उन्होंने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ गुरिल्ला युद्ध लड़ा था।एक मुखबिर की सूचना पर अंग्रेज़ों ने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया और 12 अगस्त, 1857 को अलीनगर चौक पर फांसी दे दी। कहा जाता है कि अंग्रेज़ों ने उन्हें सात बार फांसी पर लटकाने की कोशिश की, लेकिन हर बार फंदा टूट जाता था।अंत में, बंधु सिंह ने अपनी कुलदेवी तरकुलहा माई की याद में प्रार्थना की और उन्हें फांसी दी गई।बंधु सिंह की याद में देवीपुर के पास तरकुलहा माई का मंदिर है।

अवधराज त्रिपाठी

गोरखपुर के अवधराज त्रिपाठी ने स्वतंत्रता संग्राम में अहम भूमिका निभाई थी।वे बांसगांव क्षेत्र के अतरौली गांव के रहने वाले थे।जार्ज इस्लामिया स्कूल में पढ़ते समय उनका परिचय क्रांतिकारी बद्री नारायण मिश्र से हुआ था।बद्री नारायण मिश्र उस समय गोरखपुर में हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के संगठनकर्ता थे।

डोहरिया कलां के युवा

डोहरिया कलां के युवाओं ने 24 अप्रैल, 1942 को कोकोरी ट्रेन लूट ली थी।

सचींद्रनाथ सान्याल:

उनका ज़्यादातर जीवन जेल में ही बीता। 7 फ़रवरी, 1942 को गोरखपुर के दाउदपुर में उनका निधन हो गया।

निष्कर्ष

अतः इस प्रकार स्पष्ट है कि गोरखपुर जनपद का इतिहास गौरवशाली रहा है देशहित में सीने में आग और धड़कता दिल यहाँ के लोगों की पहचान रही है। 1857 विद्रोह के पहले बागी मंगल पाण्डेय भी इसी क्षेत्र से संदर्भित थे। बस्ती, आजमगढ़, मऊ,महराजगंज, देवरिया, संतकबीरनगर भी अविभाजित प्राचीन काल से ऐतिहासिक और धार्मिक अहमियत वाले जनपद गोरखपुर के ही हिस्से हुआ करते थे। गोरखपुर में 1857 के गदर ने ही तैयार की थी चौरी-चौरा की पृष्ठभूमि। चौरी-चौरा शताब्दी महोत्सव द्वारा इन्हीं शहीदों को श्रृद्धांजली अर्पित किया जा रहा है। इससे लोगों में राष्ट्रभक्ति, देशप्रेम की भावना भी जागृत करने में भी सहायता प्राप्त हुई। आज देश की आजादी के 75 साल पूरे होने पर चारों ओर उल्लास है इसके पीछे उन स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का अमर बलिदान है, जिन्हें याद कर आज भी हमें गर्व की अनुभूति होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, जगदेव-गोण्डा अतीत तथा वर्तमान पृ0-521
2. रिजवी, एस०ए०ए०. फ्रीडम स्ट्रगल इन यू०पी०भाग-2. पृ०-334।

3. शुक्ल, ओ०पी० (शोधप्रबन्ध) बहराइच (अवध) के तालुकदारों का इतिहास, नागर, अमृतलाल, गदर के फूल (1857-58), पृ0 - 115 1
4. डिस्ट्रिक गजेटियर आफ गोण्डा,
5. रिलेटिव यूनिटी इन दि ईस्ट इण्डिया 1857 पृ0-105
6. रिवजी . फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश भाग-4
7. पं0 दयाशंकर मिश्र, आजमगढ़ का इतिहास
8. त्रिपाठी, माता प्रसाद, सरयूपार के प्राचीन कलावशेष, पूर्वा स्मारिका, 1900, पृ०-221
9. राय चौधरी हेमचन्द्र प्राचीन भारत का इतिहास

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 197-201
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्री : व्यथा से मुक्ति की ओर
(मीराकांत के नाटक 'गली दुल्हनवाली' के विशेष सन्दर्भ में)

परमिन्द्रजीत कौर, शोधार्थी पीएच.डी. (हिन्दी)
गुरु काशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो, बठिण्डा, पंजाब

शोध पत्र का सारांश : मीराकांत स्त्री के जीवन संघर्ष को पूर्णता के साथ चित्रित करने में सिद्धहस्त नाटककार है। 'गली दुल्हनवाली' नाटक में स्त्री संघर्ष के विभिन्न आयाम दृष्टिगोचर होते हैं। लेखिका ने समाज की तह में छिपे स्त्री के संघर्ष की सामाजिक, मानसिक, शारीरिक व्यथा को स्वर देकर उसका स्थायी समाधान प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। शोषण से मुक्ति के लिए स्त्रियों का शिक्षित होना अत्यावश्यक है। अशिक्षित दुल्हन द्वारा भावी पीढ़ी हेतु लिया गया निर्णय ही शोषण को मिटाने में मील का पत्थर साबित होगा।

बीज शब्द : स्त्री, चेतना, आत्मसंघर्ष, शोषण, द्वन्द्व, मानवीय संबंध, पितृसत्ता, अधिकार, शिक्षा।

शोध पत्र : मीराकांत आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य की प्रमुख हस्ताक्षर है। मीराकांत ने अपनी नाट्य कृतियों में अतिसाधारण पात्रों की सृष्टि के माध्यम से स्त्री के जीवन संघर्ष की सूक्ष्म पड़ताल की है। उनके स्त्री पात्र प्रत्येक स्थिति में संघर्षशील पात्र के रूप में सामने आते है। मीराकांत के पात्रों में संघर्ष अनेकरूपों में उद्घाटित होता है यथा–अस्तित्व बोध, लैंगिक समानता, अधिकारों के प्रति चेतना, राजनीति में हस्तक्षेप, यौन शोषण से मुक्ति, आर्थिक स्वावलम्बन, मानसिक द्वन्द्व, सामाजिक रूढ़ियों का खण्डन, पुरुष सत्ता की अस्वीकार्यता, संबंध शून्यता, स्त्री आन्दोलन आदि। उनके पात्रों का संघर्ष पुरुष सत्ता के विरूद्ध सिर्फ विद्रोह ही नहीं है, अपितु एक सन्तुलन भी है। महादेवी वर्मा ने स्त्री के संघर्ष को परिभाषित करते हुए लिखा है– "हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता, न किसी का प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकेंगे।"[1]

'गली दुल्हनवाली' नाटक में एक अतिसाधारण मुस्लिम स्त्री 'दुल्हन' के माध्यम से स्त्री जीवन की व्यथा को उजागर किया गया है। लेखिका ने स्त्री के प्रति स्त्री की संवेदना को 'गली दुल्हनवाली' नाटक में दुल्हन और गौरी की माँ के माध्यम से प्रकट किया है। लेखिका ने यहाँ धार्मिक द्वेष से आगे जाकर स्त्री वर्ग की व्यथा को उजागर करने का प्रयास किया है–

दुल्हन : आज तो गौरी मिलने भी आ रही है। तो बात तो दिल की ही हुई ना... वर्ना उनका मेरा क्या मेल! गौरी की माँ ठहरी पक्की हिन्दुआनी... अफ़सर की बीवी और मैं मुसलमान... कसाई की बीवी! पर कुछ भी कह लो औरत का दिल तो औरत ही जानती–समझती है। अपने सारे दुख–दर्द मैं गौरी की माँ को ही बताती थी। क्या ज़माना था वो भी![2]

गौरी की माँ खुद दुल्हन की स्थिति को समझकर दुल्हन के साथ अस्पताल चलने को तैयार हो जाती है। साथ ही समाज की संरचना के अनुसार दुल्हन को समझाते हुए अपने पति से पूछने की नसीहत भी देती। पितृसत्तात्मक संरचना में पत्नी को पति की आज्ञा के बिना घर से बाहर निकलने की सख्त मनाही है।

"अरी दुल्हन, जो दुख–दर्द में काम आये वही अपना। अपने घरवाले से पूछकर मोहल्ले की किसी बड़ी बी से बात कर ले। डॉक्टर के हो आ। मुझे कहेगी तो मैं तेरे साथ हस्पताल चल सकती हूँ.. . पर पहले घर में पूछ ले।"[3]

रिश्तों के गणित में संवेदना सामने वाले व्यक्ति से नजदीक–दूर के संबंधों व स्वार्थ के आधार पर निर्धारित होती है। रिश्तों के इस ताने–बाने को तुलनात्मक दृष्टि से गौरी की माँ ने स्पष्ट किया है। वह अपनी बहन और अपनी ननद के प्रति अपने पति के बर्ताव की तुलना करती हुई कहती है–

(गौरी की माँ) "नहीं मेरी ननद का ससुर बीमार है। हस्पताल में दिखाने दिल्ली ला रहे हैं उन्हें। इसलिए चार लोग कुछ दिन अपने यहाँ ही ठहरेंगे।

(दुल्हन) अच्छा! इसीलिए कल शाम भाई साहब तुम्हारा हाथ बँटा रहे थे। (मुस्कराकर) देखा था मैंने झाँककर। ऐ... तुम कपड़े धो–धोकर पकड़ा रही थीं और वो झाड़–झाड़कर सुखा रहे थे। कित्ता ख़याल रखते हैं तुम्हारा!

(गौरी की माँ) अपनी गरज़ तो बावली होती ही है। अभी तो एक टाँग पर भी कहोगे तो खड़े हो जाएँगे दिनभर। अपनी बहन के ससुराल का जो मामला है ××× मतलब से दुल्हन... सब मतलब से। मेरे जीजा का एक्सीडेंट हुआ तो उनके दिमाग का ऑपरेशन होना था। तब साफ़ कह दिया था इन्होंने कि अपनी बहन से कहना हस्पताल के आस–पास ही कोई कमरा ले ले। अपने पास इतनी जगह नहीं है। अब कोई पूछे कि जब वो अकेली नहीं खप सकती थी तो तुम्हारी बहन के चार–चार कैसे खपेंगे।[4]

सदियों से स्त्री किसी न किसी रूप में शोषण का शिकार होती रही है। यह प्रक्रिया समय के साथ–साथ कम नहीं हुई, अपितु परिवर्तित नए–नए रूपों में उद्‌घाटित हुई है। स्त्री के दर्द को बयान करती हुई दुल्हन कहती है–

अरे छोड़ो ना गौरी की माँ! मुझे तो लगता है कि हम औरतों का दर्द खत्म तो क्या कम होने का भी नहीं। मरा सोने के भाव की तरह बढ़ता ही जा रिया है। ज़रा सोचो गौरी की माँ... अपना दर्द अगर सोने का भाव न होकर आलू–प्याज़ का भाव होता तो ? ज़ालिम कभी तो कम होता! [5]

पुरुष की कुत्सित वासना दृष्टि से स्त्री हमेशा भयभीत रही है। घर की चहारदीवारी में भी स्त्री अपनों के बीच सुरक्षित नहीं है। पुरुष हमेशा स्त्री को भोग्य दृष्टि से देखता रहा है। स्त्री–देह की उसका लक्ष्य बना रहा। स्त्री के मन की संवेदना तक पुरुष कभी नहीं पहुँच पाया। दुल्हन अपने जेठ की हरकतों से इस बात की पुष्टि करती है–

"सीढ़ियों से कमरे में जाता है तो कमबख्त के पैर ऊपर की तरफ़ जाते हैं और आँखें यहाँ हमारे दालान में नीचे की तरफ़। आते–जाते ताका–झाँकी न करे तो हरामी मर्दुआ कैसा!"[6]

मीराकांत ने दुल्हन की माँ के माध्यम से विवाहेतर संबंधों की तह को उघाड़ा है। दुल्हन की माँ के किसी गैर–मर्द के साथ शारीरिक संबंध थे। एक दिन अवसर पाकर दुल्हन की माँ अपने प्रेमी के साथ घर छोड़कर भाग गई। दुल्हन जब अपने भाई के साथ माँ के घर पहुँचती है, तब तक माँ जा चुकी थी। "माँ के यहाँ! जहाँ दो दिन से माँ थी ही नहीं... भाग गयी थी हरामज़ादी अपने यार के साथ।"[7]

जब दुल्हन वापस लौटकर आती है तो माँ के कारनामे का खामियाज़ा दुल्हन को भी भुगतना पड़ता है। दुल्हन का पति रज़्ज़ाक गुस्से में आकर दुल्हन को पीटता हुआ उसके साथ हिंसक होकर यौन संबंध बनाता है।

"मिल आयी अपनी माँ के नये खसम से ? ××× ये मत सोचियो कि तू भी दूसरा खसम कर लेगी तो मैं तेरे नामर्द बाप की तरह तहमद की गाँठ सँभालता फिरूँगा।"[8]

दुल्हन बेहोशी की अवस्था में थी और रज़्ज़ाक उसके साथ संबंध बनाता रहा। जब दुल्हन को होश आया तो उसके आसपास कोई नहीं था। रज़्ज़ाक अपना काम करके बाहर जा चुका था। दुल्हन स्वयं को नग्नावस्था में पाकर हड़बड़ाकर उठती है और देखती है कि सारे घर में जलाँध भरी हुई है। थोड़ी देर बाद जब रज़्ज़ाक वापस घर लौटता है तो उसी भावावेश में। वह क्रोधित स्वर में अपने मन की भड़ास निकालता है और फिर से दुल्हन के साथ शारीरिक संबंध बनाता है–

"रंडी की बेटी... जैसी छोड़ गया था वैसी ही बैठी है बिना शलवार के... हरामज़ादी अपनी नंगी टाँगे क्या रमज़ानी के लिए खोलकर बैठी है। इन्तज़ार कर रही है उसका कि वो सीढ़ियों से ऊपर जाए और नीचे देखे ?"[9]

दुल्हन अपनी माँ के द्वारा लिए निर्णय से तिलमिला उठती है। वह कसाई छत्ते में बदनामी से डरती है। परन्तु उसी क्षण वह अपनी माँ के कष्टों से भरे जीवन पर नज़र डालती हुई माँ द्वारा अपने प्रेमी के साथ भाग जाने के निर्णय को उचित मानती है। एक स्त्री समाज, परिवार, बिरादरी, परम्पराओं में कब तक भूखी प्यासी पिसती रहेगी। जब तक रोटी की मोहताज थी तब किसी ने सुध नहीं ली, पर

अब अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेती है तो पूरे समाज को आपत्ति होती है। स्त्री के इस प्रश्न के दुल्हन ने बड़ी गहराई से उठाया है–

"गाली तो मैं उसे दे रही हूँ पर ज़िन्दगी तो उसकी अज़ाब ही थी। बचपन से लेकर आज तलक। सारी ज़िन्दगी औरों के हिसाब से जीती रही बेचारी। पहले दादा, फिर बाप और फिर खसम। आज जब उसने पहली बार दोज़ख से निकलकर अपने जी की करनी चाही तो बिरादरी को तकलीफ़ हुई! ये... ये दर्द तब कहाँ था जब वो छह बरस की कटोरी... हाँ कटोरी नाम है माँ का... जब महीनों भूख से वो छिपती फिर रही थी और डायन भूख उसके पीछे पड़ी हुई थी... बड़ी आयी बिरादरी!"[10]

'गली दुल्हनवाली' नाटक में स्त्री की तत्कालीन स्थिति को बड़ी यर्थाथता के साथ चित्रित किया गया है। दुल्हन अपनी माँ के बचपन से लेकर विवाह तक के जीवन को एक तराजू में रखकर तौलती है। ऐसा नरकीय जीवन जहाँ स्त्री होना ही अभिशाप है। घर के बड़े बुजुर्गों ने गरीबी और भूखमरी की स्थिति में भी सारे नियम घर की स्त्रियों पर थोप दिए। लड़के और लड़की में अन्तर की यह रेखा स्त्री जीवन का यर्थाथ है जो हमारे के माथे पर कंलक है। स्त्री होने भर के कारण उसे भूखा रहने के लिए विवश किया जाता है।

"अम्मी के दादा मियाँ ने ऐलान किया कि गेहूँ की रोटी और चावल सिर्फ़ घर के मर्द और लड़के खाएँगे। औरतें उनके थाल में बचे टुकड़े खाएँगी और चावल का माँड पिएँगी।"[11]

गरीबी और भूखमरी के नाजुक दौर ने स्त्रियों के जीवन पर घोर संकट पैदा किए। उन दिनों में लड़कियां घर पर बोझ बन चुकी थी। किसी न किसी तरह लड़कियों का विवाह कर देना ही इस स्थिति से उभरने का समाधान था। इसी कारण दुल्हन की माँ अनमेल विवाह की कुप्रथा का दंश झेलने को विवश हो जाती है। तेरह वर्ष की अवस्था में उसका विवाह पैंतीस साल के अधखड़ से कर दिया जाता है। कारण सिर्फ एक था कि वहाँ भरपेट भोजन मिलेगा।

"दादा मियाँ ने कुछ बरसों में तेरह साल की कटोरी का निकाह पैंतीस बरस के अब्बा से कर दिया। अब्बू के पहले ही तीन औलादें थीं। दौड़ा–दौड़ाकर काम करवाने के लिए सास–ससुर थे। निकाह के बाद खाविन्द की लातें–घूँसे तो खाने को मिलते थे पर एक सबर था कि भरपेट रोटी भी नसीब होती थीं।"[12]

घर के विषैले वातावरण की भुक्तभोगी दुल्हन की माँ द्वारा घर छोड़कर भाग जाने के निर्णय को दुल्हन अपने विवेक की कसौटी पर कसती है। अपने ही घर में अपने ही पुरुष द्वारा प्रताड़ना का दंश झेलती स्त्री के जीवन को दुल्हन की माँ के चरित्र के माध्यम से दिखाया गया है। दुल्हन ने स्वयं इस यर्थाथ को नज़दीक से देखा है–

"अपनी आँखों से देखा है मैंने अम्मी को पिटते। बिला नागा रोज़। जैसे ऊपर वाले ने तय करके भेजा हो कि शादी के बाद सब कामों से निबट कर खाविन्द से हर रोज़ पिटना हर बीवी का अव्वल दर्जे का फर्ज है! थू ऐसे खाविन्दों पर और ऐसी मर्द ज़ात पर! एक रात तो अम्मी का होंठ ऐसा काटा कि घण्टों रुई पर मलहम लगाकर रखा पर खून ने रुकने का नाम न लिया। सुबह अब्बू के जाने के बाद वो हस्पताल गयी तो डॉक्टर ने दो टाँके लगाये। ऐसे जहन्नुम से अगर वो भाग गयी तो क्या बुरा हुआ ?"[13]

रज़्ज़ाक द्वारा माँ के संबंध में बार–बार सवाल करते हुए गाली देने पर दुल्हन का स्त्रीत्व जाग जाता है। वही चीखकर पुरुषों की दमन वृत्ति पर आक्षेप करती है–

"कसाई था मेरा बाप... कसाई... तेरी तरह... इसलिए भागी।"[14]

दुल्हन के रूप में स्त्री सिर्फ भोग्य वस्तु मात्र है। घर की चहारदीवारी में बन्द कितनी ही स्त्रियां वेश्याएँ बनी हुई है। उनके पतियों को उनके शरीर मात्र से मतलब है। उनके मन और संवेदना की कोई जगह नहीं है। रज़्ज़ाक कहता है–

"अरे चूल्हे की छोड़ पहले मुझे ठंडा कर।

बस फिर कैसा चूल्हा और किसका खाना... यही पिरोगराम रहता रोज़ रात को... एक दिन मैंने पूछा... इत्ता प्यार करता है मुझे ? तो झिड़ककर बोला... अरी जा! बड़ी आयी... आदत पड़ गयी है मुझे!"[15]

पुरुष की भोगवृति पर आक्षेप करती हुई दुल्हन कहती है कि आज पुरुष को स्त्री का शरीर भोगने के लिए चाहिए। कल जब स्त्री की मृत्यु हो जाती है तो यही पुरुष इज़्ज़त के साथ कन्धा देने आ जाते हैं। जब तक जीवित तब तक कोई सहारा नहीं बनता।

"वल्लाह! कभी–कभी सोचती हूँ जब मुझे उठाकर ले जाने आएँगे तो मैं भी बाइज़्ज़त मिलूँगी। अपने ताबूत में। और यही हरामी मर्द कन्धा देने आ जाएँगे तब। कैसी अहमक है ये इंसान ज़ात! अरे ज़िन्दा रहने पर तो इंसान को कुत्ता समझते है और मरने पर इज़्ज़त बख़्शते हैं! खुदा खैर करे!"[16]

लेखिका का मानना है कि स्त्री शिक्षा के बल पर शोषण से मुक्ति के रास्ते पर अग्रसर हो सकती है। शिक्षा ही स्त्री जीवन में क्रांति ला सकती है। जब तक स्त्री शिक्षित नहीं होगी, तब तक वह शोषण की चक्की में ऐसे ही पिसती रहेगी। 'गली दुल्हनवाली' नाटक में लेखिका ने शिक्षा के प्रभाव को रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि शिक्षित स्त्री अपने भावी पीढ़ी के भविष्य की भी निर्माता बनती है। दुल्हन स्वयं अशिक्षित होते हुए भी अपनी सन्तान को पढ़ाने के लिए हरसंभव प्रयास करती है। उसे घर से बेघर होना स्वीकार था, परन्तु अपने बेटे–बेटियों का अशिक्षित होना नहीं। "अपनी ज़िन्दगी का कुछ करने की तो हिम्मत नहीं थी मुझमें पर मेरी ख़्वाहिश थी कि मेरे बच्चे गौरी और उसके भाई की तरह पढ़ें... इस्कूल जाएँ और अपने बाप जैसे जल्लाद और जाहिल न बनें।"[17]

इस संबंध में वह अपना निर्णय सुनाती हुई कहती है कि हर स्थिति में वह अपने बच्चों को शिक्षा से वंचित नहीं रखेगी –

"मैं तय कर चुकी थी कि चाहे कुछ हो जाये मुकीम को इस्कूल में दाखिल कराके रहूँगी। मेरा मुकीम ज़रूर पढ़ेगा और उसके बाद सलीम भी।"[18]

दुल्हन अपनी बेटी नरगिस का अकबर के साथ निकाह का विरोध करती है। वह किसी भी हालात में अपनी बेटी को बेचना नहीं चाहती। रज़्ज़ाक बकरे के गोश्त और कुछ पैसों के बदले बेटी को अधखड़ उम्र के अकबर के साथ भेजने को तैयार हो जाता है। दुल्हन इसका तीखा विरोध करती है।

"खुद को निचोड़ कर रख दिया मैंने इसके लिए और इसने मुझे बकरे की खाल की तरह खींच–नोंचकर घर से अलग कर दिया। अब तो मेरी बेटी को भी नहीं बख़्शेगा ? नहीं... ऐसा नहीं होने दूँगी मैं। ××× खुदगर्ज़ कहीं का। अपने फायदे के लिए अपनी बेटी को दोज़ख में डाल देगा!"[19]

स्त्री के लिए इस समाज में कोई भी सुरक्षित स्थान नहीं है। हर तरफ उसे नोच–खाने वाले जानवर घूम रहे है। दुल्हन इस यर्थाथ की भुक्तभोगी है। उसे दुनिया में हर तरफ से यही अनुभव मिला। हर बात पर रज़्ज़ाक उसे पीटकर घर से बाहर निकाल देता था। बाहर की दुनिया के भय से दुल्हन हर बार वापस घर लौट आती।

"नहीं जाऊँ उस ओजड़ी में तो कहाँ जाऊँ ? ये हरामज़ादी दुनिया भी क्या ओजड़ी से कम है।"[20]

लेखिका ने स्त्री की सजगता और चेतना के रास्ते पर चलते हुए दिखाकर नाटक का अन्त किया है। केवल शोषित व प्रताड़ित स्त्री के जीवन संघर्ष को ही नहीं दिखाया अपितु समस्या का समाधान भी खोजा है। स्त्री जब तक कमज़ोर बनी रहती है तब तक पुरुष उसे अपने वर्चस्व के अधीन रखता है। परन्तु जब स्त्री भीतर से मजबूत बन कर समाज के सामने आती है, तो पुरुष उसके सामने घुटने टेक देता है। दुल्हन के माध्यम से इसका प्रमाण पेश किया है। पति द्वारा शोषित व पीड़ित दुल्हन भीतर से मजबूत बनकर सामना करती है। स्त्री पुरुषों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होती है। भावनाओं की गिरफ्त में बंधकर वह हर प्रकार के शोषण व अन्याय को सहन करती रहती है। परन्तु जब एक स्त्री के हृदय से संवेदनाएं तिरोहित हो जाती है तो वह पत्थर बन जाती है। दुल्हन का भाव शून्य हो जाना उसके जीवन का नया रूपान्तरण था। अब वह पति के अन्याय के खिलाफ चट्टान बन कर खड़ी थी। अब उसे घर से बाहर निकालने वाला कोई नहीं था। रज़्ज़ाक को घर के दरवाज़े से बाहर करके वह आराम से बच्चों के साथ सोती है। अब रज़्ज़ाक रात भर बाहर ऊँघता रहता है।

पितृसत्ता में स्त्रियों को निर्णय लेने का अधिकार नहीं मिला। "निर्णय लेने के प्रायः सभी मुख्य केन्द्रों पर मर्दों का सर्वाधिकार सुरक्षित है, जिसकी वजह से स्त्री के हिस्से में सिर्फ एक अंधेरा कोना ही बचा रह गया।"[21] दुल्हन के जीवन का क्रांतिकारी बदलाव था पति के अन्याय के सामने डटकर खड़े होने का निर्णय। वह अपने पति के अमानवीय व्यवहार का तीखा विरोध करती है। लेखिका ने स्त्री मुक्ति का जो सपना देखा था उसकी संकल्पना यही से रूपाकार होती दिखाई देती है।

"मैंने अकड़कर कहा– सुन ले आज... इंसान बनकर रहेगा तो घर में इंसान पाएगा। वर्ना एक लगाएगा तो अब दो खाएगा। ××× बेटा अब चीख! वो दिन और आज का दिन! जब उसे पिटाई का बुखार चढ़ता तो बदले में पिटता भी। जमा–खर्चा बराबर!" [22]

स्त्री के दायित्वबोध को लेखिका ने बड़े तल्ख स्वर में उद्घाटित किया है। रज़्ज़ाक के पुरुषत्व पर प्रहार करती हुई दुल्हन कहती है–

"तो मुझे क्या रंडी समझ रखा है। अरे मैं तेरे बच्चे पैदा करती हूँ... तेरा घर देखती हूँ... तेरा हरामी पेट भरती हूँ... ऊपर का भी और नीचे का भी। अब बोल... आया बड़ा कमानेवाला!" [23]
दूल्हन का पति रज़्ज़ाक उस पर अपने स्वामीत्व का दंभ भरता है, तो दुल्हन उसे स्त्रीत्व से परिचित करवाती है। स्त्री केवल दासी और भोग्य मात्र नहीं है। वह सृष्टि की सृजनकर्त्ता भी है। दुल्हन के प्रश्नों का रज़्ज़ाक के पास कोई उत्तर नहीं होता।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मीराकांत ने आलोच्य नाटक 'गली दुल्हनवाली' की पात्र दुल्हन के माध्यम से स्त्री वर्ग के संघर्ष को यथार्थता के साथ अभिव्यक्त किया है। स्त्री चाहे हिन्दु हो या मुसलमान, उनके जीवन की व्यथा हर धर्म में एक समान रही है। लेखिका ने समाज की परम्परागत बेड़ियों, अन्याय व शोषण से मुक्ति के लिए शिक्षा स्त्री के लिए सबसे बड़ा हथियार स्वीकारा है। मीराकांत ने इस नाटक में स्त्री शिक्षा का प्रश्न प्रमुखता से उठाया है। शिक्षा के माध्यम से स्त्रियों में आई जागृति व चेतना ही उसकी पीड़ा व व्यथा से निजात दिलाने का एकमात्र रास्ता है।

सन्दर्भ सूची :

[1] वर्मा, महादेवी, श्रृखंला की कड़िया, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण—2008, पृष्ठ—23
[2] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली',तीन अकेले साथ—साथ, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण—2013, पृष्ठ—16
[3] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—17
[4] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—19
[5] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—20
[6] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—22
[7] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—24
[8] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—25
[9] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—28
[10] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—26
[11] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—27
[12] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—27
[13] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—28
[14] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—29
[15] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—30
[16] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—32
[17] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—34
[18] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—35
[19] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—39
[20] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—40
[21] जैन, अरविन्द, उत्तराधिकार या पुत्राधिकार, हंस, जून—1998, पृष्ठ—77
[22] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—41
[23] मीराकांत, 'गली दुल्हनवाली' पृष्ठ—41

ईमेल : subinspector91@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 202-204
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेमचन्द की राष्ट्रीयता और आर्य समाज

निधि कुँवर, शोध छात्रा
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय(BHU), वाराणसी

राष्ट्रीयता के भावों के उन्नयन में धर्म की विशेष भूमिका होती है । उसका स्वरुप समन्वयात्मक होता है । राष्ट्रवाद का विकास शिक्षित वर्ग में धार्मिक पुनरुत्थान से हुआ । प्रेमचन्द के साहित्य का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय भावना ही था । उन्होंने राष्ट्रीयता के प्रगतिशील पहलू को ही महत्त्व दिया । प्रेमचन्द के समय में समाज और लोकजीवन में क्रांति की भीषण ज्वाला सुलग रही थी, प्रेमचंद इस क्रांति की आवाज को भारतीय-मजदूरों और किसानों की आवाज बनाने का पूरा प्रयत्न कर रहे थे । प्रेमचंद के समय का राष्ट्रवाद मुख्यतः जमींदार, पूंजीपति, गठबन्धन की आकांक्षाओं की तरफ ही आकर्षित था । प्रेमचंद लिखते हैं कि- “किसानों के पास रुपये हैं नहीं, दें तो कहाँ से दें । गरीब किसान लगान कहाँ से दें । उस पर सरकार का हुक्म है कि लगान कड़ाई के साथ वसूल किया जाय । किसान इस पर भी राजी न हैं कि हमारी जमा जथा नीलाम कर लो, घर कुर्क कर लो अपनी जमीन ले लो ।”[1]

ऐसी ही सरकार के राज में जमींदारी भी ऐसी ही है । जिन्हें सिर्फ अपनी स्वार्थ सिद्धी से मतलब है । प्रेमचंद की रचनाओं में ग्रामीण जीवन की प्रमुखता है । उनके पात्र मात्र व्यक्ति न होकर सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रीय जीवन के पात्र बन गए हैं । प्रेमचंद ने कभी अन्याय का साथ नही दिया उनका किसी दल या राजनीति से कोई वास्ता नहीं था । लेकिन उनकी आत्मा का विद्रोह उनकी सच्चाई उनका संघर्ष उनकी रचनाओं में झलकता है । प्रेमचंद ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर 15 फरवरी 1921 को अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया । उनका मानना था कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए हिंसात्मक रवैया अपनाना सही नहीं है । प्रेमचंद का कर्मभूमि उपन्यास स्वाधीनता संघर्ष पर केन्द्रित उपन्यास है इसमें प्रेमचंद के राष्ट्रीयता से सम्बन्धित विचार व्यक्त हुए हैं । उन्होंने राष्ट्रीयता का प्रयोग व्यक्ति के विकास के लिए ही किया उनका लेखन स्वाधीनता से लबरेज था । जब 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन सम्पूर्ण देश में फैलने लगा तो इस आन्दोलन से प्रेमचंद को बहुत आशा थी । उन्होंने लिखा कि “हमें चारों

ओर अपनी विजय के लक्षण दिखाई देते हैं और हम इसी तरह क्षेत्र में डटे रहेंगे तो निसंदेह हमारी मनोकामना पूरी होगी ।"[2]

ब्रिटिश सरकार ने गोलियों, लाठियों से इसे समाप्त करना चाहा, लेकिन जनता का अखण्ड आत्मविश्वास, शक्ति व उत्साह देखकर सरकार के समक्ष समझौते के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं था । प्रेमचंद अपने देश की दुरवस्था पर चिन्तित रहते थे उनका मानना था कि मांगने से राजसत्ता नहीं मिलेगी । जब नमक कानून तोड़ा जा रहा था तो कईयों को उन्होंने अपने पैसों से खादी का कुर्ता, टोपी, धोती पहनाकर भेजा था । "लोगों को कुर्ता, टोपी खादी का पहनाकर कहते जाओ बहादुरो नमक-कानून तोड़ो । मै भी जल्दी पहुंचता हूँ ।"[3]

प्रेमचंद के लेखन पर अगर हम गहराई से विचार करें तो हमें स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र की मुक्ति ही उनका एकमात्र संकल्प और साध्य है । उनका पूरा लेखन कर्म भारतीय जनता के स्वाधीनता आन्दोलन को समर्पित है । उन्होंने समय-सत्य और रचना-सत्य को एक साथ रखकर लेखन किया है इसलिए वे राष्ट्रीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में आज भी प्रासंगिक और सार्थक हैं ।

आधुनिक भारत के आक्रामक राष्ट्रवाद के प्रणेता स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों का प्रभाव भारतीयों पर विशेष रुप से पड़ा । उनका उदय ऐसे समय में हुआ जब भारतीय जनमानस आत्मग्लानि, हीनता एवं कायरता से ग्रसित था । उन्होंने वैदिक ज्ञान के माध्यम से भारतीय जीवन दर्शन एवं मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा कर भारतीयों में उत्साह, आत्मगौरव व विश्वास का संचार किया । 19 वीं शताब्दी के भारत और उसके राष्ट्रीय आन्दोलन का अध्ययन स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों के परीक्षण एवं मूल्यांकन के बिना अपूर्ण रहेगा । उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक दृष्टिकोण से भारतीय राष्ट्रवाद को नवीन दिशा प्रदान की । उन्होंने स्त्रियों के उत्थान के लिए कई कार्य किए तथा सतीप्रथा, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, दहेज प्रथा, कन्या वध इत्यादि का पुरजोर तरीके से विरोध किया । उन्होंने 1875 में मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की जिसके माध्यम से भारतीय ज्ञान-विज्ञान का खूब प्रचार-प्रसार किया । आर्य समाज व दयानन्द सरस्वती का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर विशेष रुप से पड़ा । भारतेन्दु युग से लेकर छायावाद युग तक कहीं न कहीं हिन्दी साहित्य आर्य समाज के विचारों से प्रभावित रहा । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के समकालीन थे । दोनों लोगों के विचारधारा में राजनीतिक व धार्मिक दृष्टि से काफी अंतर था, लेकिन भारतेन्दु भी महर्षि की तरह धार्मिक व समाज सुधार के क्षेत्र में परिवर्तन के पक्षपाती थे । भारतेन्दु की धर्म-विषयक इन प्रगतिशील एवं रूढ़िमुक्त विचारों की निर्मिती में स्वामी दयानन्द के विचार ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में कारण बने । रामधारी सिंह दिनकर ने कहा- "रीतिकाल के ठीक बादवाले काल में हिन्दीभाषी क्षेत्रों में जो सबसे बड़ी सांस्कृतिक घटना घटी, वह स्वामी दयानन्द का पवित्रतावादी प्रचार था ।"[4]

स्वामी जी की विचारधारा का प्रभाव भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी युग पर कहीं अधिक दिखाई देता है । प्रसिद्ध कवि नाथूराम शंकर ने नायिकाभेद पर लिखा अपना एक ग्रन्थ

कलित कलेवर स्वयमेव आर्यसमाज के प्रभाव से नष्ट कर दिया। अब जितने भी कविगण थे वे राष्ट्रीय और सामाजिक विषयों पर कविताएँ लिखने लगे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना गद्य ऐसी शैली में लिखा जो जनता को अधिक से अधिक सरल और सुसाध्य हो। आर्य समाज के माध्यम से हिन्दी भाषा में एक नई शैली का विकास हुआ। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने ग्रंथों में आर्य समाज का सर्वत्र समर्थन किया है। वे गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य रामदेव जी के **भारतवर्ष का इतिहास** से बहुत प्रभावित थे। सनातनधर्मी होने पर भी हरिऔध स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों से इतना प्रभावित थे कि प्रियप्रवास में कवि ने पुरानी कृष्ण-कथा को बड़ी मौलिकता और नूतन दृष्टि से प्रस्तुत किया है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में अवतारवाद का पुरजोर तरीके से खंडन किया था और श्रीकृष्ण को एक आदर्श मानव के रुप में प्रस्तुत किया था। कवि हरिऔध ने प्रियप्रवास में कृष्ण को शुद्ध मानव के रुप में प्रस्तुत किया जिसमें वे लोकसंरक्षण और विश्व कल्याण की भावना से परिपूर्ण वे मनुष्य अधिक हैं।

स्वामी जी के हिन्दी विषयक प्रभावों और उनके कार्यों का मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने जो हिन्दी की सेवा की वह अद्वितीय है। उनका सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया। उनकी राष्ट्रीय भावनाएं इतनी उग्र थी कि हिन्दी के अधिकतर साहित्यकारों ने अपने साहित्य में उन भावनाओं को उकेरा तथा राष्ट्र की सेवा के लिए खुद को समर्पित भी किया। प्रेमचंद में जो राष्ट्रीय भावनाएं थी वह उस समय के समाज व गाँधीजी के विचारों का प्रभाव कहा जा सकता है लेकिन समाज सुधार की भावना व सामाजिक कुरीतियों पर लिखना व आवाज उठाना स्वामी दयानन्द सरस्वती की ही देन थी।

सन्दर्भ-

1- प्रेमचंद, मानसरोवर (भाग 7), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण2018, पृ.10
2- अमृतराय, प्रेमचंद कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण1976, पृ.464
3- शिवरानी देवी, प्रेमचंद: घर में, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण1944, पृ.180
4- डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्य समाज का इतिहास (भाग 5), आर्य स्वाध्याय केंद्र, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण2016, पृ.537

मोबाईल नं:-7398714858 ईमेल- nidhikunwar0002020@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 205-214
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अटल टिंकरिंग लैब (ATL's) की वस्तुस्थिति एवं उपयोगिता का अध्ययन

ममता प्रजापत, शोधार्थी (पी.एच.डी.छात्रा),
डॉ. हिम्मत सिंह चुण्डावत, पर्यवेक्षक (सहायक आचार्य)
लोकमान्य तिलक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय डबोक उदयपुर (राज.)

1. परिचय-

अटल इनोवेशन मिशन के तहत देशभर मे अटल टिंकरिंग लैब की स्थापना की गई है। अटल टिंकरिंग लैब छठी से बाहरवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के लिए अपने नये विचारों को आकार रूप देने का कार्य स्थल है। इन कार्य स्थलों पर विद्यार्थियों को कुछ नया करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ,जो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से जुड़ा होता है। सरकार द्वारा विद्यार्थियों के विकास व क्षमता संवर्धन के प्रयास कहाँ तक सफल हुए है। विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की स्थिति कैसी है ? और विद्यार्थियों के लिए इकसी क्या उपयोगिता है। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए शोधकत्र्री ने निम्न समस्या का चयन किया है।

2. शोध औचित्य -

वर्तमान विद्यार्थी ही कल का देश के विकास में अग्रणीं भागीदार होंगे, इसलिए विद्यार्थियों में नवाचार की भावना विकसित करने एवं छात्रों के मस्तिष्क में आकर ले रहे नव-विचारों को दिशा प्रदान करने के लिए भारत सरकार द्वारा विद्यालयों में "अटल टिंकरिंग लैब" की स्थापना की गई। अटल टिंकरिंग लैब विद्यार्थियों की क्षमता, रचनात्मकता, समस्या समाधान, कल्पनाशीलता, प्रौद्योगिक क्षमता, गणित ज्ञान, डिजिटल लर्निंग में क्या सहायक है। क्या बालकों की अकादमिक क्षमता पर अटल टिंकरिंग लैब का प्रभाव पड़ता है, क्या बालकों के लिए अटल टिंकरिंग लैब की क्या उपयोगिता है ?

3. मस्या कथन -

"अटल टिंकरिंग लैब (ATL's) की वस्तुस्थिति एवं उपयोगिता का अध्ययन"

4. पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण -

1. **अटल टिंकरिंग लैब** - अटल टिंकरिंग लैब कक्षा 6 से 12 तक विद्यार्थियों के लिए अपने नये विचारों को आकार रूप देने का कार्य स्थल है।
2. **वस्तुस्थिति** - वस्तुस्थिति का अर्थ है, वास्तविक स्थिति या यर्थाथ स्थिति, अर्थात जो होना चाहिए वह हो तो उसे वस्तुस्थिति कहाँ जायेगा।
3. **उपयोगिता -** उपयोगिता का अर्थ है कोई वस्तु या कार्य जो मानव की आवश्यकता की पूति करें, मानव के लिए हितकर हो वही वस्तु व कार्य उसके लिए उपयोगी होता है।

5. शोध उद्देश्य -

1. अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का अध्ययन करना।
2. अटल टिंकरिंग लैब के कला वर्ग के विद्यार्थियों हेतु उपयोगिता का अध्ययन करना।
3. अटल टिंकरिंग लैब के विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों हेतु उपयोगिता का अध्ययन करना।
4. अटल टिंकरिंग लैब के कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों हेतु उपयोगिता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

6. शोध परिकल्पना -

1. अटल टिंकरिंग लैब का विद्यार्थियों हेतु उपयोगिता के साथ कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।
2. अटल टिंकरिंग लैब का कला वर्ग व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों हेतु उपयोगिता के साथ कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

7. अध्ययन परिसीमन -

- प्रस्तुत शोध अध्ययन कोटा संभाग तक ही सीमित रखा जायेगा।
- शोध उन विद्यार्थियों तक सीमित रखा जायेगा जो अटल टिंकरिंग लैब द्वारा इनोवेशन की ओर प्रवृत्त है।

8. प्रस्तुत शोध कार्य में सम्बन्धित साहित्य -

1. Phatak Anvit, Mane Vikash (2022), "Creativity, innovation and cross-cultural collaboration in ATAL Innovation mission".

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता के निम्न उद्देश्य थे। अटल टिकरिंग लैब की उत्पत्ति का अध्ययन करना। अटल टिकरिंग लैब के परितंत्र निर्माण का अध्ययन करना।

निष्कर्ष -

1. अधिकांश सरकारी और निजी उच्च माध्यमिक संस्थानों के छात्रों के पास उपयुक्त प्रयोगशाला सुविधाएँ है।
2. निजी शहरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की तुलना में निजी ग्रामीण एवं सरकारी विद्यालयों में भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान व जन्तु विज्ञान की स्वतंत्र प्रयोगशाला सुविधाएँ अधिक है।

2. **घोष दे ईशिता घोष सत्रजीत (2021),** "पारम्परिक प्रणाली और डिजिटल शिक्षाशास्त्र का सम्मिश्रण एक भारतीय परिप्रेक्ष्य।"

उद्देश्य -

1. बुनियादी प्रतिमान बदलावों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए भारत में शिक्षण-अधिगम के बदलते परिदृश्य का अध्ययन करना।
2. भारतीय परिप्रेक्ष्य में डिजिटल तकनीक के साथ पारम्परिक प्रणाली के सम्मिश्रण का अध्ययन करना।

निष्कर्ष - शोध अध्ययन में इन्होंने पाया कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में डिजिटल तकनीक के साथ पारम्परिक प्रणाली के सम्मिश्रण करते हुए शिक्षा को आगे बढाया जा सकता है।

3. **Francisoci-Javier Hinojo-Lucena** (2020), "Scientific performance and mapping of the Term STEM in Education on the web of science".

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य शैक्षिक क्षेत्र में STEM की अवधारणा के प्रक्षेपवक्र और पारगमन का विश्लेषण करना है। निष्कर्ष में पाया कि शिक्षा में STEM शब्द का शिक्षण और सिखने की प्रक्रियाओं पर विशेष रूप से विज्ञान के क्षेत्र में अधिक प्रभाव पड़ने लगा है। हालांकि वर्तमान में इसके उपयोग में पुरूषों और महिलाओं के बीच विसंगतियाँ है।

9. शोध विधि-

प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध की प्रकृति को देखते हुए सर्वेक्षण विधि के अन्तर्गत वर्णनात्मक सर्वेक्षण शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

10. शोध न्यादर्श-

प्रस्तुत शोध का न्यादर्श इस प्रकार है - न्यादर्श जिला) कोटा, बूंदी ,बारां, झालावाड़(

न्यादर्श

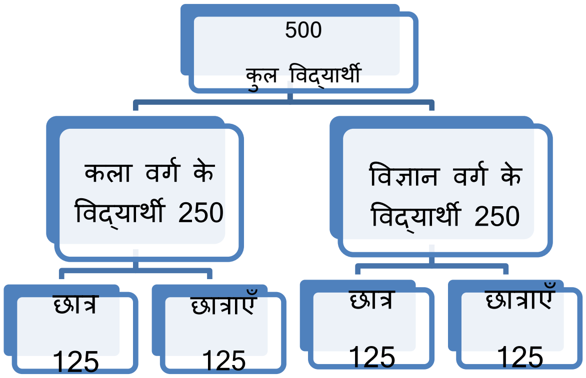

1. न्यादर्श विद्यालयों का चयन उद्देश्यपूर्ण चयन विधि के माध्यम से किया गया है।

2. विद्यार्थियों एवं शिक्षकों का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है।

11 शोध उपकरण-

1. अटल टिंकरिंग लैब की वस्तु स्थिति जानने के लिए नीति आयोग द्वारा जारी एटीएल उपकरण मानक सूची का प्रयोग किया गया है।
2. अटल टिंकरिंग लैब की उपयोगिता के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

12 सांख्यिकी प्रविधि-

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु शोधार्थी द्वारा निम्न सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया गया है।

1. मध्यमान
2. मानक विचलन
3. टी-परीक्षण

13. उद्देश्यों के अनुसार प्राप्त दत्तों का विश्लेषण -

उद्देश्य 1 अटल टिंकरिंग लैब की वस्तु स्थिति का अध्ययन करना ।

सारणी 1

कोटा जिले के विद्यालयों में संचालित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का विश्लेषण

विद्यालय का नाम	**कथन संख्या**	**हां**	**नहीं**	**प्रतिशत**
ग्लोबल पब्लिक स्कूल	86	80	6	93.02%
केंद्रीय विद्यालय क्रमांक1	86	83	3	96.51%
S R पब्लिक स्कूल	86	85	1	98.83%
बंसल पब्लिक स्कूल	86	80	6	93.02%

व्याख्या- सारणी संख्या 1 के अनुसार कोटा जिले के विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का पता लगाने हेतु शोधार्थी ने चेक लिस्ट के माध्यम से अटल टिंकरिंग लैब का अवलोकन किया तथा यह पाया कि क्षेत्र मशीनों की उपलब्धता, भौतिक संसाधनों की उपलब्धता, मानव संसाधनों की उपलब्धता, तथा शिक्षण अधिगम स्थिति से संबंधित कुल 86 कथनों में से ग्लोबल पब्लिक स्कूल का प्रतिशत 93.02% आया केंद्रीय विद्यालय क्रमांक 1 का प्रतिशत 96.51%, एस आर पब्लिक स्कूल का प्रतिशत 98.83% तथा बंसल पब्लिक स्कूल का प्रतिशत 93.02% पाया गया। अर्थात कोटा जिले के न्यादर्श विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का प्रतिशत 90% से ऊपर ही पाया गया है। अतः कोटा जिले में स्थित सभी अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति बहुत ही अच्छी है

सारणी 2

बूंदी जिले के विद्यालयों में संचालित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का विश्लेषण

विद्यालय का नाम	कथन संख्या	हां	नहीं	प्रतिशत
आदर्श विद्या मंदिर सीनियर सेकेंडरी स्कूल बूंदी	86	79	8	91.86%
स्वामी विवेकानंद राजकीय मॉडल स्कूल लाखेरी	86	80	6	93.02%
स्वामी विवेकानंद राजकीय मॉडल स्कूल बूंदी	86	75	11	87.20%

व्याख्या- सारणी 2 के अनुसार बूंदी जिले के विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का पता लगाने हेतु शोधार्थी ने चेक लिस्ट के माध्यम से अटल टिंकरिंग लैब का अवलोकन किया तथा यह पाया कि क्षेत्र मशीनों की उपलब्धता ,भौतिक संसाधनों की उपलब्धता ,मानव संसाधनों की उपलब्धता ,तथा शिक्षण अधिगम स्थिति से संबंधित कुल 86 कथनों में से आदर्श विद्या मंदिर सीनियर सेकेंडरी स्कूल का प्रतिशत 98.86% आया स्वामी विवेकानंद राजकीय मॉडल स्कूल लाखेरी का प्रतिशत 93.02%, स्वामी विवेकानन्द राजकीय मॉडल स्कूल बूंदी का प्रतिशत 87.20% पाया गया। अर्थात बूंदी जिले के न्यादर्श विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तु स्थिति का प्रतिशत 90% से ऊपर ही पाया गया है। अतः बूंदी जिले में स्थित सभी अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति बहुत ही अच्छी है।

सारणी 3

बारां जिले के विद्यालयों में संचालित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तु स्थिति का विश्लेषण

विद्यालय का नाम	कथन संख्या	हां	नहीं	प्रतिशत
केंद्रीय विद्यालयAGPP अंता	86	83	3	96.51%
आदर्श विद्या मंदिर छबड़ा	86	81	5	94.18%
स्वामी विवेकानंद गवर्नमेंट मॉडल स्कूल छबड़ा	86	81	5	94.18%
गवर्नमेंट आदर्श सीनियर सेकेंडरी स्कूल अटरू	86	81	5	94.18%

व्याख्या- सारणी 3 के अनुसार बारां जिले के विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का पता लगाने हेतु शोधार्थी ने चेक लिस्ट के माध्यम से अटल टिंकरिंग लैब का अवलोकन किया तथा यह पाया कि क्षेत्र मशीनों की उपलब्धता ,भौतिक संसाधनों की उपलब्धता ,मानव संसाधनों की उपलब्धता ,तथा शिक्षण अधिगम स्थिति से संबंधित कुल 86 कथनों में सेकेंद्रीय विद्यालय AGPP स्कूल का प्रतिशत 95.51%

आया आदर्श विद्या मंदिर छबड़ा का प्रतिशत 94.18%, स्वामी विवेकानंद गवर्नमेंट स्कूल छबड़ा का प्रतिशत 94.18%, तथा गर्वनमेंट आदर्श सीनियर सेकेंडरी स्कूल का प्रतिशत 94.18% पाया गया। अर्थात बारां जिले के न्यादर्श विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तु स्थिति का प्रतिशत 90% से ऊपर ही पाया गया है। अतः बारां जिले में स्थित सभी अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति बहुत ही अच्छी है।

सारणी 4

झालावाड़ जिले के विद्यालयों में संचालित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का विश्लेषण

विद्यालय का नाम	**कथन संख्या**	**हां**	**नहीं**	**प्रतिशत**
गवर्नमेंट सीनियर सेकेंडरी स्कूल असनावर	86	75	11	87.20%
जवाहर नवोदय विद्यालय	86	74	12	86.20%
स्वामी विवेकानंद गवर्नमेंट मॉडल स्कूल	86	78	8	90.04%
रूपनगर पब्लिक स्कूल सुकेत	86	79	7	91.86%

व्याख्या- सारणी4 के अनुसार बूंदी जिले के विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का पता लगाने हेतु शोधार्थी ने चेक लिस्ट के माध्यम से अटल टिंकरिंग लैब का अवलोकन किया तथा यह पाया कि क्षेत्र मशीनों की उपलब्धता ,भौतिक संसाधनों की उपलब्धता ,मानव संसाधनों की उपलब्धता ,तथा शिक्षण अधिगम स्थिति से संबंधित कुल 86 कथनों में से गवर्नमेंट सीनियर सेकेंडरी स्कूल असनावर का प्रतिशत 87.20% आया जवाहर नवोदय विद्यालय का प्रतिशत 86.04% स्वामी विवेकानंद गवर्मेंट मॉडल स्कूल का प्रतिशत 90.67% तथा रूप नगर स्कूल का सुकेत प्रतिशत 91.86% पाया गया। अर्थात झालावाड़ जिले के न्यादर्श विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का प्रतिशत90 % से ऊपर ही पाया गया है। झालावाड़ जिले में स्थित सभी अटल टिंकरिंग लैब की वस्तु स्थिति बहुत ही अच्छी है।

उद्देश्य 2 - अटल टिंकरिंग लैब के कला वर्ग के विद्यार्थियों हेतु उपयोगिता का अध्ययन।

सारणी 5

समूह	**संख्या**	**मध्यमान**	**मानक विचलन**	**टी-मान**	**सार्थकता स्तर**
कला वर्ग के छात्र	**125**	**51.65**	**2.93**		0. 05स्तर पर

कला वर्ग की छात्राएँ	**125**	**51.67**	**2.63**	**0.05**	सार्थक अन्तर नहीं

स्वतंत्रता का अंश-

df = N_1 + N_2 - 2 = **df = 125 + 125 - 2 = 248**

सार्थकता स्तर एवं मानक टी मूल्य-

0.05 स्तर के df 248 पर मानक टी मूल्य = 1.97 0.01 स्तर के df 248 पर मानक टी मूल्य = 2.59

व्याख्या एवं विश्लेषण - अटल टिंकरिंग लैब के कला वर्ग के विद्यार्थियों के लिए क्या उपयोगिता है। इसका पता लगाने के लिए कला वर्ग के छात्र व छात्राओं पर उपकरण प्रशासित किया गया। उपरोक्त सारणी के अनुसार कला वर्ग के छात्र (125) तथा कला वर्ग की छात्राएँ (125) का मूल्याकन किया गया, प्राप्त प्रदतों के अनुसार कला वर्ग के छात्र व छात्राओं का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 51.65, 51.67 व 2.93, 2.63 आया। मध्यमानों के अंतर की साथर्कता की जाँच के लिए टी मान निकला गया, जिसका मान 0.05 आया। जो df 248 के 0.05 टेबल मान 1.97 से कम आया अर्थात कला वर्ग के छात्र व छात्राओं में अटल टिंकरिंग लैब की उपयोगिता में सार्थक अन्तर नहीं हैं।

उद्देश्य 3 - अटल टिंकरिंग लैब के विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों हेतु उपयोगिता का अध्ययन।

सारणी 6

समूह	**संख्या**	**मध्यमान**	**मानक विचलन**	**टी-मान**	**सार्थकता स्तर**
विज्ञान वर्ग के छात्र	125	47.32	5.28	1.38	0. 05स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं
विज्ञान वर्ग की छात्राएँ	125	46.57	3.29		

स्वतंत्रता का अंश-

df = N_1 + N_2 - 2 = **df = 125 + 125 - 2 = 248**

सार्थकता स्तर एवं मानक टी मूल्य-

0.05 स्तर के df 248 पर मानक टी मूल्य = 1.97 0.01 स्तर के df 248 पर मानक टी मूल्य = 2.59

व्याख्या एवं विश्लेषण - अटल टिंकरिंग लैब की विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों हेतु उपयोगिता का अध्ययन करने के लिए विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के मुल्यांकन के आधार पर प्राप्त प्रदतों के अनुसार विज्ञान वर्ग के विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं का मध्यमान व मानक विचलन क्रमशरू 47.32, 46.57 तथा 5.28, 3.29 आया। मध्यमानों

के अंतर की सार्थकता की जाँच के लिए टी मान निकला गयाए जिसका मान 1.38 आया। जो df 248 के 0.05 टेबल मान 1.97 से कम आया अर्थात विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं में अटल टिंकरिंग लैब की उपयोगिता में सार्थक अन्तर नहीं हैं।

उद्देश्य 4 - अटल टिंकरिंग लैब के कला वर्ग व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों हेतु उपयोगिता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सारणी संख्या 7

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थकता स्तर
कला वर्ग के विद्यार्थी	250	50.94	0.5788	8.8	0. 05स्तर पर सार्थक अन्तर
विज्ञान वर्ग की विद्यार्थी	250	51.38	0.5624		

स्वतंत्रता का अंश-

df = $N_1 + N_2 - 2$ = **df = 250 + 250- 2 = 498**

सार्थकता स्तर एवं मानक टी मूल्य-

0.05 स्तर के df 498 पर मानक टी मूल्य = 1.97 0.01 स्तर के df 498 पर मानक टी मूल्य = 2.59

व्याख्या एवं विश्लेषण - उपरोक्त सारणी के अनुसार अटल टिंकरिंग लैब की उपयोगिता का पता लगाने हेतु कला वर्ग व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों का मूल्यांकन किया गया। इस हेतु अटल टिंकरिंग लैब का उपयोग करने वाले 250 कला वर्ग व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों का चयन किया गया। इन विद्यार्थियों से अटल टिंकरिंग लैब उपयोगिता सारणी भरवाई गई, प्रश्नावली भरवाई गई, प्रश्नावली का आंकिक विश्लेषण करने के पश्चात, कला वर्ग तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः 50.94, 51.38 तथा 0.57, 0.56 आया। मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जाँच के लिए टी मान निकला गया, जिसका मान 8.8 आया। जो df 498 के 0.01 टेबल मान 2.59 से अधिक आया अर्थात कला वर्ग के विद्यार्थियों में अटल टिंकरिंग लैब की उपयोगिता में सार्थक अन्तर हैं।

14 शोध निष्कर्ष -

1. अटल टिंकरिंग लैब की वस्तु स्थिति का अध्ययन करना।

- अटल टिकरिंग लैब की वस्तुस्थिति से सम्बन्धित कोटा जिले के विद्यालयों का प्रतिशत 90% से अधिक पाया गया। निष्कर्षतः कोटा जिले के सभी विद्यालयों में अटल टिकरिंग लैब की वस्तुस्थिति बहुत अच्छी है।

- बूंदी जिले के विद्यालयों में स्थापित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति का प्रतिशत लगभग 90% के करीब पाया गया अर्थात बूंदी जिले के विद्यालयों की अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति अच्छी है।
- बारां जिले के विद्यालयों में स्थित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति 94% से अधिक रही है। बूंदी जिले के विद्यालयों की अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति बहुत अच्छी है।
- झालावाड़ जिले के विद्यालयों में स्थित अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति 90% के करीब पाया गया अर्थात झालावाड़ जिले के विद्यालयों की अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति अच्छी है।
- अटल टिंकरिंग लैब के उपयोग करने वाले कला वर्ग के छात्र व छात्राओं में से कला वर्ग की छात्राओं के लिए अटल टिंकरिंग लैब अधिक उपयोगी है।
- अटल टिंकरिंग लैब का उपयोग करने वाले विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं में से विज्ञान वर्ग के छात्राऔं के लिए अटल टिंकरिंग लैब अधिक उपयोगिता रखती है।
- अटल टिंकरिंग लैब का उपयोग करने वाले कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में से विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के लिए अटल टिंकरिंग लैब अधिक उपयोगिता रखती है।

15 शैक्षिक निहितार्थ -

- **शिक्षा की दृष्टि से -** शिक्षा के क्षेत्र में कई नवीन प्रयोग किये जा रहे है पारम्परिक औपचारिक शिक्षा की जगह कौशल आधारित शिक्षा पर जोर दिया जा रहा।
- **विद्यार्थियों की दृष्टि से**वर्तमान समय तकनीकी का युग है। इसमें यदि विद्यार्थी - तकनीकों से अवगत नहीं होंगे तो वह वर्तमान समय के साथ नहीं चल पायेंगे, इस दृष्टि से अटल टिंकरिंग लैब विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।
- **आधुनिकरण की दृष्ठि से -** भारत प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अन्य देशों से थोड़ा कम है। यदि भारत को हर क्षेत्र में आगे बढ़ना है तो यहाँ के युवा वर्ग को नवीन प्रौद्योगिकी से अवगत होना अत्यन्त आवश्यक है।

16 भावी शोध हेतु सुझाव -

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन का क्षेत्र कोटा संभाग तक ही रखा गया, इस विषय अलगअलग - संभागों व राज्यों मे ं संचालित अटल टिंकरिंग लैब को भी शोध अध्ययन के विषय में रूप में ले सकते है।
2. प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने अटल टिंकरिंग लैब की वस्तुस्थिति, उपयोगिता व संचालित करने में समस्या पर अध्ययन किया, इसके अलावा भी इससे सम्बन्धित कई ऐसे पहलू है जिस पर अध्ययन किया जा सकता है।

17. ंदर्भ ग्रन्थ सूची

1. माथुर डॉ. एस.एस., शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा 2007/2008

2. भाई, योगेन्द्र जीत, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा 2008

3. अस्थाना, विपिन, अधिगम के लिए आकलन, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा 2018-2019

REPORTS :-

1. Guidelines for setting up of tinkering Laboratories, under Atal Innovation mission. Atal Tinkering Laboratories (Government of India NITI Aayog)

2. अटल टिंकरिंग लैब, पुस्तिका (हैण्डबुक) 2019 नीति आयोग AIM.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 November 2024 Page No. : 215-219
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जूठन : दलित जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति

प्रमोद कुमार, शोध छात्र हिंदी विभाग,
इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (सम्बद्ध- इलाहाबाद विश्विद्यालय, प्रयागराज)

'जूठन' ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखी गई एक महत्वपूर्ण आत्मकथा है ,जो दलित समाज के प्रति हो रहे भेदभाव,अत्याचार और सामाजिक असमानता की गंभीर व्याख्या करती है। इस पुस्तक में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के जीवन के अनुभव को दर्शाती है,जो एक दलित परिवार में जन्मे व्यक्ति की कठिनता भरे संघर्ष को अभिव्यक्त करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला मुजफ्फरनगर के एक छोटे से गांव बरला में दलित परिवार में हुआ था। इनका बचपन सामाजिक आर्थिक कठिनाइयों को झेलते हुए हुआ जूठन आत्मकथा में ग्रामीण परिवेश का भरपूर चित्रण किया गया है जाति व्यवस्था के प्रचलन के कारण दलित आत्मकथाओं में गांव वैसे दिखाई नहीं देते जैसे गैर दलितों के साहित्य में दिखाई देते हैं ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपने गांव बरला को दर्शाया है कि- "ऐसी दुर्गंध की मिनट भर में सांस घुट जाए तंग गलियों में घूमते सूअर,नंग-धड़ंग बच्चे, रोजमर्रा के झगड़े, बस यह था वातावरण जिसमें बचपन बीता ।इस माहौल में यदि वर्ण व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहने वालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।"[1]

वहीं ,जूठन आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि के स्कूल के दिनों का वर्णन भी है जिसमें उन्हें जाति के कारण भेदभाव और अपमान झेलना पड़ा ।इस जातिभेद की समस्या को अध्यापक भी तोड़ नहीं पाते बल्कि वह भी दलित बच्चों का शोषण ही करते हैं ।ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अध्यापकों के चरित्र और व्यवहार को चित्रित किया है,लिखते हैं- "त्यागी इंटर कॉलेज बरला में मास्टर लड़कों को लात- घूंसे से पीटते थे। यह लात-घूंसे एक अध्यापक नहीं बल्कि किसी बदमाश गुंडे के होते थे।"[2] इसी प्रकार उन्हें स्कूल में बैठने के लिए उचित जगह नहीं दी जाती थी और सार्वजनिक नलकूपों पर पानी पीने की मनाही थी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का बचपन संघर्षमय था। उन्हें जातीय यातना का दंश बारंबार झेलना पड़ा। इनकी पढ़ने की जिज्ञासा प्रबल थी जिस कारण एक अध्यापक से मन का सवाल

पूछने पर यह जवाब और दंड मिला,लिखते हैं कि- "चुहड़े के, तू द्रोणाचार्य से अपनी बराबरी करै हैं... ले तेरे ऊपर मैं महाकाव्य लिखूंगा उसने मेरी पीठ पर सटाक-सटाक छड़ी से महाकाव्य रच दिया। वह महाकाव्य आज भी मेरी पीठ पर अंकित है।"[3]

वहीं,लेखक को शिक्षा प्राप्त करने के लिए संघर्ष के साथ-साथ जूझना पड़ता है छात्रों को पढ़ने के लिए एकअध्यापक का क्या काम है?इसको दर्शाते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा जूठन में लिखते हैं "मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था।"[4] एक जातिवादी अध्यापक कैसे अहम में डूबा होता है,उसका जिक्र करते हुए लिखते हैं- "उसे समय मुझे लगता था जैसे मेरे सामने कोई शिक्षक नहीं,जाति अहम में डूबा हुआ कोई अनपढ़ सामंत खड़ा हो।"[5]

वहीं, ओमप्रकाश वाल्मीकि जी शिक्षकों की दलितों छात्रों के प्रति जबान और रवैए कैसे होते हैं? और वे शिक्षा का पाठ पढ़ाकर बच्चों की सभ्यता को किस प्रकार विकसित कर रहे हैं ? इसका जिक्र करते हुए लिखते हैं- "मास्टर हम लोगों को रोता देखकर गलियां बक रहा था।ऐसी गालियां जिन्हें यदि शब्दबद्ध कर दूं तो हिंदी की अभिजात्यता पर धब्बा लग जाएगा।"[6]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपने पिता की बखान करते हैं की एक पिता की चैतन्यता उसके बच्चों का भविष्य संवार सकता है।ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के पिताजी अशिक्षित थे लेकिन उनके अंदर चेतना जाग चुकी थी।उन्होंने शिक्षा के महत्व भली-भांति समझ लिया था।उनका मानना था पढ़ लिखकर ही जाती सुधारी जा सकती है, इसलिए उन्होंने ओमप्रकाश वाल्मीकि को विद्यालय में दाखिला करवाया।प्रवेश मिलने के बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि का मास्टर कलीराम से सामना हुआ।एक मास्टर का किसी भी छात्र पर उसकी भाषा,उसके रवैए किस प्रकार अंकित होते हैं,कैसा प्रभाव पड़ता है लेकिन इसका ध्यान न देकर अपनी जातिवादी अहम डूबा मास्टर कलीराम शोषण करता रहा और एक अबोध बालक के मानसिक स्थिति पर पुरजोर प्रहार करता रहा लेकिन वाल्मीकि जी भी अपने पिता की तरह संघर्षी थे,संघर्ष करते रहे और शिक्षा ग्रहण करते रहे। एक बार मास्टर कलीराम उनसे पूछता है- "क्या नाम है बे तुम्हारा 'ओमप्रकाश' मैंने डरते- डरते धीमे स्वर में अपना नाम बताया। 'चुहड़े का है' हेड मास्टर का दूसरा सवाल उछला।'जी'। 'ठीक है ...अब वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियां तोड़ के झाड़ू बाण ले। पत्तों वाली झाड़ू बता और पूरे स्कूल को ऐसे चमका दे जैसा सीसा। तेरा तो एक खानदानी काम है।"[7] यह व्यवस्था मास्टर कलीराम के निर्मम और अमानवीय व्यवहार उसके सामाजिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व को दर्शा रहा है जो दलितों की शिक्षा के विरुद्ध है।

एक शिक्षक का कार्य होता है निष्पक्षता के साथ ज्ञान बांटना और समाज से शिक्षा और अज्ञान के अंधकार को दूर करना लेकिन दलित समाज के होने के नाते ओमप्रकाश वाल्मीकि पर

मास्टर कलीराम का रवैया और रूख दोनों निष्ठुर हैं। अपनी और अमर्यादित भाषा का प्रयोग करते हुए और गाली देते हुए जातिवादी मास्टर कलीराम कहता है कि- “ले जा इसे यहां से... चूहड़ा होके पढ़ने चला है... जा चला जा... नहीं तो हाड़-गोड़ तुड़वा दूंगा।”[8]

वहीं, कोई भी पिता अपनी बच्चों के भविष्य निर्माण,चरित्र निर्माण में एक अहम सहायक होते हैं। एक पिता अपनी बच्चों के लिए चरित्र निर्माण और विकास के लिए जो भी सार्थक कदम उठाना पड़े उठाते हैं।ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिता भी अपने पुत्र को आगे बढ़ाने के लिए सचेत और आग्रही हैं। लेकिन वहीं एक शिक्षक को भविष्य निर्माता कहा जाता है लेकिन जातिवादी, पूर्वाग्रही मास्टर कलीराम जैसे शिक्षक अपनी कुंठित मानसिकता की वजह से दलित बच्चों के भविष्य से खिलवाड़ करते हैं और बर्बाद करने पर तुले होते हैं,ऐसी सोच रखने वाले शिक्षकों पर ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं- “मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था।”[9] यह कथन शिक्षा व्यवस्था की दयनीय दशा को दर्शाता है। तभी अचानक से स्कूल के पास से ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिताजी गुजरे और वे उनसे पूछते हैं और ओमप्रकाश पुरी दास्तान रोते हुए बताते हैं ।उसके बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिता झाड़ू छीन कर दूर फेंक दीं।उनके पिता चीखने लगे- “कौन-सा मास्टर है वो द्रोणाचार्य की औलाद, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे है। ...जिसे सुनकर हेड मास्टर के साथ सभी मास्टर बाहर आ गए थे।”[10]

शिक्षा के द्वारा ही समाज की कुरीतियों को समाप्त किया जा सकता है, नई चेतना का संचार किया जा सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिता चाहते थे उनका बेटा पढ़ाई-लिखाई करके ‘जाति’ सुधारे। ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिताजी अपनी ‘जाति’ सुधारना चाहते थे। उनका सीधा एवं सटीक रास्ता था की पढ़ाई-लिखाई के द्वारा ही ‘जाति’ सुधारी जा सकती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने पिताजी के बारे में लिखते हैं कि- “वे मुझे कोई भी काम करने नहीं देते थे, बस पढ़ाई करो। कहते थे, पढ़-लिख कर अपनी ‘जाति’ सुधारो।...वे चाहते थे, मैं पढ़ूं ...बस, उनके मन में एक बात थी जाति सुधारने की।”[11]

वहीं, दलित स्त्रियां भी पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर उनके कार्य में हाथ बटाती हैं। जितना दलित पुरुषों का परिवार उत्थान एवं सामाजिक उत्थान में योगदान होता है उतना ही दलित स्त्रियों का भी होता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की मां एक संघर्षी एवं स्वाभिमानी दलित स्त्री थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि की मां की स्वाभिमानी स्वभाव की झलक उस समय देखने को मिलती है जब त्यागी परिवार में आयोजित विवाह के अवसर पर मिले हुए जूठन का टोकरा फेंक देती हैं और इस जूठन की अपमानजनक परंपरा को समाप्त कर देती हैं। इस दृश्य का वर्णन करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं कि- “मां ने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते देख कर कहा, “चौधरी जी ईब तो सब खाणा खा के चले गए... म्हारे जाकतो...कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो।” “सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलो से भरे टोकरो की तरफ इशारा

करके कहा, “टोकरी भर तो जूठन ले जा रही है... ऊपर से जाकतो के लिए भी खाणा मांग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।” उस रोज मेरी मां की आंखों में दुर्गा उतर आई थी। मां का वैसा रूप मैंने पहली बार देखा था। मां ने टोकरा वहीं बिखेर दिया था। सुखदेव सिंह से कहा था, “इसे ठाकरे अपने घर में धर ले। कल तड़के बारातियों को नाश्ते में खिला देणा...।”[12] ऐसी निरर्थक और गलत परंपराओं को तोड़ने का कार्य एक स्वाभिमानी एवं संघर्षी महिला ही कर सकती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की मां के साथ साथ भाभी भी संघर्षी एवं स्वाभिमानी स्त्री थीं जिनकी वजह से ओमप्रकाश वाल्मीकि जी पहचान बना पाए एवं उनके जीवन को सही दिशा मिली।

वहीं, जूठन में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने हिंदू रीति-रिवाजों के तहत वाल्मीकि समाज में अंधविश्वासों को सूक्ष्म तरीके से व्याख्यायित किया है। वाल्मीकि समाज में हिंदुओं के देवी-देवताओं से अलग देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी, जो इस बात की ओर इशारा करता है कि विभिन्न तरह के देवी-देवता जो हिंदुओं में नहीं हैं दलितों में क्यों पाए जाते हैं ? इस पर ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं- “अक्सर किसी भूत के प्रभाव का जिक्र करके भगत भूत पकड़ने की क्रियाएं करता था जिसके बदले में देवी-देवताओं को सूअर, मुर्गे, बकरे और शराब चढ़ाई जाती थी। प्रत्येक घर में उन देवताओं की पूजा होती थी यह देवता हिंदू देवी-देवताओं से अलग होते हैं, जिनके नाम किसी पोथी-पुराण में ढूंढने से भी नहीं मिलेंगे, लेकिन किसी भी परिवार में चले जाइए जो इस बिरादरी से है वहां इन देवी देवताओं की पूजा देखने को मिलेगी। जन्म हो या कोई शुभ कार्य, शादी विवाह या मृत्यु भोज इन देवी देवताओं के बिना अधूरा है।”[13] यह आज भी विडंबना का विषय है कि गांव में जब भी कोई किसी बीमारी से पीड़ित होता है तो दावा करने की बजाय भूत-प्रेत के अंधविश्वास में पड़कर झाड़-फूंक, टोने-टोटके आदि के द्वारा इलाज किया जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ‘जूठन’ में वाल्मीकि समाज में पूजे जाने वाले देवताओं का जिक्र करते हैं, वाल्मीकि समाज में कई तरह के देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। इन देवताओं को ‘पौन’ कहा जाता था जिसमें प्रमुख हैं- कलवा, नलवा बादी आदि देवता और माई मदारण देवी की पूजा भी होती थी इस प्रकार वाल्मीकि समाज में हिंदुओं की देवी देवताओं से अलग देवी-देवताओं की पूजा होती थी।

‘जूठन’ सिर्फ एक आत्मकथा नहीं है बल्कि यह भारतीय समाज में रूढ़ीगत जातिगत भेदभाव और असमानता के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का लेखन इस बात को स्पष्ट करता है कि कैसे दलित समाज को हर स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है और किस तरह हुए अपनी पहचान और सम्मान के लिए लड़ते हैं। यह आत्मकथा भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों भेदभाव बाह्यआडंबर के प्रभाव को समझने का एक पर्याप्त माध्यम है। ‘जूठन’

आत्मकथा यह न केवल एक व्यक्ति की कहानी है, बल्कि पूरे दलित समाज की पीड़ा और संघर्ष की गाथा है।

संदर्भ-

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राधकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ.11
2. वहीं, पृ.70
3. वहीं, पृ. 35
4. वहीं, पृ.15
5. वहीं, पृ.70
6. वहीं, पृ.14
7. वहीं, पृ.14-15
8. वहीं, पृ.16
9. वहीं, पृ.15
10. वहीं, पृ.16
11. वहीं, पृ.76-77
12. वहीं, पृ.21
13. वहीं, पृ.13

मोबाइल- 8009466488